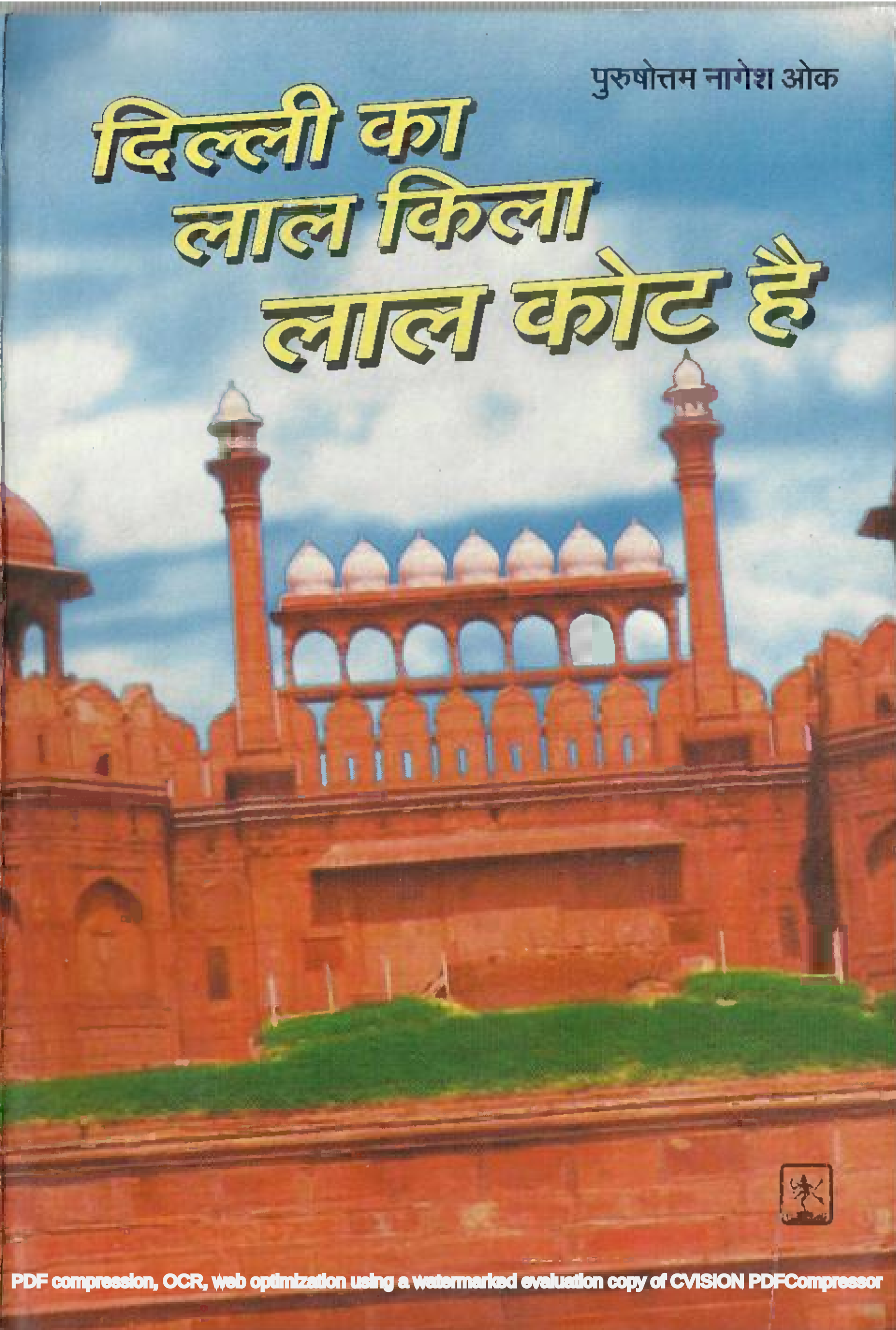
पुरुषोत्तम नागेश ओक

दिल्ली का लाल किला लाल कोट है



दिल्ली का लाल किला लाल कोट है

लेखक : *पुरुषोत्तम नागेश ओक*

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - **05**

विषय-सूची

भूमिका

भारत में और उसके बाहर देशों में ऐसे 'शिक्षित' लोग हैं जिनके दिमागों को, निरन्तर आंग्ल-मुस्लिम शिक्षण के द्वारा, इस प्रकार खोखला कर दिया गया है कि वे विश्वास करने लगे हैं कि भारत के सभी अथवा लगभग सभी ऐतिहासिक नगर यथा दिल्ली, आगरा, जौनपुर, कन्नौज, लखनऊ, बीदर और बीजापुर आदि विदेशी मुस्लिम आक्रमण-कारियों द्वारा बनाए-बसाए गए थे। उन लोगों की दृष्टि में, अफ़गा-निस्तान से अबीसीनिया तक के मुस्लिम नराधमों द्वारा हज़ार-वर्षीय लूट-खसोट और हत्याकारी आक्रमणों से पूर्व भारत में कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं था। तथापि, वास्तविकता यह है कि विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारतीय नगरों और भवनों को नष्ट-भ्रष्ट ही किया—निर्माण एक का भी नहीं किया।

अतः न केवल बनारस, मथुरा और उज्जैन, अपितु भारत के सभी बड़े-बड़े नगरों का, पूर्व-नामांकित नगरों के समान ही एक अति प्राचीन हिन्दू इतिहास है।

दिल्ली ऐसे नगरों में से एक है। मीलों तक की भूमि में यहाँ-वहाँ बिखरे हुए ध्वंसावशेष उन प्राचीन हिन्दू भवनों, मन्दिरों और राजमहलों के हैं जिनको मुस्लिम हमलों के एक हज़ार वर्षों में विनष्ट हो जाना पड़ा।

अतः, भारतीय ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण अथवा अध्ययन करने-वालों को एक सूत्र, एक सिद्धान्त स्मरण रखना चाहिए, अर्थात् वे आज जो भी निर्मित अंश देखते हैं वह हिन्दू-मूलक हैं, तथा वे जो भी क्षति,

विनाश और सर्वनाश देखते हैं वह सब-कुछ आक्रामक मुस्लिमों का कुकृत्य है, उनका घिनौना कुकर्म है। अन्य शब्दों में कहा जाए तो, मध्यकालीन स्थलों पर सभी निर्माण हिन्दुओं का किया हुआ है और विध्वंस सभी मुस्लिमों का किया हुआ है। यह न केवल मध्यकालीन पुरातत्त्व का सारांश प्रस्तुत करता है, अपितु भारतीय ऐतिहासिक स्थलों की निर्दोष कुंजी भी प्रदान करता है।

दिल्ली का लालकिला एक ऐसा ऐतिहासिक विशेष स्थान है जिसे देखने के लिए प्रतिदिन हजारों रुचि-सम्पन्न दर्शक आते हैं। भारत के अन्य सभी ऐतिहासिक भवनों के समान ही लालकिले का निर्माण-श्रेय भी मुस्लिमों को ही दिया जाता है। यह एक घोर ऐतिहासिक और पुरातत्त्वीय भ्रांति अथवा भयंकर भूल है। यह किला, जिसका निर्माण-श्रेय १७वीं शताब्दी के विदेशी मुस्लिम शासक शाहजहाँ को दिया जाता है, हिन्दुओं द्वारा आक्रमणकारी मुस्लिमों के सम्मुख अपनी स्वाधीनता गँवा बैठने की घड़ी से शताब्दियों पूर्व हिन्दुओं द्वारा बनवाया गया था।

यद्यपि यह किला बाहर से भली-भांति सुरक्षित प्रतीत होता है, फिर भी इसे कम-से-कम भीतरी भाग में अत्यधिक हानि, क्षति पहुँचायी गई है। इसके बहुत सारे हिन्दू राजवंशी भाग आज लुप्त हैं। किले की शानदार हिन्दू जल-कल-व्यवस्था तोड़-फोड़ दी गयी है।

भारत के अन्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक भवनों के ही समान दिल्ली के लालकिले को भी दो प्रकार की भीषण यन्त्रणाएँ सहनी पड़ी हैं, अर्थात् यद्यपि यह हिन्दू-मूलक है, फिर भी इस रचना को अंधाधुन्ध एक विदेशी शाहजहाँ द्वारा निर्मित कहा जा रहा है, और दूसरी बात यह है कि किसी भी मुस्लिम व्यक्ति द्वारा निर्मित होने की बात तो दूर, लालकिले को तो मुस्लिम आक्रमणकारियों और अपहरणकर्ताओं की पीढ़ियों ने बुरी तरह लूटा-खसोटा, क्षतिग्रस्त और ध्वस्त किया था।

यही वह खोज है जो इस पुस्तक का वाद-विषय है। यह शोध-प्रबन्ध एक सुपुष्ट और सुप्रसिद्ध यशस्वी पथ का पथिक है। इस नवीन अन्वेषण-मार्ग की पूर्व-पुस्तकें हैं: 'ताजमहल हिन्दू राजभवन है', 'फतहपुर सीकरी हिन्दू नगर है', और 'आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है'। हम यह भी

आशा करते हैं कि अन्य बहुत सारे अन्वेषक अनुसंधान के इस नए क्षेत्र में कार्य करने के लिए आगे आएंगे और आधिकारिक पुस्तकें लिख-कर यह सिद्ध करेंगे कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के मध्यकालीन नगर और भवन, जिनका निर्माण-श्रेय असत्यरूप में आक्रमणकारी मुस्लिमों को दिया जाता है, तथ्यरूप में हिन्दू संरचनाएं हैं जिनका रूप-परिवर्तन कर विदेशी घुसपैठियों ने दुरुपयोग किया है।

दिल्ली के लालकिले में प्रत्येक संध्या-समय टिकट बेचकर कुछ लोगों द्वारा ध्वनि और प्रकाश का शानदार चामत्कारिक कार्यक्रम प्रदर्शित किया जाता है। दुर्भाग्य है कि उस प्रदर्शन के लेखक-गण स्वयं भी लालकिले के शाहजहाँ-पूर्व इतिहास से अनभिज्ञ हैं। अतः, वे लोग लालकिले का इतिहास ऊलजलूल तरीके से, शाहजहाँ के काल से ही प्रारम्भ करते हैं जो एक भयं-कर भूल है। यह पुस्तक सिद्ध करती है कि दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ से कम-से-कम छः शताब्दी-पूर्व भी विद्यमान था।

इस पुस्तक में दिये गए साक्ष्य की सहायता से उस प्रदर्शन का आयोजन करने वालों, किले के दर्शकों, इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों तथा पुरातत्वीय कर्मचारियों को अब पुनः किले पर एक सूक्ष्म तथा कठोर दृष्टिपात करना चाहिए। यदि वे ऐसा करेंगे, तो निश्चित है कि वे इस तथ्य को स्वीकार कर लेंगे कि शाहजहाँ तो उस प्राचीन हिन्दू किले में निवास करने वाले अनेक अवांछनीय व्यक्तियों में से एक निवासी ही था, इसका मूल निर्माता अथवा स्वामी नहीं। और उस किले को अलंकृत करना तो दूर, उन सभी विदेशियों ने इस किले की समृद्ध, सम्पन्न स्थावर संपत्ति का, कीमती साज-सामग्री का, जाज्वल्यमान मणि-माणिक्यों तथा कल्पनातीत अतिशय धनकोश का अपहरण किया। इन विदेशी आधिपत्य-कर्ताओं ने किले के बहुत सारे हिन्दू राजवंशी भागों को धूल में मिला दिया, जिससे पीछे कुछ विकृत मण्डप रह गए हैं, जिनको पृथक् करने के लिए उनके बीच-बीच में खुले, रिक्त स्थान शेष रह गए हैं।

कम-से-कम काबुल से कन्याकुमारी तक सुविस्तृत, फैले हुए इसी प्रकार के अन्य प्राचीन हिन्दू किलों की लम्बी शृंखला में ही दिल्ली का लालकिला उपनाम लालकोट भी एक ऐसा ही सूत्र था। अन्य किले कोट

कछवाहा, मंकोट, सियालकोट, अमरकोट, लाहौर का लालकोट (लाल-किला), आगरे का लालकिला, सिद्धकोट, अकोट, बगलकोट, अक्कल कोट, भद्रकोट और बहुत सारे ऐसे ही थे।

प्रसंगवश, यह भी कह दिया जाय कि उन सभी भवनों पर अनेक तांत्रिक हिन्दू-अंगीभूत विशेष लक्षण, यथा श्वेत अथवा लाल बिन्दु, बिन्दु-बिन्दुवाली रेखाएँ, सूर्य, कमल पुष्प, परस्पर-गुम्फित त्रिकोण, शेर, हाथी, मछलियाँ, तलवारें, शंख, न्याय-तुला, पवित्र हिन्दू जलपात्र अर्थात् कलश, समानान्तर चतुर्भुज और मोर आदि मेहराबों के ऊपर स्पष्ट प्रदर्शित हैं। अनेक अन्य सुस्पष्ट प्रमाणों के अतिरिक्त, इनमें से प्रत्येक लक्षण भी इन भवनों के हिन्दूमूलक होने का सजीव, प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक में प्रतिपादित बहुत सारे ऐसे सत्य, इतिहास और पुरातत्त्व में समाविष्ट की गई घोर असत्यता के प्रति जनता को जागृत करने में समर्थ होंगे।

N-१२८ C ग्रेटर कैलास-१ — पुरुषोत्तम नागेश ओक

नई दिल्ली-११००४८

अध्याय १

कनिंघम की भयंकर भूल

दिल्ली के सर्वाधिक लोकप्रिय और मुख्य ऐतिहासिक भवनों में से एक भवन लाल किला है। वर्ष-भर, इसे देखने वालों का ताँता लगा रहता है जिनमें भारतवर्ष के सभी स्थानों के और विदेशों के भी बहुत लोग होते हैं। रविवार और अन्य छुट्टियों के दिन तो दर्शनार्थियों की भीड़ अत्यन्त अधिक होती है।

ऐसे दर्शनार्थियों में से कुछ लोगों के साथ वे 'मार्गदर्शक' होते हैं जो किले के ऐतिहासिक उत्थान-पतन का अत्यन्त द्रुतगामी एवं 'आधिकारिक' वृत्तान्त बताने की अत्यन्त स्पष्ट घोषणा करते हैं। कुछ अन्य दर्शनार्थियों को किले का 'तथ्यात्मक वर्णन' पर्यटक-पत्रिकाओं द्वारा प्राप्त हो जाता है, तथा अन्य लोगों को जन-प्रचलित धारणाओं द्वारा मिल जाता है। चाहे जो भी स्रोत हो, दिमाग़ों में इन सब बातों के दाखिल होने से उन दर्शनार्थियों को विश्वास हो जाता है कि किले की शान-शौकत एवं वैभव के संपूर्ण ऐश्वर्य का श्रेय पाँचवीं पीढ़ी के मुगल बादशाह शाहजहाँ को ही है। बताया जाता है कि यही वह व्यक्ति था जिसने सन् १६४८ ईसवी के लगभग किले का निर्माण करवाया था।

मैंने जब नित्यप्रति निरुद्देश्य भ्रमणार्थियों की भाँति भटकते हुए इन दर्शनार्थियों को उत्सुकतापूर्वक, कुछ सुविधाजनक स्थान से देखा तो मेरा हृदय इस बात से अत्यन्त विक्षुब्ध हुआ कि उन सभी लोगों को किस प्रकार

कितना अधिक दिग्भ्रमित किया जा रहा था। वे लोग झुलसती गर्मियों, आग उगलती पटरियों अथवा अपने सूखे कंठों की चिन्ता न करते हुए भी अपने कीमती समय का अन्यतया उपयोग न करते हुए, अत्यधिक धन खर्च करते हुए, विश्व के दूर-दूर के क्षेत्रों से, न जाने कितनी अधिक उत्सुकता एवं सहज सरल-भाव से लाल किले के दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं। वे लोग प्रवेश शुल्क भी कुछ मात्रा में देते हैं, वर्णनात्मक पत्रिकाओं अथवा दृष्टान्त चित्रों को खरीदने में धन खर्च करते हैं, साथ ही मार्गदर्शकों को भी कुछ-न-कुछ भेंट देते ही हैं। और यह कल्पना करना अत्यन्त हृदय-विदारक है कि इतने सारे कष्टों एवं विपुल मात्रा में धन का व्यय करने के बाद भी उन सभी भ्रमणार्थियों को धोखा दिया जा रहा है, बेवकूफ बनाया जा रहा और एक बड़े भारी चकमे का शिकार बनाया जा रहा है। क्योंकि जैसाकि हम अगले पृष्ठों में सिद्ध करेंगे, यह लालकिला शाहजहाँ द्वारा अथवा अन्य किसी भी मुस्लिम बादशाह द्वारा निर्मित न होकर भारत पर आरम्भ हुए मुस्लिम आक्रमणों से शताब्दियों पूर्व हिन्दुओं द्वारा बनवाया गया था। इस घोर त्रासदायी स्थिति का सर्वाधिक भयावह अंश यह है कि उन लोगों को अनुमतिप्राप्त मार्ग-दर्शकों और सरकार द्वारा प्रचारित अथवा सरकारी-अनुग्रह प्राप्त प्रकाशनों, अथवा भारत सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अनुसरण करने वाले अध्यापकों तथा आचार्यों द्वारा दिग्भ्रमित किया जा रहा है।

यह भयंकर भूल हुई कैसे ? क्या कारण है कि इतिहास के विद्वानों की पीढ़ियों की पीढ़ियाँ ग़लत दिशा में चल पड़ीं ? इसका स्पष्टीकरण यह है कि भारत का इतिहास विगत हज़ार वर्षों की लम्बी अवधि में इसके शत्रुओं, विदेशियों द्वारा ही लिखा गया है। पाठक स्वयं भी अनुमान लगा सकता है कि यदि स्वयं उसके जीवन और उसके पूर्वजों के जीवन-कार्यों को लेख-बद्ध करने का दायित्व उसके कट्टर शत्रु को सौंप दिया जाय तो उसके यश और उसके इतिहास को कितना कलंकित, विनष्ट किया जा सकता है। यथार्थ रूप में यही दुर्घटना भारतीय इतिहास के साथ हुई है। अत्यंत आधारभूत और पावन समझी जानेवाली समस्त आकर-सामग्री में वे तिथि-वृत्त सन्निहित हैं जो या तो अरेबिया से लेकर अफ़गानिस्तान

तक के उन विदेशी मुस्लिमों द्वारा लिखे गए हैं जो नित्य ही, हिन्दुओं को "कुत्ते और ठग तथा डाकू और नराधम" कहते रहे, अथवा बाद की पीढ़ी के उन अंग्रेज लेखकों द्वारा लिखे गए हैं जो भारतीयों को रूढ़िवादी, पिछड़े हुए, अवनत मूर्ख, अज्ञानी समझते थे। अपने ऊपर ऐसे विदेशियों का शासन-तंत्र हजार वर्षों तक बना रहने के कारण, हिन्दुओं को अपने क्रूर शत्रुओं द्वारा लिखित और विदेशी जनता द्वारा 'मान्य' सारा इतिहास ही अपने गले उतारना पड़ता था। अब, युगों की अवधि व्यतीत होते-होते, हिन्दू को, भारतीय व्यक्ति को अनजाने ही उन बातों पर सरल-सहज विश्वास होने लगा है जो इन अनेकों शताब्दियों तक उसके कानों में निरन्तर ठूंसी जाती रही हैं।

हम यहां सम्पूर्ण प्रज्ञात्मक निष्पक्षतापूर्वक स्वीकार करने को तैयार हैं कि मात्र इसी कारण किसी विवरण, लेखा को अमान्य करना ठीक नहीं है कि वह किसी अन्यदेशीय व्यक्ति, शत्रु द्वारा प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इसी के साथ-साथ हम पाठकों को इस बारे में भी अत्यन्त सावधान, सतर्क करना चाहते हैं कि सभी प्रकार का साक्ष्य-मूल्यांकन करते हुए भी उसे पूर्णतः सजग, सतर्क रहना चाहिए, विशेषकर उस समय जबकि ऐसा साक्ष्य किसी अन्यदेशीय व्यक्ति द्वारा, उसमें भी विदेशी शत्रु द्वारा प्रस्तुत किया गया हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए, हम अब दिल्ली-स्थित लालकिले के मूलोद्गम की खोज-बीन करने का सत्प्रयत्न करेंगे।

आजकल आधिकारिक तथा तथ्यात्मक समझे जानेवाले, भारत के पुरातत्त्वीय अभिलेखों और विचारों का सर्वप्रथम संकलन, संपादन, भारत में ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों की अवधि में जनरल सर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम द्वारा किया गया था, और यही वह व्यक्ति है जो दिल्ली में लाल-किले के मूलोद्गम के सम्बन्ध में आधुनिक ऐतिहासिक शिक्षा-समुदाय को दिग्भ्रमित करने का अपराधी, उत्तरदायी है। यही वह दोषी व्यक्ति है जिसने अपनी विदेशी प्रतिभा-वश भावी पीढ़ियों को एक ऐसे ग़लत, भ्रामक रास्ते पर डाल दिया है जिससे उसके अपने बताए हुए भयंकर भूलों-वाले, अन्यदेशीय जंजाल के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं शरण पाना असंभव-सा हो गया है। पाठक को भारत में आधुनिक पुरातत्त्वीय प्रशासन के मूलोद्-

गम से परिचित करने में इसने पुरातत्त्व एवं इतिहास के विद्यार्थियों, विद्वानों तथा अध्यापकों को किस सीमा तक दिग्भ्रमित किया है यह बताने के लिए हम एक अत्यन्त जानकारी-सम्पन्न लेख के संगत अंश नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

"भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड मेयो ने ३० मई, १८७० को लिखा कि 'किसी भी देश के प्राचीन स्मारकों की खोज-बीन, विवरण और सुरक्षा करने का दायित्व संसार के प्रत्येक सभ्य राष्ट्र द्वारा स्वीकृत किया जाता है और तदनुसार कार्य किया जाता है। भारत ने इस दिशा में किसी भी अन्य राष्ट्र की तुलना में सबसे कम— लगभग नगण्य कार्य किया है, अतः हिन्दुस्थान के प्रत्येक भाग में इतिहास की अभिव्यक्ति करने वाली दबी पड़ी विपुल मात्रावाली सामग्री का विचार करते हुए मेरा यह अतिदृढ़ मत है कि इतने सुस्पष्ट और रोचक कर्त्तव्य-पालन की पूर्ति की दिशा में कार्य करने के लिए भारत सरकार के अधीन एक तंत्र, एक व्यवस्था स्थापित करने की दिशा में तुरन्त आवश्यक पग उठाए जाएँ।'

"तदनुसार पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण की योजना, जो कि सन् १८६१ में प्रारम्भ की गई थी, परन्तु अचानक सन् १८६६ में त्याग दी गई थी, अब पुनः प्रारम्भ की गई थी। भारत के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण के महानिदेशक का पद स्थापित किया गया था, और मेजर जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ने २ फ़रवरी सन् १८७१ के दिन इस पद का कार्यभार संभाल लिया था। सेना-इंजीनियर यह व्यक्ति भारत सरकार का भूतपूर्व पुरातत्त्वीय सर्वेक्षक था, और लार्ड कनिंघम के शब्दों में 'भारत-स्थित किसी भी अन्य अधिकारी की तुलना में, इसी ने इस देश के पुरावशेषों को अपने अध्ययन का अधिकतर विषय बनाया था, उनका गहन अध्ययन किया था।'

"भारत सरकार के दिनांक ११ फ़रवरी सन् १८७१ के राजपत्र में प्रकाशित गृह-मन्त्रालय (विभाग) के संकल्पानुसार 'सम्पूर्ण देश में पूरी खोज तथा अपनी प्राचीनता, अथवा अपनी सुन्दरता, अथवा अपनी ऐतिहासिक रुचि की दृष्टि से सभी पुरातत्त्वीय और अन्य ध्वंसावशेषों का एक शास्त्रीय, रीतिबद्ध अभिलेख और वर्णनात्मक विवरण' की महत्ता आवश्यकता पर बल दिया गया था।"

"दुबारा प्रयत्नों और समय की व्यर्थ हानि को बचाने के लिए जनरल कनिंघम को कहा गया था कि वह पूर्वकालिक प्रयत्नों के परिणामों की एक संक्षिप्त सूची प्रस्तुत करे। उनको यह भी निर्देश दिया गया था कि वे विभागीय अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिए एक बड़ी योजना बनाएँ जिसमें स्पष्ट बताया जाय कि कौन-सा कार्य पहले ही कर लिया जा चुका था, और क्या करना शेष था, क्या और किस प्रकार की जानकारी एकत्रित करना अभीष्ट था, दृष्टान्तों की श्रेणी-शैली और विभिन्न क्षेत्रों में किये जानेवाले उत्खनन-कार्य का क्रम क्या रखा जाय। उसे अगले वर्ष कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व पिछले वर्ष की गतिविधियों का प्रतिवेदन प्रस्तुत करना अनिवार्य था। इसके साथ-साथ,वार्षिक प्रतिवेदनों और अन्य प्रकाशनों में सन्निहित सामग्री का मिलान करना था,उनका मेल-मिलाप करना अभीष्ट था।"

"कर्मचारी-वर्ग की नियुक्तियों के सम्बन्ध में इस संकल्प में लिखा था: 'यद्यपि एक या अधिक यूरोपीय सहायकों की सेवाएँ इस सम्बन्ध में अपरित्याज्य सिद्ध हों, तथापि अंग्रेज सम्राट् की इच्छा है कि जहाँ तक सम्भव हो, बुद्धिमान् देशी व्यक्ति ही भवनों के चित्र लेने, उनको मापने और उनका सर्वेक्षण करने तथा उत्खनन-कार्य आदि जैसे अन्य सभी कार्यों में नियुक्त किए जाएँ और उनको प्रशिक्षित किया जाए; जहाँ तक शिलालेखों आदि की कूटभाषा पढ़ने का प्रश्न है, यही पूर्णतया उचित प्रतीत होता है कि किसी भी यूरोपीय व्यक्ति की अपेक्षा इस कार्य को करने के लिए देशी व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ होंगे।'

"कनिंघम ने निश्चय किया कि सर्वोत्तम विधि यह होगी कि देश के उन भागों को पहले देखा जाय जिनका सर्वेक्षण आंशिक रूप में पहले हो चुका था। वह फ़रवरी, सन् १८७१ के पिछड़े पखवाड़े में कलकत्ते से चल पड़ा, जौनपुर गया, जहाँ उसने मस्जिदों की रूप-रेखा निश्चित की, और मार्च के प्रारम्भ में ही वह आगरा आ गया। वहाँ वह अपने दो सहायकों जे० डी० बेगलर और ए० सी० एल० कार्लाइल से मिला, तथा उसने उन दोनों से मुग़लों की दिल्ली और आगरा राजधानियों का अन्वेषण करने को कहा। यह कार्य पूरा हो जाने पर उसने राजपूताने के सर्वेक्षण का

कार्य कार्लाइल को और बुन्देलखण्ड का कार्य बेगलर को सौंप दिया, तथा यमुना के उत्तर की दिशा में स्थित ज़िलों का काम अपने-आप ले लिया…।"

"बेगलर ने, जिसे दिल्ली-सर्वेक्षण का आदेश दिया गया था, कुतुब-मीनार के हिन्दू-मूलक होने का विशिष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, किन्तु कनिंघम इसे मानने को किसी भी प्रकार तैयार न था। उसने लिखा: 'कुतुब मीनार एक मज़ीना या मुअज्ज़ीन (नमाज़ के लिए मीनार पर चढ़कर आसपास के सभी मुसलमानों को आवाज़ देकर इकट्ठा करने वाले व्यक्ति) की मीनार होने के लिए, इसके शिलालेखों का साक्ष्य हमें प्राप्त है; इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार अबुलफ़िदा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है जो इसको मज़ीना कहता है…। मुहम्मदी व्यक्ति के लिए तो कुतुब मीनार का विशेष प्रयोजन था जो उसके धर्म के नित्य अभ्यास से अत्यधिक सम्बन्धित था। अतः मेरा निश्चित विश्वास है कि प्रयोजन और आकार-प्रकार, दोनों में ही, यह भवन विशुद्ध मुहम्मदी है, यद्यपि इसके लगभग सभी, पूरे-के-पूरे तो नहीं, निर्माण-विवरण, विशेष रूप में उल्लेख-योग्य कड़ियोंवाली मेहराबें, तोरण हिन्दू हैं।'

"सर अलेक्जेंडर कनिंघम १ अक्तूबर सन् १८८५ तक भारत के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण के महानिदेशक के रूप में कार्य करते रहे…भारतीय पुरातत्त्व के जनक के अनुरूप उन्होंने अत्यधिक कार्य किया…उन्होंने पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण के २३ खण्ड प्रकाशित किए, जिनमें से १३ उन्होंने स्वयं लिखे थे और अन्य खण्ड उन्हीं के अधीक्षण, देख-रेख में उनके सहायकों द्वारा लिखे गये थे।"[1]

अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि भारतीय आरम्भ के शासकों ने

---

१. कलकत्ता और दिल्ली से प्रकाशित दिनांक ७ फरवरी, सन् १९७१ रविवारीय 'स्टेट्समैन' नामक दैनिक अंग्रेज़ी समाचार के अंक में, भारत के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण की शताब्दी के अवसर पर श्री जी० एन० दास द्वारा लिखित लेख का शीर्षक है: "डिगिंग अप द' पास्ट" (विगतकाल का लेखा-जोखा)।

पुरातत्त्व खाता स्थापन कर भारतीय स्थापत्य कला के प्रति उनके प्रेम और आदर का प्रदर्शन किया और भारतीय ऐतिहासिक इमारतों की देख-भाल करने में भारत पर बड़े उपकार किये।

यदि सचमुच ऐसा होता तो जनरल कनिंघम और अंग्रेजी शासन निःसंशय धन्यवाद के पात्र होते। किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं था। कनिंघम के युवा अवस्था से ही उसने एक षड्यन्त्र सोचा था। ऐतिहासिक इमारतों की देखभाल का बहाना बनाकर सारे विद्वज्जगत् को भ्रम में डालने की वह एक गहरी चाल थी।

इसका प्रमाण २८ वर्षीय युवा लेफ्टिनेंट कनिंघम के लिखे एक पत्र से मिलता है। उस समय कनिंघम भारत में गवर्नर जनरल लार्ड ऑकलंड का ए० डी० सी (A.D.C.) था। तबकी बात है। सितम्बर १५, सन् १८४२ के अपने पत्र में लंदन निवासी कर्नल साइक्स (Sykes जो उस समय ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक डायरेक्टर था) को युवा कनिंघम का सुझाव था कि भारतीय ऐतिहासिक इमारतों के सर्वेक्षण से ब्रिटिश शासन को राजनीतिक और ब्रिटिश (गोरी आंग्ल) जनता को बड़ा धार्मिक लाभ हो सकता है।

उसी षड्यन्त्र के अनुसार सन् १८६० के लगभग सेना के मेजर जनरल के पद से मुक्त होने पर कनिंघम को भारत स्थित ऐतिहासिक इमारतों के सर्वेक्षण का कार्य सौंपा गया।

अपने दो अंग्रेज हस्तकों के सहायता से भारत स्थित महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल और इमारतों की सूची लगभग १८६५ तक बनाई गई। और यकायक वह सर्वेक्षण विभाग पांच वर्ष तक बंद कर दिया गया। उन पांच वर्षों में पुरातत्त्वीय दफ्तर में अधिकांश इमारतें हिन्दू राजा-महाराजाओं की होते हुए भी इस्लामी आक्रामकों की बनी दरगाहें, मस्जिदें, कब्रें, मजारें, मीनारें, किले, वाडे, लिखी गईं। और वैसे ही झूठे और बनावटी सूचनाफलक उन ऐतिहासिक इमारतों के बाहर लगवा दिए गए। उद्देश्य यह था कि भारत में हिन्दुओं का तो है ही कुछ नहीं इस विचार से निराश होकर हिन्दू लोग ईसाई बनकर सदा के लिए आंगल-शासन के समर्थक बन जाएंगे। आंग्ल सरकार की मोहर लगा पुरातत्त्व

खाते ने ऐतिहासिक इमारतों का जो मनगढ़न्त ब्योरा तैयार किया उसी को बी०ए०, एम० ए० और पी-एच० डी० की उपाधियाँ पाने के लिए अनेक पीढ़ियों के छात्र दोहराते रहे और वही झूठे सिद्धान्त रटे विद्वान् स्वतन्त्र भारत में भी अधिकार पद पर नियुक्त हैं। अत: स्वतन्त्र-भारत की सरकार और जनता झुठलाया हिन्दू विरोधी इतिहास को ही अनजाने अपनाए हुए हैं। पता नहीं यह ऐतिहासिक झूठों का भयंकर भूत हिन्दुस्थान की छाती से कब उतरेगा। कनिंघम का वह पत्र रॉयल एशियाटिक सोसा-यटी लन्दन के सन् १८४३ की कार्यवाही के खंड में उद्धृत है।

हम पूर्वांकित अवतरण में दिए गए कुछ कथनों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। इन शब्दों का ध्यान कीजिए—"वह फ़रवरी, सन् १८७१ के पिछले पखवाड़े में कलकत्ते से चल पड़ा, जौनपुर गया जहाँ उसने मस्जिदों की रूप-रेखा निश्चित की और मार्च के प्रारम्भ में ही वह आगरा आ गया।" यह स्पष्टत: दर्शाता है कि जब कनिंघम जौनपुर पहुँचा, तब वहाँ मस्जिदों के रूप में व्यवहृत अथवा प्रदर्शित भवनों को उसने यह मान लिया कि वे तथाकथित मस्जिदें मूल रूप में उसी प्रयो-जन से निर्मित हुई थीं। उसकी ऐसी ही भयंकर भूलों से युक्त वे पूर्ण धार-णाएँ हैं जिन्होंने सम्पूर्ण पुरातत्त्वीय अन्वेषण और भारत सरकार के अभि-लेखोंको दूषित कर दिया है। यह दोष इतिहास और वास्तुकला जैसे अन्य क्षेत्रों में भी घुन की भाँति लग गया है। चूंकि कनिंघम ने मान लिया था कि जौनपुर के ऐतिहासिक भवन मूलत: मस्जिदें थीं, अत: पाठ्य-पुस्तकों में भी अन्धानुकरण करते हुए यही धारणाएँ प्रविष्ट हो गईं। इसी प्रकार स्थापत्यकला के विद्यार्थियों को कहा गया कि वे हृदयंगम कर लें कि जौनपुर-स्थित वे भवन एक विशिष्ट कालावधि में मुस्लिम वास्तुकला का प्रतिनिधित्व करते थे। तिथिक्रमानुसार लेखन भी ग़लत हो गया क्योंकि वे तथाकथित मस्जिदें उन सुल्तानों द्वारा नहीं बनायी गई थीं जिनको आज उनका निर्माण-यश दिया जाता है। ये तथाकथित मस्जिदें पूर्वकालिक हिन्दू मन्दिर व अन्य भवन हैं जो हड़प लेने और आधिपत्य में आने के कारण मुस्लिम उपयोग में लिये जाने लगे।

इसी प्रकार जब "कनिंघम ने बैगलर और कार्लाइल को मुग़लों की

दिल्ली और आगरा राजधानियों का अन्वेषण करने को कहा" तब अन्य देशीयों की यह तिगड़ी इस तथ्य से पूर्णतः अनभिज्ञ थी कि आगरा और दिल्ली के मुस्लिम शासक पूर्वकालिक हिन्दू शासकों के किलों और भवनों पर अधिकार करके उनपर अपना स्वामित्व बनाए रहे थे। यह तथ्य "ताजमहल हिन्दू राज भवन है", "फतहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर है" तथा "आगरे का लाल किला हिन्दू भवन है" शीर्षक पुस्तकों में प्रमाणित कर दिया गया है[1]। अतः दिल्ली और आगरा के तथा उनके आसपास के क्षेत्रों के ऐतिहासिक भवनों के सम्बन्ध में उनके श्रमसाध्य पर्यवेक्षण लक्ष्य से अतिदूर होकर दिग्भ्रमित हो गए हैं।

जब बैगलर जैसे विदेशी ने भी भाग्यवशात् और निष्कपट रूप में यह निष्कर्ष निकाला कि तथाकथित कुतुबमीनार एक हिन्दू स्तम्भ था, तब उसे जनरल कनिंघम द्वारा अशिष्ट, सैनिक ढंग पर "चुप" रहने के लिए कह दिया गया था। भारत में सभी ऐतिहासिक संरचनाओं की यही दुःखभरी गाथा है जिनका निर्माण-श्रेय इस या उस विदेशी सुल्तान को दिया गया है, यद्यपि वे सब पूर्वकालिक हिन्दू सम्पत्ति हैं जिनका अपहरण कर लिया गया है, फिर चाहे वे राजमहल हों अथवा नगर, नगरियाँ अथवा नहरें, सड़कें अथवा फाटक, द्वार अथवा नगर-प्राचीरें, मण्डप अथवा स्तम्भ हों। मध्यकालीन मुस्लिमों की ही भाँति स्वयं भी भारत में विदेशी व्यक्ति के समान इन ब्रिटिशों द्वारा इन भवनों को मुस्लिममूलक प्रमाणित हो जाने पर तो ऐतिहासिक और पुरातत्त्वीय पाठ्य-पुस्तकों, सामग्रियों में इसी तीव्र स्वर की गूंज निनादित होने लगी, तथा शोध-प्रबन्धों में इसी स्वर को विकसित किया जाने लगा। इस प्रकार भारतीय पुरातत्त्व और इतिहास के ब्रिटिश-रुचि-अश्व पर "मध्यकालीन मुस्लिम और भारतीय जिहादी पुरातत्त्व" के दो विकराल मतरूपी विचार आरूढ़ हो गए। यही वे दो विचार हैं जो भारतीय अधिकारियों, इतिहास के विद्यार्थियों और अध्यापकों द्वारा बारम्बार प्रतिपादित किए जाते रहे हैं,

---

१. ताजमहल-सम्बन्धी पुस्तक के लेखक श्री पु०ना० ओक हैं। अन्य दोनों पुस्तकें श्री हंसराज भाटिया द्वारा लिखी गई हैं।

जिनको तोता-रटन्त जैसे बार-बार दोहराया जाता है। चूंकि इन दोहरायी जा रही बातों के बारे में किसी भी प्रकार के कोई प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं, अतः वही झूठे विचार अकाट्य सत्य की ही भाँति विश्वास किये जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि स्वतन्त्र भारत की सरकार के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी पुरातत्त्वीय धारणाओं के मृतप्राय और मनस्तापी विचारों का तुरन्त परित्याग कर दे और उन धारणाओं की नए सिरे से समीक्षा करे। भारत के मुकुट के एक अपहरणकर्ता (अर्थात् अंग्रेज़ों) का पूर्वकालिक अपहरणकर्त्ताओं (अर्थात् मुहम्मद-बिन-कासिम से बहादुरशाह ज़फर तक के मुस्लिम सुल्तानों और आक्रामकों) के पक्ष में दिये गये प्रमाण-पत्रों को इस देश के सपूतों (अर्थात् हिन्दुस्तान के हिन्दुओं) के विरुद्ध साक्ष्य के रूप में कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह न्यायिक जाँच-पड़ताल, अन्वेषण का एक स्वीकृत, सर्वमान्य सिद्धान्त है।

यह दर्शा चुकने के बाद कि जनरल कनिंघम की प्रारम्भिक मूल-ग़लती के कारण किस प्रकार भारत की सम्पूर्ण पुरातत्त्वीय विचार-व्यवस्था पथ-भ्रष्ट हो चुकी है, हम अब दिल्ली के लाल किले के सम्बन्ध में उसकी भयंकर त्रुटिमय धारणा का विवेचन करेंगे, जो इस पुस्तक में हमारे अध्ययन का विषय है।

कनिंघम ने पर्यवेक्षण किया है: "पुरानी दिल्ली के सात किले जिनके ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान हैं, मेरे विचार से, निम्नलिखित हैं—

(१) अनंगपाल द्वारा सन् १०५२ ई० के लगभग बनाया गया लालकोट।

(२) राय पिथौरा द्वारा सन् ११८० ई० के लगभग बनाया गया किला राय पिथौरा।

(३) अलाउद्दीन द्वारा सन् १३०४ ई०के लगभग बनाया गया सीरी या किला अलाई।

(४) तुगलकशाह द्वारा सन् १३२१ ई० के लगभग बनाया गया

तुग़लकाबाद।

(५) तुग़लकशाह द्वारा सन् १३२१ ई० के लगभग बनाया गया तुग़लकाबाद का किला।

(६) मुहम्मद तुग़लक द्वारा सन् १३२५ ई० के लगभग बनाया गया आदिलाबाद।

(७) मुहम्मद तुग़लक द्वारा सन् १३२५ ई० के लगभग परिवेष्टित जहाँपनाह।

इस सूची में इन्द्रप्रस्थ का नाम उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि पाण्डवों की इस सुप्रसिद्ध राजधानी को सदैव जमुना नदी के तट पर बसा हुआ बताया जाता है। मुहम्मदी विजय के समय दिल्ली की हिन्दू नगरी लाल कोट और राय पिथौरा के दो किलों तक ही सीमित थी। तैमूर के इतिहास-लेखक शर्फ़ुद्दीन ने पुरानी दिल्ली का नाम हिन्दुओं के दो किलों तक सीमित रखा है, और सीरी व जहाँपनाह का वर्णन पृथक् रूप में किया है। तुग़लक वंश के परवर्ती बादशाहों का उल्लेख करते हुए फ़रिश्ता ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। युधिष्ठिर की इन्द्रप्रस्थ नगरी फ़िरोजशाह कोटला और हुमायूं मकबरे के मध्य जमुना नदी के किनारे-किनारे बसी हुई थी। पुराना किला…हुमायूं द्वारा सुधरवाया गया था, जिसने इसका नाम दीनपनाह कर दिया था, किन्तु पढ़े-लिखे मुसलमानों के अतिरिक्त कोई भी इस नाम का प्रयोग नहीं करता। निगम-बोध घाट उस स्थान के रूप में विख्यात है जहाँ युधिष्ठिर ने अश्व-मेघ यज्ञ के समापन पर होम पूर्ण किया था…।"[१]

उपर्युक्त अवतरण का सूक्ष्म विवेचन कनिंघम की विचारधारा में व्याप्त संभ्रम को स्वयं स्पष्ट कर देगा। हम यह भी प्रदर्शित करेंगे कि किस प्रकार उपरिलिखित अवतरण में इस बात के विपुल मात्रा में पर्याप्त प्रमाण उपस्थित हैं कि इसमें उल्लिखित सभी संरचनायें मुस्लिम-पूर्व की

१. अलेक्जेंडर कनिंघम, शिमला, सन् १८७१ द्वारा सन् १८६२-६५ के मध्य प्रस्तुत भारत के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण के चार प्रतिवेदन, खण्ड १, पृष्ठ-संख्या १३४ से १३६।

हिन्दू-मूलोद्भव हैं।

आइए, हम सर्वप्रथम कनिंघम के इस पर्यवेक्षण की परीक्षा करें कि "पुरानी दिल्ली के सात किले, जिनके ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान हैं, मेरे विचार से, निम्नलिखित हैं।" उसे किसी भी 'विचार' को प्रकट करने का तब तक क्या अधिकार है जब तक कि वह यह न बता दे कि वे कौन-से मूल साक्ष्य हैं जिनपर उसने अपना 'विचार' आधारित किया है? उसने सर्वप्रथम इन अनेकों सूत्रों और लक्षणों का नामोल्लेख और वर्णन किया होता जिनपर आधारित होकर उसने अपना निष्कर्ष निकाला है।

किसी मामले में युक्ति, तर्कादि प्रस्तुत किए बिना ही निराधार निष्कर्षों पर पहुँच जाना अत्यन्त दोषपूर्ण प्रणाली है। किसी भी कीर्तिमान से परखी जाय, ऐसी प्रणाली दोषपूर्ण ही है। इस प्रकार इतिहास अथवा पुरातत्त्व के अध्ययन-कार्य में यह प्रणाली अत्यन्त अमान्य, अस्वीकार्य, अग्राह्य है। न्यायिक अन्वेषण, जाँच और तर्कशास्त्र में निपट रूढ़िवादी कथन निरर्थक माने जाते हैं। एक सैनिक अधिकारी होने के कारण कनिंघम शायद सोचता था उसका शब्द तो आदेश है, और इसे माना ही जाना चाहिए। हो सकता है कि सैनिक प्रणाली में वरिष्ठ व्यक्ति आदेश-मात्र का ही उच्चारण करता है। उससे यह अपेक्षित नहीं होता कि वह कारण भी स्पष्ट करे। और कनिष्ठों से भी अपेक्षित नहीं होता कि वे उस आदेश की युक्तियुक्तता के बारे में कुछ अपनी बुद्धि भी लगायें। किन्तु ऐसी रूढ़िवादी बातों का शैक्षिक जगत् में कोई स्थान और कोई मूल्य नहीं होता। कनिंघम की मानसिक संरचना और इतिहास एवं पुरातत्त्व-अध्ययन के प्रति उसकी अवगाहन-वृत्ति में इस मूल दोष की ओर संकेत कर देने के बाद, अब हम उसके अन्य पर्यवेक्षणों की समीक्षा करेंगे।

श्री कनिंघम कहते हैं कि "लालकोट का निर्माण अनंगपाल द्वारा सन् १०५२ ई० के आसपास किया गया था।" यदि ऐसी ही बात है तो स्पष्ट है कि हम जिसे आज लालकिला कहकर पुकारते हैं, वही प्राचीन 'हिन्दू लालकोट' है क्योंकि 'लाल' तो 'लाल' है और 'कोट' ही 'किला' है।

'लालकिला' शब्दसमूह 'लालकोट' का यथार्थ और सुस्पष्ट पर्याय है। साथ ही, दिल्ली में अथवा दिल्ली के आसपास ऐसी कोई इमारत नहीं है जिसकी दीवार लाल हो—मात्र यह लालकिला ही ऐसा भवन है। तथ्यतः हिन्दू नगर, राजा के महल (निवास-स्थान) के चारों ओर ही बसा करते थे, और उनके नाम भी इन्हीं नामों पर हुआ करते थे। इसी सतत-अभ्यास के कारण तो हमें प्राचीन हिन्दू नगरियों के नाम भद्रकोट, सिद्धकोट, बागल कोट, अकोट, अमरकोट, मानकोट, लालकोट, सियालकोट, और लोहकोट आदि के रूप में प्राप्त होते हैं।

अतः, यदि कनिघम ने तर्कशास्त्र और न्यायिक अन्वेषण की विधि का अध्ययन किया होता, तो उसने तुरन्त जान लिया होता कि लालकोट जिसका श्रेय वह अनंगपाल को देता है, वही है जिसे हम 'लालकिला' कहते हैं। इसके स्थान पर, उसने अपनी विचित्र धारणा पर विश्वास करना अच्छा समझा। इस प्रकार की धारणा ने, वह भी विशेष रूप में उस व्यक्ति की जो अशिष्ट सैनिक विधि का नित्याभ्यासी था और जो मध्यकालीन मुस्लिम ढकोसलों की धोखाधड़ी और बकवाद से पूर्णतः अनभिज्ञ अन्यदेशीय व्यक्ति था, भारतीय पुरातत्त्व और इतिहास के अध्ययन को पर्याप्त हानि पहुँचायी है। इस धारणा ने उन सभी विद्वानों, विद्यार्थियों और शिक्षकों को, जिनको भारतीय पुरातत्त्व, इतिहास और स्थापत्यकला से तनिक भी सरोकार है, स्थायी रूप में दिग्भ्रमित कर दिया है।

स्पष्ट है कि भारतीय मध्यकालीन इतिहास की शिक्षा देनेवाले विश्वभर के सभी विश्वविद्यालयों ने जनरल कनिघम के दृष्टिकोण को पूर्णतः अन्ध-विश्वास करके शिरोधार्य कर लिया है, मात्र इसलिए कि वह, संयोगवश, भारत में प्रस्थापित पुरातत्त्व-विभाग का प्रधान पदाधिकारी रहा। किन्तु हम जैसा प्रदर्शित कर चुके हैं, कनिघम की रूढ़िवादी धारणा को ऐतिहासिक निष्कर्षों के लिए आकर-सामग्री के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता। हम पुनः बल देकर कहना चाहते हैं कि वह पूर्णतः गलती पर था, और मात्र दिल्ली व आगरा के ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारत के विभिन्न भवनों के निर्माताओं का निर्धारण करने

वाले विषय पर, फिर से, आदितः विचार करने की आवश्यकता है।

यह कह लेने के पश्चात्, अब हम अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। हम अत्यन्त बल देकर कहना चाहते हैं कि भारत में सभी ऐतिहासिक भवन मुस्लिम-पूर्व हिन्दू-मूलक हैं। जहाँ तक हमें जानकारी है, भारत में एक भी मध्यकालीन भवन ऐसा नहीं है जिसका निर्माण-श्रेय किसी मुस्लिम व्यक्ति को दिया जा सके। यदि आज वे भवन मकबरों और मस्जिदों के रूप में परिवर्तित खड़े हैं,तो उनका यह परिवर्तित रूप तो निरन्तर मुस्लिम आधिपत्य की अवधि में उन हिन्दू-भवनों पर थोप दिया गया था। कनिंघम के विपरीत, हमारा यह कथन मात्र धारणा पर आधारित न होकर, स्वयं स्मारकों के अति-सूक्ष्म विवेचन और ऐतिहासिक साक्ष्य की परीक्षा पर आधारित है।

भवनों में अष्टकोणात्मक आकार, पुष्पाच्छादित गुम्बद; स्वस्तिक, चक्र, कमल और अन्य ऐसे ही हिन्दू-लक्षणों की उनके ऊपर निर्मित, गो-पुच्छाकार अलंकरण और शंकु-आकार मेहराबें (तोरण), एवं भवनों की ध्वंसावशिष्ट-स्थिति स्पष्ट दर्शाती है कि अत्यन्त प्रबल प्रतिरोध के बाद ही मुस्लिमों के हाथ में वे भवन जा पाये थे। मुस्लिम दरबारी-कागज-पत्रों में किसी भी अभिलेख का अभाव तथा यह परिस्थिति-साक्ष्य कि वे भवन उनके काल्पनिक रचनाकारों से पूर्वकाल के हैं—ये ही वे विभिन्न कारण हैं जिनके आधार पर हमारा निष्कर्ष यह है कि भारत की सभी मध्य-कालीन ऐतिहासिक संरचनाएँ—इमारतें—मुस्लिम-पूर्व-युगीन हिन्दू-मूलोद्गम हैं।

हमें अनेक बार ऐसे व्यक्ति मिले हैं जो उपर्युक्त निष्कर्ष पर पूरी तरह हक्के-बक्के हो जाते हैं और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर प्रश्न करते हैं कि मुस्लिम-शासन की लगभग हजारवर्षीय दीर्घावधि में उन लोगों ने भारत में एक भी भवन-निर्माण कैसे नहीं किया ?

उनको उनके प्रश्न का संगत उत्तर प्राप्त कराने की दृष्टि से हम उनकी सहायतार्थ, उनके विचारार्थ एक अन्य प्रश्न प्रस्तुत करते हैं। विगत पर्याप्त दीर्घकालखण्ड में यही बार-बार कहा जाता रहा है कि पाँडवों से लेकर पृथ्वीराज तक के भारतीय नरेशों और सम्राटों, दरबारियों और सरदारों

धनी व्यापारियों और अन्य गण्यमान्य व्यक्तियों ने लगभग तीन हजार वर्षों की लम्बी अवधि में एक भी भवन का निर्माण नहीं किया था जबकि अरेबिया से लेकर अफ़गानिस्तान तक के बर्बर, अशिक्षित, धर्मान्ध आक्रान्ताओं ने, जो अपने शासनकाल की निरन्तर अवधि में सतत दुर्धर्ष संघर्षों में फंसे रहे, मकबरों और मस्जिदों की पंक्तियों की पंक्तियां बनाकर खड़ी कर दीं।

उपर्युक्त दोनों बातों में से कौन-सी बात अधिक युक्तियुक्त और विश्वसनीय है ? अपने ही देश में सार्वभौम सत्ता-सम्पन्न, हिन्दुस्थान में हिन्दू लोग, शांति और समृद्धि के ३,००० वर्षों की अवधि में,अपने लिए भवन, स्तम्भ, राजमहल, प्रासाद, नहरें, सड़कें, मन्दिर और सरायों का निर्माण करते अथवा अरेबिया से लेकर अफ़गानिस्तान तक के अन्यदेशीय, धर्मान्ध, बर्बर आक्रमणकारियों का वर्ग, हिन्दुस्थान में अपनी अति अल्पकालीन तथा परस्पर रक्त-पिपासु संघर्षमय शासनावधि में, अपने घृणित पूर्वजों और प्रजाजनों के लिए मुख्यतः मकबरों और मस्जिदों के समूहों का निर्माण करते ? क्या आक्रमणकारी लोग विजित प्रदेशों में निर्माण-कार्य करने आते हैं—या उस प्रदेश पर तथा वहां पहले से ही बने हुए भवनों पर अपना अधिकार करने ?ग्रहीता तो अनुचित रीति से, बलपूर्वक हथियानेवाला होता है।

जब इन दोनों परिस्थितियों पर एकसाथ विचार किया जाएगा, तभी यह अनुभव किया जा सकेगा कि हिन्दू लोग तो महान् निर्माण-कर्ताओं के रूप में सुप्रसिद्धिप्राप्त व्यक्ति रहे हैं। यह तो उनके लिए अत्यन्त सहज, स्वाभाविक बात थी कि वे अपने ही देश में, भव्य भवनों और मन्दिरों का निर्माण करते। इसी प्रकार, मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए भी यह उतनी ही सहज स्वाभाविक था कि वे भारत के शानदार राजोचित भवनों और यहाँ की धन-सम्पत्ति से इसकी ओर आकर्षित होते। अतः, दिल्ली-लाहौर और आगरा आदि स्थानों के किले तथा ऐतमादुद्दौला, हुमायूँ, अकबर और सफ़दरजंग के तथाकथित मकबरे, और कुतुबमीनार व ताजमहल की भांति, पेशावर से लेकर कन्याकुमारी तक के सभी मध्यकालीन भवन पूर्वकालिक हिन्दू भवन हैं जिनका निर्माण-

श्रेय विभिन्न मुस्लिम बादशाहों को व्यर्थ ही, असत्यरूप में दे दिया गया है।

इस प्रकार, जब हम हिन्दुस्थान के भवनों पर अपने स्वामित्व का दावा प्रस्तुत करते हैं, तब उसमें पर्याप्त औचित्य होता है जबकि कनिंघम के दावे में कोई औचित्य, कोई युक्तियुक्तता नहीं है। हम अब यह विवेचन करेंगे कि कनिंघम द्वारा संदर्भित दिल्ली की तथाकथित सभी सातों नगरियाँ किस प्रकार मुस्लिम-पूर्व युग की हिन्दू संरचनाएँ हैं।

लालकोट उपनाम लालकिला अनंगपाल द्वारा सन् १०५२ ई० के लगभग ही बना होगा, जैसा कनिंघम का मत है। किन्तु चूंकि उसने अपने विश्वास के औचित्य हेतु कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है, अतः सम्भव है कि उसका यह मत भी उसकी धारणा-मात्र पर ही आश्रित हो। यदि ऐसा ही है और यदि अन्य कोई सशक्त प्रमाण उपलब्ध नहीं है तो हमारा यह मत है कि (लगभग सन् १०५२ ई० अथवा जो भी काल-खंड हो) अनंगपाल के शासनकाल में लालकिला लालकोट के नाम से ही पुकारा जाता था, किन्तु यह उससे भी शताब्दियों पूर्व का बना हुआ हो सकता है।

हमारे इस निष्कर्ष का आधार यह है कि कीन नामक अधिक विवेकी विद्वान् ने आगरा-स्थित इसी प्रकार के एक अन्य किले का इतिहास अशोक के काल अर्थात् ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी तक खोज निकाला है[1]। चूंकि दिल्ली और आगरा के लालकिलों की रूप-रेखा, भवन, साज-सज्जा और निर्माण-शैली में अत्यधिक समानता है, इसलिए हमें विश्वास करना पड़ता है कि दिल्ली का लालकिला भी इतना ही पुराना है जितना आगरा स्थित लालकिला। यह भी सम्भव है कि लालकिला महाभारत के युग से उसी प्रकार सम्बन्धित हो जिस प्रकार 'पुराना किला' नाम से पुकारा जानेवाला किला सम्बन्धित है।

इस निष्कर्ष की पुष्टि करनेवाला एक अन्य आधार यह है कि दिल्ली का प्राचीनतम दुर्ग अर्थात् 'पुराना किला' इस नाम से मात्र इसी कारण

१. आगरा दर्शनार्थियों के लिए कीन की निर्देशिका।

पुकारा जाता है कि यह दिल्ली में सबसे पुराना दुर्ग है। यदि ऐसा है, तो पुरानी दिल्ली नगरी भी दिल्ली की सबसे प्राचीन नगरी होने के अतिरिक्त अन्य कुछ हो ही नहीं सकती। अतः, यह विश्वास भ्रामक है, असत्य है कि पुरानी दिल्ली की स्थापना मुग़ल बादशाह शाहजहाँ ने सत्रहवीं शताब्दी में की थी।

निगमबोध घाट का उल्लेख महाभारत में है। इसी का उल्लेख कनिंघम ने किया है जब उसने कहा कि : "यह वह स्थान है जहाँ (महाभारतकालीन पांडव वीरों के ज्येष्ठतम) युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया था।" निगमबोध एक अन्तिम छोर पर है और पुराना किला दूसरे छोर पर स्थित है। उनके मध्य यमुना फैली हुई है। दोनों दिशाओं के ओर-छोर पर बनी ये संचरनाएँ यदि पाण्डव-युग से सम्बन्ध रखती हैं, तो बीच में बनी अन्य सभी संरचनाएँ अर्थात् प्राचीर-युक्त दिल्ली नगरी, लालकिला तथाकथित फ़िरोज़शाह कोटला एवं राजघाट, स्वतः पाण्डव कालीन सिद्ध होती हैं। जब पाण्डवों ने एक मार्ग के दोनों कोनों पर, अपने उपयोग के लिए दो मुख्य उल्लेखनीय स्थान बना लिए थे, तो क्या वे महत्त्वपूर्ण नदी-मुख के साथ-साथ बड़ा भारी खाली स्थान छोड़ देते ?

किन्तु, मुआमला यहीं समाप्त नहीं हो जाता। हम पाठक को 'पुराना किला' से भी तनिक आगे की ओर ले-जाना चाहते हैं। जिस प्रकार पुरानी दिल्ली नगरी और इसका लालकिला, ग़लती से, मध्यकालीन मुस्लिमों से सम्बद्ध कर दिए गए हैं, उसी प्रकार (धन-सम्पत्ति की देवी संस्कृत शब्द नाम 'श्री' का अपभ्रंशरूप) सीरी की प्राचीन नगरी, विजयमंडल नाम से पुकारा जानेवाला भवन-संकुल, निकटस्थ बेगमपुरी मस्जिद और असंख्य अनाम मकबरों के रूप में दृष्टिगोचर भव्य हिन्दू-भवन, तथाकथित हौज़ खास संरचना, किला राय पिथौरा, कुतुब-संकुल, तुग़लकाबाद किला और नगरी, तथा सूर्यकुण्ड सुदूर तक सु-विस्तृत महान् भव्य प्राचीन हस्तिनापुर-इन्द्रप्रस्थ नामक सहोदरा महानगरी के भाग थे। इसकी विशाल सीमा-परिधि में आज असत्य-रूप में 'निज़ामुद्दीन की दरगाह' नाम से पुकारे जाने-वाले स्थान के ध्वंसावशेष, तथाकथित सफ़दरजंग और हुमायूं के मकबरे-वाले भवन, और रोशनआरा मकबरे व अन्य मकबरों-मस्जिदों के असत्य-

रूप में आज दिखाई पड़ने वाला 'सब्जी-मण्डी' क्षेत्र भी सम्मिलित था। ये सभी प्राचीन दिल्ली के हिन्दू-मन्दिर व भवन हैं चाहे मुस्लिम-विजय और आधिपत्य के बाद से इनको मकबरों और मस्जिदों के रूप में घोषित कर दिया गया है।

दिल्ली के प्राचीन ध्वंसावशषों में एक भी, वास्तविक, मुस्लिम भवन का अस्तित्व नहीं है। इस बात को विद्यमान ध्वंसावशेषों द्वारा उन्हीं स्थानों पर तथा परस्पर विरोधी मुस्लिम तिथिवृत्तों और स्वयं भ्रमजालों, ढकोसलों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

अतः, कनिंघम द्वारा सात दिल्ली वाली काल्पनिक सूची-निर्माण की, जिसमें इस या उस अन्यदेशीय मुस्लिम आक्रमणकारी को उसका निर्माण-श्रेय दिया गया है, यथासम्भव कठोतरम शब्दों में निन्दा की जानी चाहिए क्योंकि इसने इतिहास के समस्त संसार को, सम्पूर्ण मानवता को दिग्भ्रमित किया है। पथभ्रष्ट किया है। चूंकि कनिंघम पुरातत्त्वीय विभाग का सर्वेसर्वा रहा था, इसलिए इस तथ्य को पूर्णतः दृष्टि से ओझल करते हुए कि उसने निराधार कल्पनाएँ और अपने ऊटपटाँग विचार प्रकट किए थे, अनेक पीढ़ियों ने अभी तक उस पर सहज ही विश्वास कर लिया।

हमारे अपने इस युग में भी दिल्ली सभी दिशाओं में १०-१०, १२-१२ मील तक फैली है। इसमें अनेक बस्तियाँ हैं, किन्तु हम यह नहीं कहते कि ७ या १२ दिल्ली स्थित हैं। हम कहते हैं कि यह एक विशाल नगर है। दिल्ली हमारे अपने युग में भी इतनी फैली हुई है यद्यपि आज तथ्य यह है कि हम छोटे-छोटे वर्गों में और छोटे-छोटे घरों में रहते हैं। मध्यकालीन युग में, लोगों के बड़े-बड़े अविभाजित परिवार थे; इसके अतिरिक्त उनकी अर्थ-व्यवस्था कृषि-आधारित थी जब प्रत्येक परिवार का एक बहुत बड़ा भवन होता था जो विस्तृत खेतों, बड़े चकों और बाग़-बगीचों में हुआ करता था। उनको उन स्थानों की देखभाल अथवा सुरक्षा के लिए भी बहुत सारे लोगों को काम पर नियुक्त करना पड़ता था। इन्हीं के साथ-साथ बहुत अधिक संख्या में घोड़ों, ऊँटों, गायों और हाथियों को भी रखना पड़ता था। इन सबके लिए इनको सुविस्तृत आवास-

भूमि और क्षेत्रभूमि अपने पास रखनी पड़ती थी। यही कारण है कि प्राचीन दिल्ली निगमबोध-घाट से तुग़लकाबाद और सूर्यकुण्ड तक चारों ओर बहुत अधिक फैली हुई थी। जिस युग में हिन्दू-भारत के सभी भागों में दूध और शहद की नदियाँ बहा करती थीं और प्रत्येक चिमनी में से स्वर्ण (सोने) का धुआँ निकला करता था, उन दिनों के वे सब भव्य भवन, जो असंख्य संख्या में हुआ करते थे, या तो भूमिसात् कर दिए गए हैं अथवा मकबरों के साथ ध्वंसावशेषों के रूप में अथवा अपने अन्दर इमाम का स्थान बनाए हुए, दिखाई दे रहे हैं।

अपहरण-कार्य के लिए यह दुर्नीति अच्छी हो सकती है किन्तु इसी कारण उन भव्य ध्वंसावशेषों अथवा लुप्त भवनों के हिन्दू-मूलक होने के तथ्य को ओझल कर देने के लिए इतिहासकारों को पथभ्रष्ट, दिग्भ्रमित नहीं हो जाना चाहिए।

हम यहाँ यह बात इंगित करना चाहते हैं कि किस प्रकार तथाकथित इतिहास-लेखकों ने सदोष कार्य-प्रणाली का अनुसरण किया है। कहीं किसी भवन के हिन्दू-मूलक होने का प्रमाण, उसका साक्ष्य भवन के नाम से उपलब्ध होता था, उसे इतिहास-लेखकों ने उपेक्षित किया, यद्यपि कई उदाहरणों में उन लोगों ने ही अन्य सभी साक्ष्यों की पूर्ण उपेक्षा करके ही भवनों का मूल उनके नाम-मात्र से ही निश्चित कर दिया है। इस प्रकार, मात्र इसी कारण, बिल्कुल निराधार ही,सफ़दरजंग,अकबर और हुमायूँ की कब्रों को शरण दिए हुए राजप्रासादीय, भव्य-भवनों को मूल-रूप में मकबरे स्वीकार कर लिया गया है मात्र इसलिए कि वे सफ़दरजंग के, अकबर के, या हुमायूँ के मक़बरे के रूप में पुकारे जाते हैं। उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि कोई भवन कई वर्षों तक एक विशाल आवासीय निर्माण रहा हो, फिर पाठशाला बन गया हो, उसके भी बाद में सरकारी कार्यालय तथा ऐसे ही कुछ और बन गया हो। किसी विशेष समय में, किसी विशेष प्रयोजन-हेतु भवन के उपयोग-मात्र को ही यह साक्ष्य नहीं माना जा सकता कि वह भवन मूल-रूप में ही उस प्रयोजन से निर्मित हुआ था।

इसी का एक विपरीत उदाहरण दिल्ली के पुराने किले में बनी एक छोटी, 'शेर-मण्डल' नामक गोलाकार दुमंजिली संरचना से प्राप्त होता है।

है। इतिहासकारों ने इस भवन का निर्माण-श्रेय, अंधाधुंध, शेरशाह को दे दिया है जो अन्यदेशीय, अपहरणकर्ता था और जिसने अतिसंघर्षमय पाँच वर्ष की अवधि-मात्र में शासन किया था। इस निर्माण-श्रेय प्रदान करने के पक्ष में इन इतिहास लेखकों के पास कागज का एक छोटा टुकड़ा भी नहीं है। शेरशाह स्वयं भी अपने लिए इतनी छोटी-सी संरचना न करता। साथ ही, वह इसे 'मंडल'—संस्कृत नाम कभी न देता। यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि वह एक अपहारक और लुटेरा था जिसको हिन्दू और संस्कृत की प्रत्येक वस्तु से घोर घृणा थी। अतः, स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि 'मंडल' उस पूर्वकालिक हिन्दू भवन का एक भाग, एक कोने का स्तम्भ है जिसे शेरशाह अथवा उसके मुस्लिम परवर्तियों ने विनष्ट कर डाला। इस निष्कर्ष की पुष्टि इस तथ्य से आगे भी होती है कि शिवाजी के विशालगढ़ किले में और गुलबर्गा के किले में भी ऐसे ही केन्द्रीय स्तम्भ हैं जो 'रण-मण्डल' के नाम से पुकारे जाते हैं। अतः, यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि दिल्ली के पुराने किले में बना हुआ स्तम्भ, जो उसी प्रकार 'रण-मण्डल' कहलाता था, बाद में 'शेर-मण्डल' नामांकित हो गया है। संस्कृत में युद्ध का द्योतक 'रण' शब्द किले के भीतर एक केन्द्रीय स्थान पर एक केन्द्रीय पर्यवेक्षण-स्तम्भ का द्योतक होता था। इस प्रकार, प्रचलित नाम भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं; यदि व्यक्ति को केवल इतना-भर ज्ञात हो जाय कि कौन-सा भाग इस शब्द में मूल है, और कौन-सा भाग बाद में जोड़ा गया है। ऐतिहासिक भवनों के मूल के सम्बन्ध में अन्वेषण और सूत्रों के बारे में इस प्रकार के विश्लेषण को, प्रतीत होता है कि सभी इतिहास-लेखक अभी तक विस्मरण किये बैठे हैं।

इतिहासकार दिल्ली के विस्मयकारी और सुविस्तृत ध्वंसावशेषों को जब अपने हिन्दू विगत काल के शेष-चिह्नों के रूप में परिलक्षित करेंगे, तभी वे लोग एक संगत, सम्पृक्त और विश्वसनीय विवरण प्रस्तुत कर पाएंगे। प्रचलित आंग्ल-मुस्लिम वर्णन तो असंगत, परस्पर-विरोधी और आधार-हीन कथनों के भूठे पिटारे हैं।

उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप, कनिंघम से जो भी एकमात्र महत्त्व-

पूर्ण जानकारी हमें प्राप्त हो पाती है, वह यह है कि मुस्लिम-पूर्व युग की प्राचीन हिन्दू-नगरी में लालकोट एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, उल्लेखनीय स्थान था।

अतः, हमारा निष्कर्ष है कि वही हिन्दू लालकोट आज हमारे युग में भी विद्यमान है जो अनूदित होकर 'लाल किला' कहलाता है। हम अपनी इस धारणा के समर्थन में, अगले अध्यायों में अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत करेंगे।

अध्याय २

शाहजहाँ को निराधार श्रेय

हम इस अध्याय में पाठक के सम्मुख, एक के बाद एक अनेकानेक पुस्तकों से उद्धरण इस आशय से प्रस्तुत करना चाहते हैं कि वह भली-भाँति समझ जाय कि एक के बाद एक लेखक ने बिना किसी आधिकारिक बात का प्रमाण दिये ही, किस प्रकार दिल्ली-स्थित लालकिले के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को दे दिया है।

खेद की बात तो यह है कि भारतीय इतिहास और पुरातत्त्व से सम्बन्धित मुआमलों में ऐसी ही पुस्तकों को आधिकारिक समझा गया है। इससे भी अधिक हजार गुणा खेद की बात यह है कि ऐसी पुस्तकों के लेखकों को ऐसे अधिकार-सम्पन्न पदों पर बैठा दिया गया है कि वे इतिहास अथवा पुरातत्त्व का प्रशासन, नियमन करें, इतिहास के प्रश्न-पत्र लिखें अथवा देखें, इतिहास का पाठ्य-क्रम सुनिश्चित करें-लिखें और शोध करनेवाले छात्रों को मार्ग-दर्शन प्रदान करें।

सम्पूर्ण शैक्षिक विचार-विमर्श के समय व्यक्ति को अपने निष्कर्ष किसी ठोस तर्क अथवा सशक्त आधिकारिक तथ्य पर आधारित करने होते हैं। लालकिले के निर्माण का श्रेय (शाहजहाँ को देते समय) तथाकथित इतिहासकारों ने दोनों में से एक भी नहीं किया है। दिल्ली में लालकिला निर्माण करवाने का श्रेय पाँचवें मुग़ल बादशाह शाहजहाँ को देने वालों ने अपने कथनों का आधार बताए बिना ही पाठकों को वही

रूढ़िवादी वक्तव्य दे दिये हैं कि शाहजहाँ ने दिल्ली का लालकिला बनवाया था।

ब्राउन ने लिखा है : "(शाहजहाँ की भवन-निर्माण की) इन योजनाओं में से एक योजना तो बादशाह के इस संकल्प का परिणाम थी कि साम्राज्य की राजधानी पुनः आगरा से दिल्ली बदल दी जाय। इसके लिए उसने जमुना के दाएँ तट पर एक खाली भू-खंड पर शाहजहानाबाद नामक शहर की योजना बनानी प्रारम्भ कर दी। इस परियोजना का मुख्य अंश राजप्रासादीय दुर्ग था···।"[1]

उपर्युक्त अवतरण में परसी ब्राउन ने यह नहीं बताया है कि किस आधार पर यह कहा है कि शाहजहाँ ने अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदली थी। वह हमें यह भी नहीं बताता कि उसे यह बात किसने बताई कि उपर्युक्त घटना सन् १६३८ ई० में घटी थी। स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों बातों को सत्य सिद्ध करनेवाली कोई समकालीन आधिकारिक वस्तु नहीं है। परसी ब्राउन ने किन्हीं सुनी-सुनाई बातों पर अन्धविश्वास कर लिया है। प्रत्यक्ष रूप में देखने पर तुरन्त ही ज्ञात हो जाता है कि उसकी धारणा, कल्पना बेहूदी है क्योंकि क्या यह विचार शक्य प्रतीत होता है कि शाहजहाँ, दिल्ली नाम से पुकारे जाने वाले सुनसान स्थान के लिए आगरा छोड़ दे और फिर वहाँ नगर-निर्माण प्रारम्भ करे ?

साथ ही, हमें आश्चर्य इस बात का होता है कि यह असत्य बात सर्वप्रथम प्रचारित किसने की ? शाहजहाँ के शासन के अध्ययन से निकले निष्कर्षों और हमारी जानकारी के अनुसार तो उसने अपनी राजधानी कभी भी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित नहीं की। बादशाह के रूप में अपनी शासनावधि के अन्त तक और (अपने अपहारक पुत्र औरंगजेब के बन्दी के रूप में) अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक, शाहजहाँ आगरा में ही रहा, और आगरा को ही अपनी राजधानी बनाए रहा, उसका अनुरक्षण करता रहा। यदा-कदा उसने अपना दरबार दिल्ली में भी वैसे ही

१. परसी ब्राउन कृत 'भारतीय वास्तुकला' (इस्लामी युग), तीसरा संस्करण, पृष्ठसंख्या १११

लगा लिया होगा जैसे उसने बुरहानपुर और लाहौर जैसे नगरों में किया था, किन्तु उसने उन नगरों को कभी अपनी राजधानी नहीं बनाया था। चूंकि मध्यकालीन युग में बादशाह ही सभी सार्वजनिक मामलों की धुरी होता था, इसलिए बादशाह जिस भी समय किसी नगरी-विशेष में होता था, वह नगरी उस समय उसकी राजधानी बन जाया करती थी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अमरीकी राष्ट्रपति का कार्यालय उसी के साथ-साथ चलता-फिरता माना जाता है। कहने का भाव यह है कि जब अमरीकी राष्ट्रपति वायुयान में यात्रा कर रहा होता है, तब वही वायुयान उसका कार्यालय बन जाता है। किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं है कि वाशिंगटन-स्थित उसके कार्यालय में से सभी कर्मचारीवृन्द, अन्य स्थापना-कक्ष और राष्ट्रपति का शेष ताम-झाम हटा लिया जाता है।

हम आगे चलकर इस पुस्तक में एक तत्कालीन चित्र यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करने वाले हैं कि शाहजहाँ ने दिल्ली के लालकिले में सन् १६२८ ई० में अपना दरबार लगाया था। यही वर्ष उसकी ताजपोशी का—सिंहासनारूढ़ होने का था। हम इस चित्र द्वारा उनका मुंह भी बन्द करना चाहते हैं जो यह कहते थकते नहीं कि राजगद्दी पर बैठने के अनेक वर्षों बाद शाहजहाँ ने ही इस लालकिले का निर्माण करवाया था। हम यह चित्र उन लोगों को भी दिखाना चाहते हैं जो परसी ब्राउन जैसे कहते हैं कि शाहजहाँ ने सन् १६३८ ई० में अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित कर ली थी।

हम अब पाठक को यह बतायेंगे कि हम क्यों ऐसा मानते हैं कि अपनी शासनावधि की समाप्ति तक शाहजहाँ आगरा को ही अपनी राजधानी बनाए रहा! इतिहासकार लोग अति भाव-विभोर होकर शाहजहाँ की पत्नी मुमताज के प्रति उसके काल्पनिक प्रेम की अत्यधिक सराहना करते रहे हैं। हमें बताया जाता है कि वह सन् १६३० ई० के आसपास मरी, कि शाहजहाँ ने उसके लिए आगरा में अत्यन्त विस्मयकारी मक़बरा बनवाया, कि वह अपनी बाक़ी सारी जिन्दगी-भर ताजमहल नाम से पुकारे जानेवाले उस विस्मयकारी मक़बरे के प्रतिबिम्ब को आगरे के किले में एक दीर्घा में गड़े हुए एक अत्यन्त छोटे कांच में देखता रहा, और मुमताज के

के नाम पर आहें भरता रहा, ग़श खाकर मूच्छित होता रहा। यह सब काल्पनिक, मनघडन्त, झूठा है[1]। किन्तु इस समस्त सामग्री के संग्राहकों, इन कहानियों के कथाकारों के शब्दों का ही आदर करते हुए हम उनसे प्रश्न करना चाहते हैं कि क्या इस प्रकार का शाहजहाँ अपनी उस पत्नी की मृत्यु के आठ वर्ष बाद ही, वह सदैव के लिए आगरा छोड़ जाएगा ?

दूसरी बात, जिन लोगों ने शाहजहाँ के शासनकाल का अध्ययन किया है उनको स्मरण होगा कि जब सितम्बर, १६५७ ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ा, तो वह उस समय आगरे के किले में ही निवास-स्थान बनाए हुए था। कुछ महीनों तक, शाहजहाँ के बड़े बेटे दारा ने ही आगरा से शाहजहाँ के निर्देशानुसार सारा राजकाज चलाया था। बाद में, जब शाहजहाँ के अति धूर्त तीसरे बेटे औरंगज़ेब ने अपने तीन भाइयों को पराजित कर दिया और स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया, तो आगरे के किले में ही बन्दी बनाए हुए अपने पिता शाहजहाँ की शर्म करने के कारण उसे बलात् दिल्ली में अपना डेरा लगाए रहना पड़ा था।

यह सिद्ध करता है कि शाहजहाँ द्वारा अपनी सरकार की राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित करने की मनघड़न्त कहानी मात्र इसलिए प्रचारित की गई है कि इस झूठी कथा को कुछ स्वीकार्य आधार मिल जाय कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली अर्थात् शाहजहानाबाद नामक नगर बसाया, और इसने लालकिले तथा विशाल जामा-मस्जिद का निर्माण कराया था। इन्हीं कारणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शाहजहाँ ने न तो अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरिक की, और न ही कोई नगर, उसका किला अथवा कोई भी भवन बनवाया। शाहजहाँ दिल्ली आया-जाया करता था और जब सरकारी काम-काज को अनिवार्यता होती थी, तो वह अपने सभी काम दिल्ली के प्राचीन हिन्दू लालकोट—लालकिले से ही, मालिक के रूप में, चलाया करता था।

---

१. श्री पुरुषोत्तमदास नागेश ओक लिखित "ताजमहल राजपूती राज-भवन है" पुस्तकें पढ़ें।

एक अन्य आधुनिक लेखक कहता है : "शाहजहानाबाद का किला या महल (अर्थात् लाल किला) बादशाह (शाहजहाँ) द्वारा हिजरी सन् १०४८ अर्थात् सन् १६३८ ई० में शुरू करवाया गया था, किन्तु नए शहर का निर्माण अगले १० वर्ष तक भी आरम्भ नहीं करवाया गया था।"[1]

उपर्युक्त अवतरण में जनरल कनिंघम ने, जिसे भारत में ब्रिटिश शासन की प्रारम्भिक कालावधि में भारत का पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण कार्यालय स्थापित करने का कार्यभार सौंपा गया था, अनेक भयंकर भूलें की हैं। सर्वप्रथम, वह हमें यह नहीं बताता है कि वह किस आधार पर कहता है कि शाहजहाँ ने सन् १६३८ ई० में लालकिले का निर्माण और उसके दस वर्ष बाद पूरे दिल्ली नगर की स्थापना का प्रारम्भ किया था। स्पष्ट है कि उसे भी अपनी धारणाओं, मान्यताओं और वक्तव्यों की जटिलताओं का पूरा ध्यान नहीं रहा। यदि शाहजहाँ ने सन् १६३८ ई० में किला बनवाना आरम्भ किया, तो हमें यह सूचना नहीं दी जाती कि किस वर्ष में उसे पूरा कर दिया गया था। इसी प्रकार, यदि शाहजहाँ ने दिल्ली की एक पूरी नगरी (अर्थात् शाहजहानाबाद) का निर्माण प्रारम्भ किया था, तो कनिंघम ने हमें यह जानकारी नहीं दी है कि शाहजहाँ ने इसका निर्माण-कार्य पूरा कब किया। हमें बताया गया है कि इसका प्रारम्भ सन् १६४८ ई० के लगभग किया गया था। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शाहजहाँ सन् १६५७ ई० में बीमार पड़ गया और राज्य के मुआमलों में उसका नियन्त्रण नहीं रहा था। अतः हमें कल्पना करनी पड़ती है कि किसी जादू के कारण ही नौ वर्ष से कम अवधि में ही शाहजहाँ पूरी नगरी बनाने-बसाने में सफल हो गया था, अन्यथा पुरानी दिल्ली का निर्माण करने या पूरा करने का श्रेय उसके उत्तराधिकारी औरंगज़ेब को भी जाएगा। तथापि, इतिहास ने तो उसे ऐसा कोई यश, श्रेय दिया नहीं है। ऐसी सूक्ष्म जाँच-पड़ताल से साधारण व्यक्ति भी उन जटिल निष्कर्षों को चुनौती दे सकेगा, जिनके कारण, कनिंघम जैसे उच्च पदासीन व्यक्तियों

१. श्री कनिंघम द्वारा प्रस्तुत "चार प्रतिवेदन" पृ० २२४

ने इतिहास को व्यर्थ ही बोझिल कर दिया है। यह तो मात्र व्यावसायिक अशक्यता और अनुपयुक्तता है। प्रत्येक कथन किसी आधिकारिकता पर अथवा तर्क पर आधारित होना चाहिए। कनिंघम ने दोनों में से एक भी बात नहीं की है।

हम अब अन्य लेखक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं: "बादशाह शाहजहाँ का लालकिला सन् १६३६ ई० में शुरू हुआ था और लगभग दस वर्ष बाद पूरा हुआ था जब स्वयं बादशाह ने अपना दरबार दीवाने-खास में किया था।"[1]

ये लेखक महोदय, श्री फंशा भी किसी प्राप्त-आधिकारिकता को प्रस्तुत नहीं करते। वे भी स्पष्टतः अनेक पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा पूर्व-प्रचारित किंवदन्तियों पर ही विश्वास किये हुए प्रतीत होते हैं। साथ ही उनका मत अन्य लोगों से कुछ भिन्न है। वे हमको बताते हैं कि किले के निर्माण में दस वर्ष लगे जिसका निहितार्थ शायद यह है कि दिल्ली नगर का निर्माण-कार्य उसके तुरन्त बाद प्रारम्भ कर दिया गया था। किन्तु हम जैसा इससे पूर्व देख चुके हैं, इस प्रकार तो शाहजहाँ की शासनावधि के मात्र नौ वर्ष ही शेष रह गए। तब यह विचारणीय बात है कि यद्यपि लालकिले के निर्माण में दस वर्ष लगे, तथापि दिल्ली की सम्पूर्ण नई बस्ती के निर्माण में मात्र नौ वर्ष ही लगे—ठीक उसी समय शाहजहाँ के झगड़ालू बेटों ने उसे गद्दी से उतार दिया।

हम अब एक और लेखक का संदर्भ प्रस्तुत करें: "सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने, आगरा की भीड़-भाड़पूर्ण और असुविधाजनक परिस्थितियों से परेशान होकर, दिल्ली में विशाल स्तर पर अपना राजमहल बनाने का निश्चय किया। उसने लालमहल और जामामस्जिद बनवाए। दस वर्षों में, नया महल तैयार था और बादशाह ने उसमें राजकीय प्रवेश किया। शाहजहानाबाद शहर इसके चारों ओर बस गया, जिसकी दीवारें पहले गीली मिट्टी की थीं, जो सन् १६५८ ई० में ईंटों की दीवारों से

१. एच० सी० फंशा, सी० एस० एस० लिखित "दिल्ली, विगत और वर्तमान" पृ० २०

बदल दी गईं थीं।[1]

यहाँ भी लेखक श्री शार्प ने किसी प्राधिकरण का उल्लेख नहीं किया है। वह भी कही-सुनी बातों पर निर्भर है। उसका विवरण अन्य पूर्व-कालिक वर्णनों से भिन्न है। वह मानता है कि किले और जामामस्जिद का निर्माण, एक ही साथ, सन् १६३८ ई०में प्रारम्भ हुआ था। वह फिर, हमको यह बताना भूल जाता है कि जामामस्जिद कब पूर्ण हुई थी, और केवल इतना ही बता देता है कि किला सन् १६४८ में पूरा हुआ था। फिर वह इतना और जोड़ देता है कि पुरानी दिल्ली की नगरी इसके चारों ओर बस गयी मानो लालकिला कोई बरगद का पेड़ था जो एक बार लगा दिया जाने पर अपने चारों ओर भवनों को इस प्रकार उत्पन्न कर पाया जैसे उसकी जड़ें और शाखायें हों। श्री शार्प नगर को परिवेष्टित करनेवाली दीवार के सम्बन्ध में भी स्पष्ट रूप में भ्रमित ही है। वह हमें यह नहीं बताता कि गीली मिट्टी की दीवारें किसने बनवाई थीं, वे कब बनवाई गई थीं, उनको ईंट की दीवार में बदल देने का बाद में विचार किसको आया था, और क्या दीवार-निर्माण-कार्य सन् १६५८ ई० में शुरू और इसी वर्ष समाप्त हो गया था? इन सब विचारों से सिद्ध होता है कि श्री शार्प के पर्यवेक्षण भी मात्र रूढ़िवादी झूठी बातें ही हैं।

हम अब एक और लेखक महोदय के विचार देखें: "किले का निर्माण १६ अप्रैल, सन् १६३६ ई० के दिन दिल्ली के तत्कालीन सूबेदार गैरत खान की देखरेख में प्रारम्भ हुआ था, और कुछ ही समय बाद लगभग दो वर्ष के लिए अल्लाह वर्दी खान के संरक्षण में हुआ और फिर मकरामतखाँ मीर समानी ने करवाया था। यह लगभग नौ वर्ष और तीन महीने में या इसी के आसपास की अवधि में पूरा हुआ था, तथा इसका उद्घाटन समारोह सन् १६४८ ई० में हुआ था जिसमें तत्कालीन प्रधान मंत्री सादुल्लाह खान था।"[2]

कीन नामक एक अन्य लेखक का कहना है कि, "शाहजहाँ ने सन्

१. एच० शार्प "दिल्ली—इसकी कहानी और इमारतें" पृ० ९२
२. गोर्डन हर्न द्वारा लिखित "दिल्ली की सात नगरियाँ" पृ० ८८

१६३८ से १६४८ ई० के मध्य लालकिला बनवाया था, और अगले दो वर्ष में नगर की दीवारों, जामा मस्जिद और अन्य निर्माणों का काम पूरा कर दिया।"[1] अन्य लोगों की ही भांति कीन भी किसी प्राधिकरण का उल्लेख करने में असफल रहता है। इतना ही नहीं, उसके कथन की परीक्षा करने पर उसमें अनेक त्रुटियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। क्या यह कभी सम्भव है कि लालकिले के निर्माण में तो पूरे दस वर्ष लग जाएँ, किन्तु "नगर-दीवारों, जामा मस्जिद और अन्य निर्माणों" के रूप-रेखांकन, प्रारम्भ और समापन के लिए मात्र दो वर्ष ही अर्थात् लालकिले के निर्माण की अवधि का पाँचवाँ काल-मात्र ही पर्याप्त हो ? अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय मध्यकालीन इतिहास अंधाधुंध लिखा गया और विश्वभर में लापरवाही से पढ़ाया गया है।

उन सबों को चुप करने और यह सिद्ध करने के लिए वे सब निराधार ऊलजलूल बातें करते रहे हैं, हम पाठक का ध्यान एक तत्कालीन चित्र की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। वह चित्र ऑक्सफ़ोर्ड में सुरक्षित रखा है। इसका शीर्षक है : "शाहजहाँ दिल्ली के लालकिले के दीवाने-आम में फ़ारस के राजदूत का स्वागत करता है (मुगल, लगभग सन् १६२८, एम० एस० ओन्स्ले, संग्राहक, बोडलियन पुस्तकालय, ऑक्सफ़ोर्ड)"[2]

उपर्युक्त शीर्षक पूर्वोल्लिखित सभी लेखकों के कथनों की निस्सारता का भंडाफोड़ कर देता है, उनको निरस्त बना देता है।

जबकि, उपर्युक्त सभी लेखक सामान्यतः यही मानते रहे हैं कि दिल्ली का लालकिला सन् १६३८ से १६४८ ई० के मध्य निर्माणाधीन रहा है, ऑक्सफ़ोर्ड में सुरक्षित चित्र स्पष्टतया प्रदर्शित करता है कि शाहजहाँ

---

१. एच० जी० कीन विरचित दिल्ली, इलाहाबाद आदि के लिए निर्देशिका।

२. १४ मार्च, सन् १९७१ ई० के अंग्रेजी भाषाथी सचित्र साप्ताहिक "दि इलस्ट्रेटेड वीकली आफ़ इण्डिया" पत्रिका में पृष्ठ ३२ पर पुनः प्रकाशित चित्र का शीर्षक।



SHAHJAHAN receives the *Persian* Ambassador in the *Diwan-i-Aam*, Red Fort, Delhi (*Mughal*, c. 1628. MS Ousley, Curators of the *Bodleian Library*, Oxford). Delhi once again became the imperial seat when the capital was withdrawn from Calcutta.

दस वर्ष पूर्व ही अर्थात् सन् १६२८ ई० में फ़ारस के राजदूत का स्वागत वहीं लालकिले में कर रहा है। अब हम पाठकों को यह सूचित करना चाहते हैं कि शाहजहाँ फ़रवरी, सन् १६२८ ई० में ही राजगद्दी पर बैठा था। यह तथ्य कि उसी वर्ष उसने दिल्ली के लालकिले के दीवाने-आम में फ़ारस के राजदूत का स्वागत किया, स्पष्ट सिद्ध करता है कि यह किला और दीवाने-आम सहित इसके सभी भवन, जैसे हम आज भी अपनी आँखों के सम्मुख देखते हैं, उस समय भी विद्यमान थे जिस समय शाहजहाँ बादशाह बना था।

संयोग से इस अतिहीढ़ तथ्य से संलग्न अनेक महत्त्वपूर्ण उलझनें भी हैं। यह उपर्युक्त अनेक लेखकों द्वारा प्रकट किये गये उन विचारों को भी अप्रामाणिक, असत्य, झूठा सिद्ध कर देता है कि शाहजहाँ ने सन् १६४८ ई० में ही पहली बार दिल्ली में पदार्पण किया था और इसी वर्ष वह किले के भीतर अपने दरबार में पहली बार ही आया था।

पूर्वांकित चित्र इस धारणा को भी असत्य सिद्ध कर देता है कि शाहजहाँ की राजधानी पहले आगरा में थी और फिर, उसने अपनी राजधानी सन् १६३८ या १६४८ ई० में अर्थात् दिल्ली में लालकिला बनवाने से पहले या बनजाने के बाद, दिल्ली में स्थानान्तरित कर ली थी।

यह चित्र हमारी उस धारणा को भी पुष्ट करता है, और हमारे निष्कर्ष को बल प्रदान करता है कि बाबर से औरंगजेब (सन् १५२६ से १७०७ ई०) तक के सभी मुग़ल बादशाहों ने सामान्यत: अपनी राजधानी आगरा में ही रखी थी, तथापि उन लोगों ने यदा-कदा अपना दरबार दिल्ली में रखा था और वे कभी-कभी लम्बी अवधि तक दिल्ली में ही रहा करते थे। दिल्ली में उनकी विद्यमानता की अवधि में यह उत्तरकालीन नगर समान ऐतिहासिक यथार्थता के साथ ही उनकी राजधानी समझा जा सकता था। चूंकि, जिसे हम पुरानी दिल्ली कहकर पुकारते हैं वह संपूर्ण दिल्ली तथा तथ्यत: आज दिल्ली में मीलों तक फली हुई विशाल, भव्य, ध्वस्त इमारतें प्राचीन हिन्दू-शासकों के कलात्मक निर्माण हैं जो अनवरत बर्बर मुस्लिम आक्रमणों द्वारा धूल-धूसरित, भू-लुंठित कर दिए गए हैं, इसलिए मुग़ल शासकों में से किसी को भी कोई निर्माण-कार्य नहीं करना

पड़ा था। तथ्य तो यह है कि किसी भी निर्माण-कार्य करने के लिए कोई प्रतिभा, साधन, शान्ति, सुरक्षा, हृदयस्थ कल्पना, रुचि अथवा अभिप्रेरणा प्राप्त न थी। वे तो भारत में लूटने और खसोटने के प्रलोभन से जबरन प्रविष्ट हुए थे; और दूध-शहद की नदियों तथा स्वर्ण का धुआँ चिमनियों से बाहर फेंकनेवाले सम्पन्न देश हिन्दुस्थान का रक्त प्रवाहित करके इस भूमि को कच्ची झोंपड़ियों, छप्परों और झुग्गियों का अशान्त, क्षीणरक्त, दुःखदायी, क्लेशदायक, बदबूदार गंदा ढेर बनाना चाहते थे, वही कार्य उन्होंने किया भी। अतः दिल्ली, आगरा और भारत के अन्य नगरों के दर्शनार्थियों तथा मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को एक संकेत शब्द सदैव स्मरण रखना चाहिए कि इतिहास-प्रसिद्ध भारत में निर्माण-कार्य हिन्दुओं का है, और सारा विध्वंस-कार्य मुस्लिमों का है।

हमारा आग्रह है कि पाठक श्री शार्प के पूर्वोक्त प्रथम वाक्य पर भी ध्यान दें कि "सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने, आगरा की भीड़-भाड़पूर्ण और असुविधा-जनक परिस्थितियों से परेशान होकर दिल्ली में विशाल तर अपना राजमहल बनाने का निश्चय किया…।" स्पष्ट है कि श्री शार्प एक इतिहासकार की भूमिका को भुलाकर, शाहजहाँ द्वारा दिल्ली नगर और उसके किले को बनाने की बात को उचित ठहराने के लिए स्वयं कल्पना की चौकड़ियाँ भरने का यत्न किया है। तथापि वह कई बातें भुला बैठा है। पहली बात यह है कि दिल्ली तो सदैव अति प्राचीन महानगरी रही है, जिसका उल्लेख शाहजहाँ से पूर्व अधिकांश मुस्लिम आक्रमणों में बार-बार होता रहा है। दूसरी बात यह है कि चूंकि प्राचीन नगरियों को सुरक्षित प्राचीरों में परिवेष्टित रखना होता था, इसलिए गलियों को संकरी और भीड़भाड़-पूर्ण होना ही आवश्यक होता था। अतः, दिल्ली पहले ही इतनी भीड़भाड़-पूर्ण और संकरी थी जितना आगरा शहर। इसलिए उन दोनों में अन्तर करने का तो प्रश्न ही नहीं था। जिन घुमावदार संकरी, तंग गलियों को हम आज पुरानी दिल्ली में देखते हैं, वे तो शाहजहाँ के अपने शासन-काल में भी विद्यमान थीं। साथ ही, यदि यह मान भी लिया जाय कि शाहजहाँ ने ही पुरानी दिल्ली बनाई थी तो भी मध्यकालीन सुरक्षा-नीति की दृष्टि से अपेक्षित था कि इसको एक प्राचीर-नगरी के

भीतर संकरी घुमावदार गलियों की परम्परागत शैली पर निर्मित किया जाय। पुरानी दिल्ली और प्राचीर आगरे की परस्पर तुलना कर ली जाय। जहाँ तक उनकी गलियों की चौड़ाई और उनकी अगणित जन-संख्या का सम्बन्ध है, वे दोनों समान मिलेंगे। अतः, यह कहना आधारहीन और अयुक्तियुक्त है कि शाहजहाँ ने अधिक खुले और उपयुक्त नगर के बदले में आगरा छोड़ दिया था।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इस बात पर बल देते हैं या उचित ठहराते हैं कि शाहजहाँ द्वारा दिल्ली के बदले में आगरा परित्याग करने का कारण यह था कि आगरा गर्मियों में अत्यधिक गर्म और कदाचित् सर्दियों में अधिक ठण्डा होता था। यह बात भी मात्र कल्पना पर ही आधारित है, और शाहजहाँ द्वारा पुरानी दिल्ली के असत्य काल्पनिक निर्माण को न्यायोचित, वास्तविक ठहराने के लिए स्पष्टीकरण के रूप में प्रस्तुत कर दी जाती है। हम अपने वैयक्तिक ज्ञान और अनुभव से जानते हैं कि आगरा और दिल्ली की जलवायु, दोनों का वातावरण लगभग समान ही है। जलवायु अथवा उन प्राचीन हिन्दू भवनों के आधिक्य में दृष्टि से, जिनको मुस्लिम आक्रमणकारियों ने विनष्ट कर दिया, उन दोनों नगरों में से एक के बदले में दूसरे को पसन्द करने, चुनने का प्रश्न ही नहीं है, और न ही पहले था। भारत में शासन करनेवाले मुस्लिम सुल्तान और बादशाह अपने-अपने युग की आवश्यकताओं और सुविधाओं के अनुसार अपने राज्य-शासन के प्रारम्भ से ही दिल्ली और आगरा में आते और जाते रहे थे।

अध्याय ३

औरंगज़ेब को निराधार श्रेय

इससे पूर्व अध्याय में हमने इस बात का विवेचन किया है कि किस प्रकार भयंकर भूल करने वाले एक लेखक के बाद दूसरे लेखक ने दिल्ली में बने लालकिले का निर्माण-श्रेय शाहजहाँ को दिया है। ऐसा करते उन्होंने किसी प्राधिकारी का उल्लेख नहीं किया है। यह अभाव इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि 'बादशाहनामा' जैसे समकालीन तिथिवृत्तों में—जो स्वयं शाहजहाँ के आदेशानुसार लिखा, उसके राज्यकाल का सरकारी इतिहास है—कहीं कोई ऐसा उल्लेख नहीं है कि शाहजहाँ ने कभी अपनी राजधानी आगरा का परित्याग किया था और कभी दिल्ली नाम की नई नगरी अथवा उसके किले का निर्माण किया था। यह भी बात ध्यान में रखने की है कि हमने अभी तक जिन लेखकों के उदाहरण दिए हैं, उन्होंने भी हमें कभी यह नहीं बताया अथवा संकेत भी नहीं किया कि शाहजहाँ ने किले को अर्ध-निर्मित ही छोड़ दिया था। पीढ़ियों को विश्वास दिलाया गया है कि शाहजहाँ ने दिल्ली में एक बहुत आलीशान लालकिला बनवाया था, जो सभी प्रकार से पूर्ण था। और फिर भी, उसकी अगली पीढ़ी के बेटे औरंगज़ेब को भी, निराधार ही—समान रूप में—, लाल-किले के दो मुख्य प्रवेशद्वारों के बाहर दो बाहरी प्राचीरें तथा किले के भीतर मोती मस्जिद बनवाने का श्रेय दे दिया जाता है। इन पूरक निर्माणों का श्रेय शाहजहाँ के बेटे औरंगज़ेब को देते समय किसी भी लेखक द्वारा

कोई प्राधिकरण प्रस्तुत नहीं किया जाता। इस अध्याय का प्रयोजन उन अवतरणों को उद्धृत करना और पाठक को फिर एक बार यह तथ्य प्रदर्शित करना है कि उसको, उसके पूर्वजों और बाल-बच्चों को पढ़ाया गया इतिहास किस प्रकार सर्वाधिकार काल्पनिक झूठों, मनघड़न्त बातों और कही-सुनी गप्पों का पुलिन्दा मात्र है।

हम प्रारम्भ में ही कह देना चाहते हैं कि यदि हमारे तथाकथित इतिहासकार तनिक भी सावधान, सतर्क रहे होते, तो उन लोगों ने स्वयं ही अपने कथनों में समाविष्ट दोषों को मालूम कर लिया होता। उदाहरण के लिए, स्वयं इसी तथ्य ने कि, स्वयं अति धर्मान्ध मुस्लिम होने पर भी, शाहजहाँ ने स्वयं अपने और अपने परिचरों की नमाज़ के लिए दिल्ली में लालकिले के भीतर किसी मस्जिद का प्रबंध, निर्माण नहीं किया, उन इतिहासकारों को उस दावे को अस्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया होता जिसमें कहा गया है कि शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया था। मध्यकालीन भारत मे, जब विदेशी इस्लामी धर्मान्धता अपने पूरे जोर पर थी, क्या यह बात बुद्धिगम्य है कि कोई मुस्लिम बादशाह अन्य अनेक भदनों वाला शाही राजमहल एवं लालकिला तो बनाएगा किन्तु उसमें कोई मस्जिद नहीं होगी?

एक लेखक कहता है : "मोती मस्जिद का निर्माण सन् १६५६ ई० में औरंगजेब द्वारा तत्कालीन रु० १००००,०० (एक लाख रु०) में किया गया था।"[1]

उपर्युक्त अवतरण में अंग्रेज इतिहासकार कीन ने अपने इस मत के समर्थन में कोई प्राधिकरण प्रस्तुत नहीं किया है कि औरंगजेब ने मोती मस्जिद का निर्माण करवाया था। वह हमें यह जानकारी भी नहीं देता कि वह किस प्राधिकारी के विश्वास पर लिख रहा है कि यह मस्जिद सन् १६५६ ई० में और एक लाख रुपयों की लागत पर बनी थी। ऐसे निपट निराधार कथनों का इतिहास में कोई स्थान नहीं है। स्वयं यही तथ्य कि, किसी प्राधिकरण का उद्धरण किये बिना ही, कोई उत्तरकालीन

१. कीन की निर्देशिका, पृष्ठ १२६

लेखक किसी पूर्वकालीन बादशाह के पक्ष में दावा प्रस्तुत करता है, पाठक को यह विश्वास दिलाने में शक्य, समर्थ होना चाहिए कि अमुक दावा निराधार और अप्रामाणिक है।

अत्यन्त सौभाग्यवश उपर्युक्त अवतरण में उल्लिखित एक विवरण हमें इस योग्य और भी बना देता है कि हम उपर्युक्त दावे को अस्वीकार कर सकें। औरंगज़ेब राजगद्दी पर सन् १६६८ ई० में बैठा था। उसके बाद बहुत लम्बी अवधि तक उसे अपने भाइयों के विरुद्ध ही कठोर संघर्ष करना पड़ा था। अपनी तियति सुदृढ़ करने के लिए धन-राशि के बारे में उसकी हालत बहुत पतली थी। ऐसी स्थिति में क्या उसका दिल इस बात की गवाही देता कि वह एक लाख रुपया खर्च करे और मस्जिद बनाने का आदेश दे? उसे समय ही कहाँ था? साथ ही, हमें यह भी नहीं बताया जाता कि मस्जिद कब बननी शुरू हुई थी, इसे बनने में कितने वर्ष लगे थे, इसका रूप-रेखांकन किसने बनाया था, और जिस जगह यह बनी हुई है क्या वह पहले कोई खाली स्थान था अथवा कोई उद्यान था, या वहाँ पर कोई अन्य भवन थे जो मस्जिद बनाने के लिए भूमिसात् कर दिए गए। इसी प्रकार के प्रश्न पूछने की प्रणाली ही ऐसे विवरणों के के सामान्य पाठकों को और लालकिले के सहज, सरल दर्शनार्थियों को भी इस योग्य बना देती है कि वे उन काल्पनिक वर्णनों में समाविष्ट धोखाधड़ी को तुरन्त पहचान लें, जो मार्ग-दर्शक और मार्ग-दर्शिका पुस्तिकाएँ उनके सम्मुख अत्यन्त आकर्षक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

हम यहाँ इतना और कह देना चाहते हैं कि किसी भी विशेष भवन के मूल-निर्माता के रूप में किसी भी इस्लामी बादशाह को झूठा श्रेय देते समय ये चापलूस मुस्लिम दरबारी तिथिवृत्त-लेखक इस एक लाख रुपयों की धन-राशि को उस बादशाह की तुलना में अत्यल्प कहकर प्रस्तुत किया करते थे।

किले के लाहौर-द्वार का वर्णन करते हुए एक लेखक लिखता है: "इस द्वार को एक बाहरी प्राचीर द्वारा अतिरिक्त सुरक्षा प्राप्त हो गई है, जो औरंगजेब का निर्माण-कार्य है। कहा जाता है कि आगरा में बंदी-गृह में जीवन काटते हुए शाहजहाँ ने इन बाहरी दीवारों के सम्बन्ध में

अपने पुत्र औरंगजेब को इन शब्दों में लिखा था : "तुमने तो किले को एक वधू बना दिया है और उसके मुख के सम्मुख पर्दा डाल दिया है।"[1] इस टिप्पणी का लेखक एक अंग्रेज व्यक्ति है जो संयोगवश भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग में एक उच्च पदाधिकारी रहा था। उसने हमें यह बताने की कोई आवश्यकता नहीं समझी कि उसने किस प्राधिकारी के आधार पर यह विश्वास किया है कि औरंगजेब ने बाहरी प्राचीर का निर्माण किया था। यह तथ्य, कि उसने किसी भी प्राधिकारी का उल्लेख नहीं किया है, इस बात का द्योतक है कि उसने केवल परम्परागत कही-सुनी बातों पर ही विश्वास किया है। यदि मुस्लिम चाटुकारों ने उसे यह बताया है कि 'किले को वधू' बनाने के सम्बन्ध में शाहजहाँ द्वारा औरंगजेब को लिखा गया यह वाक्य इस बात का साक्ष्य है कि औरंगजेब ने लालकिले के लाहौर और दिल्ली-द्वारों की बाहरी प्राचीरें बनवाई थीं, तो वह गलती पर है। मध्यकालीन दरबारी पत्राचार की काव्यात्मक और अनियत 'किले को वधू' बना देने वाली शब्दावली का विश्वभर में कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता था।

अधिक बुद्धिगम्य व्याख्या यह भी हो सकती है कि औरंगजेब ने आगरे के किले में बंदी बनाये गए पिता शाहजहाँ की ओर से किसी भी प्रार्थना-पत्र को लाए हुए प्रतिनिधि को दिल्ली के लालकिले में प्रवेश देने से स्पष्ट निषेध, सख्त मनाही कर दी थी। यदि औरंगजेब ने किले के दोनों द्वारों के सम्मुख बाहरी प्राचीरें बना दी थीं, तो भी शाहजहाँ को तो किसी प्रकार की शिकायत करने का सवाल ही नहीं था। सुदूर आगरा स्थित लालकिले में दिन-दिन घुल रहा, अपने ही अविनीत बेटे द्वारा बंदी बनकर अपमानित और तिरस्कृत जीवन बिताने वाला शाहजहाँ क्या अपने दोनों जून की पेट की ज्वाला बुझाने और अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने की चिन्ता करता अथवा यह देखता कि दिल्ली के लालकिले में कोई बाहरी प्राचीरें क्यों जोड़ दी गई हैं? और, यदि उसने कभी इनके विषय में कुछ लिखा ही था, तो वह उनके बारे में सीधी बात

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृष्ठ ५

न लिखकर, घुमा-फिराकर क्यों लिखता जिसका न कोई पैर है और न कोई सिर ? इससे भारतीय ऐतिहासिक विद्वत्ता की दुःखद-स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। ऐरा-गैरा नत्थू खैरा सभी को निर्माण-श्रेय देने वाली चाटुकारितापूर्ण इस्लामी झूठी अफ़वाहों में विद्वानों ने अन्ध-विश्वास जमा रखा है। ऐसी झूठी अफ़वाहों को ज्यों-का-त्यों सत्य मान-कर भारतीय मध्यकालीन इतिहास के विद्वानों और लेखकों ने अनुचित जल्दबाजी, व्यावसायिक अक्षमता और अपराधी शैक्षिक उपेक्षा प्रदर्शित कर दी है। इस प्रकार की शैक्षिक अयोग्यता की हम कठोरतम शब्दावली में निन्दा करते हैं क्योंकि इसके परिणाम-स्वरूप, विश्वभर की पीढ़ियों को मार्गभ्रष्ट, दिग्भ्रमित किया जाता रहा है।

बाहरी प्राचीरों के बारे में भी हमें यह नहीं बताया जाता कि उनको प्रारम्भ कब किया गया था इनको पूरा कब किया गया, खर्चा कितना हुआ था और वे सगत दरबारी-काग़ज कहाँ हैं जो उनके निर्माण को सत्यापित करते हैं ?

अब हम एक और लेखक के विचार प्रस्तुत करते हैं :

"जैसा कि बादशाह शाहजहाँ द्वारा रूप-रेखांकित था, लाहौर-दरवाज़े के सामने एक बाग़ था ; यह निस्संदेहरूप में तब नष्ट हुआ था जब शाह जहाँ के उत्तराधिकारी ने बाहरी प्राचीर का निर्माण करवाया था।"[1] यहाँ भी वे सगतविवरण नहीं है कि इन बाहरी प्राचीरों को कब और क्यों औरंगज़ेब ने बनवाया था, इन पर कितना खर्चा हुआ था और औरंगज़ेब द्वारा इनको बनवाने वाले दावे का साक्ष्य प्रस्तुत कहाँ है—कुछ पता नहीं।

फिर भी, एक अन्य ब्रिटिश विद्वान् ने अ-सत्यापित झूठी अफ़वाहों को विशद इतिहास की संज्ञा देकर, बिना किसी आधार ही, प्रस्तुत कर दिया है। वह कहता है : "सुरक्षा के प्रयोजन से, औरंगज़ेब ने किले के दोनों दरवाज़ों के सामने एक-एक बाहरी प्राचीर बनवाई थी और उसी ने

---

१. "दिल्ली—विगत और वर्तमान" : लेखक श्री एच० सी० फंशा, पृष्ठ २१

किले के संगमरमरी भवनों में अद्वितीय मस्जिद जोड़ दी थी।"[1]

इसी बात का उल्लेख अन्य अनेक लेखकों ने भी इसी प्रकार, यंत्रवत् कर दिया है, किन्तु किसी ने भी इस कथन के उस आधार को देखने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जिसके कारण माना जाता है कि छठे मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब ने दिल्ली के लालकिले के लाहौर और दिल्ली दरवाज़ों के सामने एक-एक बाहरी प्राचीर खड़ी करवाई थी। ऐसे कथनों के पर्याप्त नमूने प्रस्तुत कर चुकने के बाद हम अब पाठकों को और अधिक बोझिल नहीं करना चाहते। हम पाठकों को यहां बता देना चाहते हैं कि अन्य पुस्तकों में भी इसी प्रकार का उल्लेख है—कोई भिन्नता नहीं।

उस मस्जिद के सम्बन्ध में, जिसे औरंगज़ेब द्वारा किले के भीतर बनवाया गया माना जाता है, एक लेखक ने घुमा-फिराकर संदेह करने का कष्ट किया है। उसने लिखा है: "यह कम विचित्र बात नहीं है कि शाहजहाँ ने दिल्ली-स्थित अपने महल में अपनी उपासना (नमाज़) के लिए कोई स्थान, नहीं बनवाया था। वहाँ मिलने वाली वह छोटी मोती-मस्जिद औरंगज़ेब द्वारा जोड़ी गई थी।"[2]

ब्रिटिश इतिहास-लेखकों के समस्त वर्ग में से मात्र इसी लेखक श्री फंशा ने तनिक-सा संदेह प्रस्तुत किया है, यद्यपि सभी ने दिल्ली के लालकिले के बारे में लिखा है। किन्तु वह संदेह भी, टिमटिमाते दीपक की अकस्मात् प्रज्वलित हो जाने वाली एक मात्र लौ के समान तिरोहित हो गया।

चूंकि किसी भी लेखक ने किसी भी प्राधिकरण को प्रस्तुत करने का साहस अथवा कष्ट नहीं किया है; अतः हमारा निष्कर्ष है कि औरंगज़ेब द्वारा किले की बाहरी प्राचीरों और तथाकथित मोती-मस्जिद के निर्माण करने का दावा भी उतना ही निराधार है जितना निराधार यह दावा कि शाहजहाँ ने किले का अन्य सारा भाग बनवाया था।

---

१. गौर्डन हर्न द्वारा लिखित : "दिल्ली की सात नगरियाँ", पृष्ठ २३७
२. एच० सी० फंशा द्वारा लिखित : "दिल्ली—विगत और वर्तमान", पृष्ठ ४५

यह लालकिला, अपने सभी दरवाज़ों और बाहरी प्राचीरों एवं तथा-कथित मोती-मस्जिद सहित (जो नरेश-कुल का हिन्दू मोती मंदिर था), शाहजहाँ और औरंगजेब सहित सदियों पूर्व भी विद्यमान था। यह लालकिला तो हिन्दुओं की प्राचीन राज-सम्पत्ति है। यह तो मुस्लिम आक्रामकों ने विजित और अपने अधीन, कब्जे में कर लिया था। इसमें अन्य किसी भी प्रकार का परिवर्तन-परिवर्धन करने की अपेक्षा, मुस्लिम आधिपत्य और बलात्-अधिकार की अवधि में इसे तो लूटा और विनष्ट किया गया है। अन्दर खाली पड़े भू-खण्ड, पूर्वकालिक राजमहलों और मन्दिरों की रिक्त चौकियाँ, रंगीन चित्रकारी व नमूनों की धुंधली छाया तथा सोने के खंभों, चाँदी के दरवाज़ों, भीतरी छत पर लगी क़ीमती धातु की चादरों, गवाक्ष-जालों में जड़े हुए हीरे-मोतियों, फ़व्वारों पर लगी धातु की नलियों जैसी समस्त साज-सज्जा और सज्जा-सामग्री का लुप्त हो जाना किले के विदेशी अपहारकों द्वारा किये गए विध्वंस के पर्याप्त प्रबल साक्ष्य हैं।

औरंगजेब द्वारा किले के दिल्ली और लाहौर-दरवाज़ों के सामने बाहरी प्राचीरें बनवाने के दावे को निरस्त, अस्वीकृत करने वाला एक अन्य संकेतक भी है।

सर्वप्रथम, यह बात सोचना ही बेहूदगी है कि शाहजहाँ ने लाल-किले को इस अनुपयुक्त ढंग से बनवाया था कि उसने अपने ही बेटे को कुछ वर्षों बाद इन दोनों दरवाज़ों के सामने बाहरी प्राचीरों को बनवाने की तुरन्त आवश्यकता अनुभव करनी पड़ी।

दूसरी बात ध्यान में रखने की यह है कि इन बाहरी प्राचीरों में बने प्रवेश-द्वारों को ही दिल्ली-दरवाज़ा और लाहौर-दरवाज़ा कहकर पुकारते हैं। ऐसा नहीं हुआ कि दिल्ली-दरवाज़ा और लाहौर-दरवाज़ा पुकारे जाने वाले अन्दर के दरवाज़ों को नये दरवाज़ों सहित अन्य प्राचीरों से ढक दिया गया था। यदि ऐसा हुआ होता, तो अन्दर के दरवाज़ों के वे नाम भी जानकारी में आ जाते जो शाहज़हाँ के द्वारा निर्मित लालकिले में थे—इनको तो औरंगजेब द्वारा निर्धारित दिल्ली-दरवाज़ा और लाहौरी-दरवाज़ा कहा ही जाता है।

तीसरी बात यह है कि मध्यकालीन किलों का अत्यल्प प्रारम्भिक ज्ञान भी रखने वाले लोगों को निश्चित रूप में मालूम होगा कि प्रत्येक किले में ऐसे टेढ़े-मेढ़े तीन प्रवेश-द्वार होते थे जिनको पार करने पर ही भीतरी स्थलों तक पहुँचा जा सकता था। किले के मुख्य प्रवेश-द्वार से प्रविष्ट होने पर तो एक संकुचित, छोटा प्रांगण ही आता था जिसके सामने फिर दीवार मिलती थी। बाहरी दरवाजे से इस प्रांगण में प्रविष्ट होने पर प्रवेशकर्ता व्यक्ति को बाईं या दाईं ओर पुनः प्रविष्ट होकर एक ऊँचे द्वार में से गुजरना पड़ता था। प्रयोजन यह होता था कि यदि आक्रमणकारी बाहर का पहला दरवाजा तोड़ने में सफल हो जाय, तो भी उसे पहले प्रांगण में रोका जाय और उसका मुक़ाबिला किया जाय, जबकि भीतरी दरवाजा बन्द, सुरक्षित रहे। यदि दूसरा द्वार भी आक्रमण का शिकार हो जाय, तो प्रतिरक्षकों द्वारा तीसरे द्वार के पीछे रहकर दूरस्थ प्रांगण में फिर भी रोका जा सके। इस प्रकार, प्रत्येक किले के कम-से-कम तीन बाहरी दरवाजे होते थे। इसलिए, यदि हम यह विचार करें कि शाहजहाँ ने दिल्ली-दरवाजा और लाल-दरवाजा कहलाने वाली दोनों बाहरी दीवारों के बिना ही लालकिला बनवा दिया था, तो हम इस बेहूदे निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि औरंगजेब में सुरक्षा-भावना को समझने की वृत्ति अपने उस बाप से भी अधिक थी जो इच्छा या अनिच्छावश यदा-कदा स्थानीय विद्रोहों और अनवरत युद्ध-पीड़ित संतप्त शासन में लगभग तीस वर्ष तक शासनासीन रहा था।

चौथी बात यह है कि बाहरी दीवारों के प्रवेश-द्वारों की दोनों ओर की मेहराबों पर हिन्दुओं का राजचिह्न 'सूर्य-पुष्प' बना हुआ है। हिन्दू-राजवंश सूर्यवंशी होने में गौरव अनुभव करते हैं। वही सूर्य-चिह्न सबसे बाहरी द्वार की मेहराबों से तथाकथित मोती-मस्जिद के अन्दर तक और दीवारों के अग्रभागों में सभी जगह सुशोभित है।

पाँचवीं बात यह है कि जब तक वे बाहरी दीवारें किले के साथ-साथ नहीं बनी होतीं, तब तक खाई और बाहरी दीवारों के रंग बिल्कुल भिन्न-भिन्न अवश्य ही दिखाई पड़ते। अतः, वे बाहरी दीवारें तो किले के काल्पनिक निर्माता शाहजहाँ से शताब्दियों-पूर्व ही मूल हिन्दू किले के

संयोज्य अंग थीं।

छठी बात यह है कि जिस प्रकार पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है, इस दावे का कोई आधार नहीं है कि औरंगजेब ने बाहरी दीवारें बनवाई थीं। न तो समकालीन तिथिवृत्तों में और न ही औरंगजेब के दरबार के काग़ज़-पत्रों में इस दावे की पुष्टि की गई है।

सातवीं बात यह है कि बिना बाहरी प्राचीरों के तो किला किसी भी प्रकार किला रहेगा ही नहीं। मात्र बाहरी प्राचीरों के ही कारण तो किले के भीतरी क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व व्यक्ति को परंपरागत तीन द्वार पार करने होते हैं। पहला द्वार वह है जिसे हम बाहरी दीवार कहते हैं, जिसे अब दिल्ली और लाहौर-दरवाजा कहते हैं। फिर, बाईं ओर एक तेज मोड़ है और तब एक अन्य दरवाजा आता है। लाहौरी-दरवाज़े-वाली बाहरी दीवार के भीतर बने दूसरे द्वार में से गुजरने पर व्यक्ति को एक ड्योढ़ीदार बरामदे में से जाना पड़ता है। ड्योढ़ी—छत्तेदार बरामदे, बाज़ार में से गुज़रने पर, जिसमें दोनों ओर चित्रों-पुस्तकों की दुकानें हैं, उस बाज़ार के दूसरे छोर पर एक तोरण-द्वार आता है जो तीसरा दरवाज़ा है। उस दरवाज़े में से गुज़रने पर ही किले के भीतर का खुला मैदान दिखाई देता है।

इन सब आधारों पर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बाहरी प्राचीरों सहित यह सम्पूर्ण लालकिला प्राचीन हिन्दूमूल-निर्माण है। न तो शाहजहाँ ने यह किला बनवाया था, और न ही उसके बेटे व उत्तराधिकारी औरंगजेब ने बाहरी दीवारें बनवाईं। अतः इस किले को अथवा इसके किसी भी भाग को बनवाने का निर्माण-श्रेय शाहजहाँ, औरंगजेब अथवा किसी अन्य परवर्ती मुस्लिम शासक को देने का कार्य सभी मार्गदर्शकों, मार्गदर्शिकाओं और इतिहास के अध्यापकों को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

अध्याय ४

किले का भ्रमण

दिल्ली के लालकिले की मुस्लिम-पूर्व विद्यमानता के सम्बन्ध में अन्य अधिक साक्ष्य प्रस्तुत करने से पूर्व हम पाठक को किले के भीतरी और बाहरी सभी भागों से भली-भाँति परिचित कराना चाहते हैं। इस प्रकार का ज्ञान उस साक्ष्य को सहजरूप से ग्रहण, स्वीकार कर पाएगा जो हम अगले अध्यायों में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

जैसाकि इसके आकार, प्राकार (रूप) से प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर है, वह किला रूढ़िवादी प्राचीन हिन्दू विशिष्टताओं के अनुसार बना हुआ है। किले की लाल पत्थर की प्राचीर-परिरेखा एक टेढ़ा-मेढ़ा अष्टभुज, अष्टकोण बनाती है।

हिन्दू राजवंशी-धर्मविज्ञानी-परम्परा में अष्टकोण का एक विशेष महत्त्व है। रामायण में, सम्राट् राम की राजधानी अयोध्या अष्टकोणात्मक वर्णन की गई है। चूंकि हिन्दू सम्राटों की परम्परा भगवान् राम का अनुसरण करने की रही है, अतः दैवत्व अथवा राजवंश से सम्बन्धित रूढ़िवादी हिन्दू भवनों को अष्टभुजी बनना ही होता था।

हिन्दू लोककथाओं में, सम्राट् या ईश्वर का प्रभुत्व सभी दस दिशाओं में व्याप्त, प्रसारित माना जाता है। किसी भी भवन का शिखर स्वर्ग (ऊपरी दिशा) को और नींव रसातल को इंगित करते हैं। शेष आठ धरातलीय दिशाओं का उल्लेख तभी होता है जब भवन-निर्माण अष्टभुजी, अष्टकोणात्मक करना होता है। केवल हिन्दू परंपरा में ही सभी

आठ दिशाओं के विशिष्ट नाम सर्वज्ञात हैं। इस तथ्य के अतिरिक्त भी, मात्र हिन्दू लोगों ने ही आठ दिशाओं के रक्षक, आठ दिग्पाल निश्चित किये हुए हैं। यही कारण है कि रूढ़िवादी हिन्दू शैली में बने सभी प्राचीन भवन अधिकांश मामलों में अष्टभुजी हैं। इस प्रकार, जिनको आज ग़लती से दिल्ली में हुमायूं का मक़बरा और सुलतानघरी का मक़बरा तथा आगरा में ताजमहल समझते हैं, वे सब-के-सब भवन अष्टभुजी, अष्ट-कोणात्मक हैं। कई बार भवन तो स्वयं चतुष्कोण होता है, किन्तु इसके कोने के स्तंभ, (बरामदे की) स्तंभ-पंक्तियाँ, या गुम्मट अठपहलुआ होते हैं। इस प्रकार, अष्टकोण एक ऐसा लक्षण है जो हिन्दू-भवनों के साथ अनिवार्य रूप में जुड़ा हुआ है। उसकी मुस्लिम भवनों में कोई संगति नहीं है। अष्टकोणाणमक अभिनिवेश, अवस्थिति के लिए मुस्लिम-परम्परा में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। अतः इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को तथा विभिन्न स्थलों के दर्शनार्थियों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि वे कहीं एक अठपहलू कूप, स्तंभ, मण्डप या शिखर अथवा भवन देखें, तो वहाँ उसी तथ्य से यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि इसका हिन्दू-मूलक साक्ष्य वहीं विद्यमान है चाहे विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा विजय, आधिपत्य अथवा दुरुपयोग के कारण वह भवन इस्लामी मक़बरे या मस्जिद के परिवर्तित रूप में खड़ा हो।

अतः; प्रत्येक छात्र एवं दर्शनार्थियों को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि लालकिला अष्टभुजी-निर्माण है। इसके मण्डप, प्रासाद-शीर्ष, बुर्ज और स्तम्भ अष्टकोणी हैं। उसे यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि तथाकथित मोती-मस्जिद के प्रवेश-द्वार के पास ही, जिसे औरंगजेब द्वारा निर्मित कहा जाता है, एक अष्टभुजी चबूतरा है। इस पर बना हुआ हिन्दू-भवन अथवा हिन्दू-स्तम्भ इस्लामी आधिपत्य की शताब्दियों में नष्ट कर दिया गया। फिर भी मात्र अष्टकोणात्मक चबूतरा ही न केवल किले के हिन्दू-मूलोद्गम मात्र का प्रबल साक्ष्य है, अपितु किले के भीतरी भागों में सुशोभित अनेक भव्य भवनों को मुस्लिमों द्वारा विनष्ट और ध्वस्त कर दिये जाने का भी सुदृढ़, सशक्त प्रमाण है।

दर्शनार्थी को ध्यान रखने वाली एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि

किले के भीतर, दक्षिण से उत्तर दिशा में पिछली दीवार के साथ-साथ, अनेक मण्डप अर्थात् भाग हैं। वे एक-दूसरे से बिल्कुल अलग-अलग हैं, उनके बीच में खाली-खाली स्थान पड़े हुए हैं। यदि हम मान भी लें कि शाहजहाँ ने इस किले का निर्माण कराया था, तो भी इन कटे-छँटे भागों का लम्बे-लम्बे रिक्त स्थानों के माध्यम से पृथक्-पृथक् होने का स्पष्टीकरण क्या है ? क्या चिलचिलाती धूप में और घटाटोप वर्षा में तत्कालीन शाही शाहज़ादे, शाहज़ादियाँ, बादशाह, बेगमें, सखियाँ, रखैलें, बाँदियाँ प्रबन्धकर्तागण और दरबारी लोग एक भाग से दूसरे भाग में और एक मण्डप से दूसरे मण्डप में, रेशमी वस्त्र-परिधान और आभूषण धारण किये तथा खाना-पीना लिये हुए, यूंही खुले वातावरण में चलते-फिरते रहते थे ? यह स्पष्ट प्रमाण है कि उन कटे-छँटे मण्डपों को परस्पर जोड़ने वाले लम्बे-लम्बे कमरे विनष्ट हो चुके हैं। किन्तु लालकिले की शाहजहानी कथा में कोई भी सरकारी मार्गदर्शक अथवा सरकारी मार्ग-दर्शिका-पुस्तक कभी भी यह दावा नहीं करती कि हम आज जिन पृथक्-पृथक् मण्डपों को देखते हैं, उनको परस्पर जोड़ने वाले बड़े-बड़े, लम्बे-लम्बे कमरे भी वहाँ पर विद्यमान थे। क्योंकि, वे यदि स्वीकार करें कि वहाँ पर एक-दूसरे को जोड़ने वाले वड़े लम्बे कमरे, आयतें अथवा बरामदे थे, तो उनको यह स्पष्टीकरण भी देना पड़ेगा कि उन स्थलों को किसने और क्यों नष्ट किया ?

इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार इतिहास का एक गम्भीर अध्येता अथवा विवेकी दर्शनार्थी किले में विद्यमान शाही भागों को पृथक् करने वाले बहुत सारे रिक्त स्थानों को देखकर भी शाहजहाँ द्वारा किले के निर्माण के बारे में संदेह अनुभव कर सकता है। साथ-साथ वे रिक्त-स्थान सिद्ध करते हैं कि वर्तमान मण्डपों को जोड़ने वाले लुप्त हुए हिन्दू-भवन विदेशी, मुस्लिम आधिपत्य की कई शताब्दियों की अवधि में नष्ट कर दिए गए थे। इस प्रकार, रिक्त स्थान भी कुछ रहस्य प्रकट कर रहे हैं, शिक्षा दे रहे हैं।

दर्शनार्थी भ्रमणकर्ता व्यक्ति यह भी ध्यान में रखें कि उन रिक्त स्थानों के ऊपर चबूतरे, चौकियाँ हैं। वे भी इस बात के द्योतक हैं कि उनके ऊपर

बने भवन गिरा दिए गए हैं। यदि शाहजहाँ किले का मूल-निर्माता रहा होता, तो उसके उत्तराधिकारियों ने, जो अंग्रेजों के शासन पर बैठने तक निरन्तर दिल्ली पर राज्य करते रहे, उसके द्वारा निर्मित भवनों को क्यों गिराया होता ? उन भवनों को तो शाहजहाँ तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा तभी गिराया गया होगा जबकि वे पूर्वकालिक हिन्दू-भवन रहे होंगे जो मूर्तिभंजक मुस्लिम विजेताओं की आँखों में, अपनी अलंकृत संरचनाओं की विधि के कारण, सदा शूल-जैसे चुभते रहे होंगे। यह भी सम्भव है कि वे भवन मुस्लिम आक्रामकों और हिन्दू-संरक्षकों के मध्य हुई झड़पों में बुरी तरह क्षति-ग्रस्त हो गए हों अथवा उनमें से कुछ भवन संयोगवश बारूदखाने में अकस्मात् आग लग जाने के कारण धराशाही हो, समाप्त हो गए हों। इस तरह किले के भीतर बने शाही भवनों को पृथक् करने वाले खुले, बड़े-बड़े रिक्त स्थान अनेक प्रकार से शाहजहानी-कथा का तिरस्कार करते और किले के हिन्दू-मूलक होने की पुष्टि करते हैं।

हम पुरातत्त्व में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए इतना इंगित कर सकते हैं कि उन चबूतरों के नीचे का क्षेत्र यदि खोद डाला जाय तो संभव है कि वहाँ किले के हिन्दूमूलक विगत-लक्षण विशद ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में उपलब्ध हो जायें। उनके नीचे दबी हुई वस्तुओं में सम्भव है कि हिन्दू-मूर्तियाँ, संस्कृत शिला-लेख, अलंकृत द्वार, धातु के सिक्के, चीनी-मिट्टी के बर्तन, प्रलेख, धर्मग्रंथ, कोने वाले खंभे तथा ऐसी ही अन्य चीजें मिल जायें। अतः किले के बाहर या भीतर चारों ओर भ्रमण करने वाले दर्शनार्थी को इस बात से स्वयं को प्रवंचित नहीं कर लेना चाहिए कि हम आज किले को जिस रूप में देखते हैं, वह सदैव वैसा ही रहा है। यशस्वी हिन्दू विगतकाल में यह किला अनेकों अन्य भव्य भवनों से सुशोभित हो रहा था। यह आज-जैसा वीरान और टूटा-फूटा नहीं था। उनकी धन-सम्पत्ति, साज-सज्जा और सज्जा-सामग्री विदेशी इस्लामी आधिपत्य और लूट की छः सौ वर्षीय कालावधि में अवलुंठित हो गई। हम आज किले की जिस भव्यता के दर्शन करते हैं, वह तो जाज्वल्यमान हिन्दू विगत वैभव की एक अत्यन्त धुंधली छाया और अत्यल्प

अंशमात्र है।

यह किला पूर्व से पश्चिम की ओर १,६०० फीट और दक्षिण से उत्तर की दिशा में ३,२०० फीट विस्तृत है। इस नाप में दरवाज़े सम्मिलित नहीं हैं। इसका मुख्य प्रवेश-द्वार, लाहौर-दरवाजा प्राचीन हिन्दू-राजमार्ग जिसे अब 'चाँदनी चौक' कहते हैं, के सामने है। यह राजमार्ग वह धुरीय-मार्ग है जिसके चारों ओर प्राचीन हिन्दू नगर-शिल्पकारों, रचनाकारों ने घुमावदार गलियों और बाजारों का ऐसा चक्रव्यूह तैयार किया था जो एक विशाल सुरक्षात्मक प्राचीर परिवेष्टित सम्पृक्त नगरी प्रतीत हो।

किले की लाल पत्थर की दीवार पर स्थान-स्थान पर दुर्ग हैं जिनमें अष्टकोणात्मक मण्डप हैं।

लाहौर-दरवाजे से प्रविष्ट होने पर व्यक्ति को तुरन्त बाईं ओर के एक तेज मोड़ पर मुड़ना होता है। प्राचीन हिन्दू किले सदैव इसी नमूने पर निर्मित होते थे। उनके विभिन्न दरवाज़े कभी एक ही पंक्ति में नहीं होते थे। फाटकों को सदैव ऐसे तेज मोड़ों, कोनों पर रखा करते थे कि संकुचित स्थान बन जायें, ऐसे छोटे प्रांगण बन जायें जहाँ बाहरी द्वार से प्रविष्ट हो चुके शत्रु को घेरा जा सके और उसका सामना किया जा सके।

व्यक्ति जब दूसरे फाटक में प्रवेश करता है, तब वह बाईं ओर एक लम्बे बहु-मंज़िले अष्टकोणात्मक महाकक्ष में पग धरता है। रक्षक, सैनिक, प्रवेष्टा, आसनदाता पदाधिकारी तथा अन्य भृत्यवर्ग यहाँ कार्यरत रहा करते थे।

उस बहु-मंज़िले अठपहलू महाकक्ष से एक लम्बा गलियारा प्रारम्भ हो जाता है। गलियारे की दो मंज़िलें हैं। निचली मंजिल में दुकानें हैं जहाँ चित्र, अद्भुत कला-शिल्प, आभूषण-अलंकार और मार्ग-दर्शिका पुस्तिकाएँ बिकती हैं। यह गलियारा 'छत्ता' कहलाता है। यह 'छाता' अर्थ के द्योतक संस्कृत शब्द 'छत्र' का अपभ्रंश रूप है।

इस लम्बे गलियारे के मध्य भाग में एक खुला हुआ अठपहलुआ भाग है जिसमें दाईं ओर बाईं ओर सड़कें गई हैं जो किले के भीतरी भागवाली

प्राचीर के समनान्तर चली गई हैं।

गलियारे के दूसरे ओर पर एक तोरण-द्वार है जिससे निकल जाने पर व्यक्ति किले की भीतरी भूमि पर पदार्पण करता है। पूरा गलियारा लम्बाई में ३७५ फीट है और "किसी भी विद्यमान राजमहल के ज्ञात प्रवेश-द्वारों में से सर्वोत्तम है।"[1]

इस प्रवेश-द्वार के सामने ही नौबत-(नक्कार)-खाना था जिसके नीचे होकर आगंतुक राजमहल के दूसरे या महान् प्रांगण में प्रविष्ट होता था। यह प्रांगण उत्तर व पश्चिम में ५४० फीट और पूर्व व पश्चिम में ४२० फीट फैला था। इसके मध्य में दीवाने-आम स्थित है जो कुल मिलाकर १८०×१६० फीट है। इसके मध्य में एक अत्यधिक अलंकृत अन्दर को धँसा हुआ भाग है जिसमें अत्यधिक मूल्यवान् जड़ाऊ पत्थरों वाला एक अलंकृत संगमरमर का चबूतरा था, जिसके ऊपर प्रवेश-द्वार की ओर मुख किये हुए कभी सुप्रसिद्ध मयूर-सिंहासन था। इसके पीछे फिर एक उद्यान-प्रांगण था; इसकी पूर्वी दिशा में रंगमहल था जिसमें एक स्नान-घर तथा अन्य कक्ष थे।

"पूर्व और पश्चिक दिशाओं में लगभग १,६०० फीट तक फैली हुई यह भवन-श्रृंखला किले को लगभग दो बराबर भागों में विभाजित करती थी। इसके उत्तरी भाग में अनेक छोटे-छोटे प्रांगण थे जो स्पष्टत: विशिष्ट व्यक्तियों के उपयोग में लाए गए भवनों से घिरे हुए थे, और उन भवनों में से ही एक भवन दीवाने-खास था जो नदी के ऊपर ही छाया किये होता था।"[2]

लालकिले के मध्यकालीन यूरोपीय प्रवासियों की टिप्पणियों की पुष्टि श्री बयार्ड टेयलर के इस पर्यवेक्षण से होती है जिसमें कहा गया है: "अन्दरूनी राजमहलों को जाने वाले, प्रवेशद्वार का मेहराबदार गलियारा राजमहलों की भव्यता का प्रभावी आमुख रहा होगा, किन्तु अब यह गंदा और जीर्ण-शीर्ण है; इसके बाद आगन्तुक जिस चतुरांगण चतुष्कोण में

---

१. श्री एच० सी० फंशा की "दिल्ली—विगत और वर्तमान"—पृ० २२
२. वही, पृ० २३ व २४

प्रविष्ट होता है वह अस्त-व्यस्त अस्तबलों, दुर्बल घोड़ों और कृश, रूक्ष हाथियों का विशाल बाड़ा प्रतीत होता है। इसके चारों ओर के भवन ईंटों और बालुकाश्म का विशाल भंडार बन चुके थे, जो शनैः-शनैः गिर रहे थे। द्वार-मण्डप, जो संगमरमर के थे, धूल और सफ़ेदी से खराब कर दिए गए हैं, अनुपम बेल-बूटों से सभी बहुमूल्य पत्थर निकाले जा चुके हैं, प्रांगणों के ऊपर चमकने वाले सुनहरे गुम्बद गंदगी से भर गए हैं और उन स्थानों पर भिखारियों-जैसे नीच व्यक्तियों की भारी संख्या निवास करने लगी है।" हेबर नामक बड़े ईसाई पादरी ने भी, जिसे किले में प्रवेश के समय इन भिखारियों की भीड़ ने दो बार रास्ते में आगे बढ़ने से रोक लिया था, यही कहानी सुनाई है जो २५ साल पूर्व की है: "सब-कुछ गंदा, ध्वस्त और निर्जन था। बादशाह जिस राज-सिंहासन पर बैठता था, उसके पीछे की दीवार पर बने हुए पक्षि-चित्रण में अलंकृत, बहुमूल्य हीरे-मोती की कारीगरी में से फूलों और पत्तियों की आधी सामग्री तो चुरा ली गई थी और विद्रूप कर दी गई थी। द्वार और खिड़कियाँ भी जीर्ण-शीर्णावस्था में थीं। स्वयं मोती-मस्जिद भी उपेक्षित और जीर्ण-शीर्णावस्था में थी। दीवाने-आम में सिंहासन-कक्ष भी उन पक्षियों द्वारा खराब कर दिया गया था जिन्होंने अपने घोंसले वहीं पर बना लिए थे।"[1]

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आए यूरोपीय प्रवासियों द्वारा प्रस्तुत किले का यह सुस्पष्ट तथापि हृदय-विदारक वर्णन अनेक प्रकार से महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम यह स्पष्ट करता है कि मुग़ल शान-शौकत के सभी वर्णन चापलूसी भरी इस्लामी मनगढ़न्त बातें हैं। प्राचीन हिन्दू लालकिला (गुलामवंशी शासक कुतुबुद्दीन के समय में १२०६ ई० से) जब से इस्लामी आधिपत्य में आ गया, तब से यह उपेक्षा और लूट-खसोट का शिकार हो गया। भारत में १००० वर्षीय दीर्घ मुस्लिम शासन तो बलात्कार, नर-संहार, दुराचरण और लूट-खसोट की अनंत कहानी है।

---

१. श्री एच० सी० फशा की "दिल्ली—विगत और वर्तमान"—पृ० २४ पर पद-टीप।

न केवल एक वंश को दूसरे ने शासन-च्युत किया, अपितु प्रत्येक राजवंश में ही हर-एक शासक विनाश के कगार पर डगमगाता रहता था। इतना ही नहीं, एक ही वंश में सिंहासनारूढ़ होने का कर्म प्रत्येक परिवार के आंतरिक संघर्षों से लिप्त था जिसमें प्रत्येक प्रतिद्वन्द्वी और उसके सहचारी के साथियों-संबंधियों को अत्यन्त भयावह बर्बरताओं का शिकार होना पड़ता था। पीड़ाओं और बीभत्स अत्याचारों की इस अन्तहीन कथा ने इस लालकिले और इसके विभिन्न भागों की घोर उपेक्षा कर दी। अतः, १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आए यूरोपीय प्रवासियों द्वारा किले के भीतरी भागों का वर्णन सन् १२०६ से १८५८ ई० तक पूर्ण इस्लामी आधिपत्य के सम्बन्ध में ही प्रयोज्य मानना चाहिए। प्राचीन हिन्दू शासकों द्वारा अपने अनुरूप बनाए गए विश्व के सर्वशक्तिमान् और सम्पन्नतम शासकों के योग्य बनाए गए इस अति स्वच्छ, सम्पन्न, भव्य और विशाल किले को, विदेशी इस्लामी आधिपत्यकर्ताओं ने अकिंचन निरीहावस्था में परिवर्तित कर दिया था। बिना विचारे इधर-उधर थूकते-फिरते स्नान न करने, मात्र सुस्ती और अनुत्तरदायी निष्क्रियता के कारण कूड़ा-करकट के इधर-उधर ढेर लग जाने देने की अपनी गंदी आदतों के कारण किले का भीतरी भाग शूकरशाला-जैसा दिखाई पड़ता था जिसके सभी प्रकार के ऐरे-गैरे नत्थू खैरे, भाँड, रखैलें, नपुंसक और दंगाई बदमाश, बिना किसी भी प्रकार की रोक-टोक के इधर-उधर, निष्प्रयोजन घूमते-फिरते थे। विदेशी आधिपत्य की वह हजार-वर्षीय अवधि ही ऐसी घड़ी थी जिसमें प्रत्येक विदेशी मुस्लिम शाहजादे और भिखमंगे, शाहजादी और वेश्या ने किले के उन राजकीय हिन्दू भागों में की हुई सुन्दर हिन्दू-पच्चीकारी में से क़ीमती मणि-माणिक्यों को निकाल लिया था। यदि तथाकथित मोती-मस्जिद सहित यह लालकिला मूलरूप में ही इस्लामी सम्पत्ति रहा होता, तो इसे कभी न लूटा गया होता और इसे कभी गंदा और उपेक्षित न छोड़ा गया होता। सभी प्रकार की सम्पत्ति की उपेक्षा तभी होती है जब वह अपने पुरुषार्थ से अर्जित नहीं होती अथवा अपने धन से बनाई गई नहीं होती। विशेषरूप में जब यह कट्टर दुश्मन हिन्दुओं की थी, तब तो इसको गंदगी और घोर उपेक्षा का शिकार होना ही था।

प्रसंगवश, यहाँ यह भी कह दिया जाय कि आज ग़लती से जिस भवन को मोती-मस्जिद कहा जाता है वह राजकीय हिन्दू मोती मन्दिर था। यदि यह ऐसा नहीं होता, तो यह कभी भी उपेक्षित और गंदा न पड़ा रहता। यह एक अत्यन्त छोटा भवन है, जिसमें एक छोटा प्रांगण और एक आराधना-स्थल है। अंतिम, डगमगाते हुए मुग़लों के पास भी, जो बराबर धर्मान्ध बने रहे, इतना तो धन और नौकर-चाकर थे कि यदि वे चाहते तो अपनी रोज़ाना की पाँच समय की नमाज़ के लिए एक छोटी-सी मस्जिद को साफ़-सुथरा रख सकते थे। किन्तु चूंकि उनको तो हिन्दुओं की प्रत्येक वस्तु से परम्परागत घृणा थी, इसलिए उन्होंने किले और इसके प्रत्येक भाग को गंदगी और निरर्थक वस्तुओं से भर जाने दिया, जिसके कारण बदबू और दमघोटू वातावरण भी बन गया।

छत्तेदार गलियारा व बाजार पार कर लेने पर व्यक्ति किले के अन्दरूनी प्रांगण में प्रविष्ट होता है। व्यक्ति को जो कुछ सामने दिखाई देता है वह नक्क़ारखाना अर्थात् नौबतखाना कहलाता है।

नक्क़ारखाने के द्वार पर, शाही खून के शाहजादों के अतिरिक्त किले के भीतर प्रवेश करने वाले सभी व्यक्तियों को, अपने-अपने वाहनों से उतरना पड़ता था और बादशाह के सम्मुख पैदल ही जाकर उपस्थित होना पड़ता था।

"नक्क़ारखाना एक अति सुन्दर और बहुत ही अच्छे ढंग पर बना हुआ भवन है, जिसके मध्य भाग में बढ़िया तोरण-द्वार है और नौबतवालों के लिए १०० फीट × ८० फीट की एक लम्बी खुली दीर्घा है।"[1]

"बर्नियर ने, जो सन् १६६० ई० और १६६५ के बीच अनेक बार दिल्ली में रहा, लिखा है कि नक्क़ारखाना हथिया पोल (अर्थात् परम्परागत हिन्दू गज द्वार) के नाम से भी पुकारा जाता था। इसी में जहानदार शाह और फ़र्रुख़सियर बादशाहों का क़त्ल किया गया था; परवर्ती को क़त्ल करने से पहले अंधा कर दिया गया था।"[2]

१. श्री एच० सी० फंशा की "दिल्ली—विगत और वर्तमान"—पृष्ठ २७
२. वही, पृष्ठ २८

"नक्कारखाने से ही दीवाने-ग्राम के सामनेवाले प्रांगण में प्रविष्ट हुआ जाता था। यह पश्चिम से पूर्व की ओर ४२० फीट का होने के कारण नक्कार-खानेवाले आंगण से गहरा अधिक था। नक्कारखाने के समान ही यह भी एक तोरण-द्वार और मेहराबदार कमरों तथा आलों से, जो दो मंज़िलों में थे, घिरा हुआ था।"[1]

चूंकि अब नक्कारखाने और दीवाने-आम के मध्य दुमंज़िलों में कोई मेहराबदार कमरे और आले नहीं हैं, इसलिए इतिहास के विद्यार्थी और ऐतिहासिक स्थलों, स्मारकों के दर्शनार्थी उस विध्वंस की कल्पना भली-भांति कर सकते हैं जो विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और आधिपत्य कर्ताओं ने प्राचीन हिन्दू स्थापत्यकला के वैभव और ऐश्वर्य को नष्ट करके किया है।

"दीवाने-आम के सामने एक स्थान था, जो लाल बालुकाश्म के कट-हरे से घिरा हुआ था, और जिसपर सुवर्णरोपित नोकदार मेखें, कीलें थीं। यह स्थान 'गुलाल बाड़ी' कहलाता था और छोटे अधिकारियों व दरबारी परिचरों के लिए आबंटित था। बड़े कर्मचारी व श्रेणियाँ, तथा सामान्य भीड़ लाल कटहरे के बाहर रहती थी। महाकक्ष १०० फीट लम्बा और ६० फीट चौड़ा है, तथा बहुत सुन्दर भवन है; जैसा बर्नियर ने लिखा है कि इसपर सफ़ेद चूनम का पलस्तर था और सोने की परत चढ़ी हुई थी; इसको अनेक बार 'चार खंभों वाला भवन' कहा जाता था।"[2]

चूंकि दीवाने-आम का पलस्तर और शृंगारिक स्वर्ण-सज्जा साफ़ कर दी गई है, इसलिए व्यक्ति को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्राचीन हिन्दू-कलाकृति को वर्षों तक बने रहे विदेशी आधिपत्य ने कितनी अधिक क्षति पहुँचाई है। यही कारण है कि हम पाठकों को पुनः एक बार इस ओर सचेत करना चाहते हैं कि वे स्मरण रखें कि यहाँ जो भी निर्माण कार्य हुआ है, वह हिन्दुओं द्वारा हुआ है और सर्व विध्वंस, विनाश मुस्लिमों द्वारा किया गया है।

---

१. श्री एच० सी० फंशा की "दिल्ली—विगत और वर्तमान"—पृष्ठ २८
२. वही, पृष्ठ २८

'गुलाल बाड़ी' को वाड़े में पृथक् करनेवाली सुनहरी नोकदार मेखें किले के विदेशी मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं द्वारा बन्दूकों, तलवारों और शस्त्र-सामग्री, आयुधों का निर्माण करने के लिए लूट ली गई हैं। बहुमूल्य हिन्दू लोहे के सामान की इस प्रकार की लूट के कारण ही अनेकों फ़व्वारों की टोंटियाँ और उनके गुम्बद चमकदार शिखरों से रहित हो गए हैं। लगभग एक हजार वर्ष तक युद्ध-रत विदेशी अरबों, अफगानों, तुर्कों, फ़ारसियों तथा अबीसीनियनों द्वारा उन सबों को लूटा गया और यहाँ से ले-जाया गया है।

"दीवाने-आम के विवृत में मयूर सिंहासन था, जिसका विशद वर्णन, शाहजहाँ के शासन-काल में आए एक फ्राँसीसी प्रवासी टेवरनियर ने, प्रस्तुत किया है…। मयूर सिंहासन के बारे में बर्नियर केवल इतना लिखता है कि यह ठोस सोने के छः पायों पर रखा हुआ था (टेवरनियर चार पाए कहता है, और वह निस्सन्देह रूप में सही है)…जिसमें ४५ लाख पौंड के माणिक्य, पन्ने, हीरे तथा अन्य जवाहरात लगे हुए थे। जवाहरों और मोतियों से अलंकृत दो मोर सुन्दर रूप में सुशोभित थे। व्यावसायिक जौहरी और सुसभ्य व्यक्ति टेवरनियर ने, जिसने (सन् १६६५ में) दो वर्ष बाद दिल्ली का भ्रमण किया था, सिंहासन का आकार ६ फीट × ४ फीट लम्बाई-चौड़ाई के बिस्तरे का बताया है, जिसके नीचे २० से २५ इंच ऊँचे चार सोने के पाए लगे थे, जिसके दण्डों के ऊपर १२ खम्भे थे जो छत्री के नीचे लगे थे। दण्डों के ऊपर माणिक्य और पन्नों के, तथा हीरों और मोतियों के तिर्यक् रूप सुशोभित थे। तीन सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ने पर सिंहासन की लम्बी पीठिका पर पहुँच जाते थे, जहाँ पर तीन सुनहरी तोषक (गद्दे) लगे थे; इसके चारों ओर एक गद्दा, एक ढाल, एक धनुष और बाणों का तरकश लटकते रहते थे। कुल मिलाकर १०८ लम्बे माणिक्य और ११६ पन्ने सिंहासन पर थे। छत्री के आधार पर लगे १२ खंभे जाज्वल्यमान मोतियों की पंक्तियों से सुसज्जित, सुशोभित थे, और टेवरनियर ने इनको सिंहासन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश माना है। छत्री का अन्दरूनी भाग हीरों और मोतियों से ढका हुआ था और इसके चारों ओर मोतियों की झालर लटकती थी। इसके चतुर्दिक् शिखर पर एक

मोर था जिसके दोनों ओर बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत बड़े बड़े स्वर्णगुच्छ स्थित थे। इस मोर की पूंछ नीलकान्त मणियों और अन्य रंगीन रत्नों से बनी हुई थी। इसका शरीर सोने का था जो बहुमूल्य मणि-माणिक्यों से जड़ा हुआ था। इसकी छाती में एक बहुत बड़ा माणिक्य लगा हुआ था, जिसके साथ लगभग ५६ कैरेट की नाशपाती के आकार का एक मोती लटका रहता था, और उसपर कुछ-कुछ पीली आभा थी। छत्री के सामने वाली दिशा में ८० से ९५ कैरेट भारवाला एक मोती था, जिसके चारों ओर माणिक्य व पन्ने लटक रहे थे। सिंहासन के सामने पार्श्व में दो छत्र थे जिनपर लाल मखमल की कशीदाकारी की हुई थी और उनपर मोतियों की झालरें लटक रही थीं। उन्हीं में हीरों, माणिक्यों और मोतियों से ढकी हुई सात से आठ फीट ऊंची डंडियाँ लगी हुई थीं। इस सिंहासन को फ़ारस का लुटेरा आक्रमणकारी नादिरशाह सन् १७३९ में लूटकर अपने साथ ले गया था।"[1]

चापलूस इस्लामी वर्णनों ने दावा किया है और अन्धविश्वासी यूरोपीय इतिहासकारों को यह विश्वास दिलाकर पथभ्रष्ट किया गया है कि ऊपर वर्णित मयूर-सिंहासन पांचवीं पीढ़ी के मुग़ल बादशाह शाहजहाँ द्वारा विशेष रूप से बनवाया गया था।

हमारा पूर्ण विश्वास है कि मयूर-सिंहासन एक ऐसी प्राचीन हिन्दू कुलागत वस्तु है जो विजयोपरान्त मुस्लिम स्वामित्व में पहुँच गई। यह मयूर-सिंहासन मुस्लिम हाथों में उस समय चला गया जब अन्यदेशीय मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा दिल्ली और आगरा के लालकिले एवं तथाकथित ताजमहल अपने अधीन कर लिये जाने पर उन भव्य दुर्गों और भवनों को सुसज्जित करनेवाली हिन्दू राज-परिवार-शृंखला द्वारा साज-सामग्री से अलंकृत सामग्री भी उन्हीं के अधिकार में चली गई थी। उन लोगों को असीम हिन्दू धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। उसी में यह अमूल्य मयूर-सिंहासन भी था। उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए

१. श्री एच० सी० फंशा की "दिल्ली—विगत और वर्तमान"—पृष्ठ २९ से ३३

हमारी दृष्टि में निम्नलिखित आधारभूत कारण हैं: पहली बात यह है कि शाहजहाँ उतना धनवान्, अतिव्ययी मुग़ल बादशाह नहीं था जैसा कि अन्य लोगों द्वारा विचार किया जाता है। धन की दृष्टि से वह अत्यधिक तंगी में रहता था; साथ ही वह अति कंजूस, क्रूर, घमण्डी और गर्म-मिज़ाज था। वह पहला मुग़ल बादशाह था, जिसने गद्दी पर बैठने के लिए अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों की हत्या कर दी थी। उसने शाहज़ादे के रूप में अपने शासनारूढ़ पिता जहाँगीर के विरुद्ध बग़ावत भी की थी। इतना ही नहीं, शाहजहाँ को अपने ३० वर्ष से कम के शासनकाल में, आक्रामक अथवा प्रतिरक्षात्मक, ४८ युद्ध लड़ने पड़े थे। इस प्रकार, एक ऐसे शासन को, जिसे वर्ष में, औसत रूप में पौने दो चढ़ाइयाँ प्रतिवर्ष करनी पड़ें, अपने खज़ाने में, बहुत कठिनाई से ही कोई धन शेष मिल पाएगा।

दूसरी बात, शासनारूढ़ होने के दो वर्ष के भीतर ही शाहजहाँ को अपनी बेगम मुमताज़ की मृत्यु से अत्यन्त शोकाकुल होना पड़ा था। फिर उसे उस मृतक पत्नी के आश्चर्यकारी मक़बरे के रूप में ताजमहल निर्माण करने के लिए करोड़ों रुपये व्यय करने का श्रेय दिया जाता है। आगरे के लाल किले में ५०० भवन गिरवाने और उनके स्थान पर अन्य ५०० भवन बनवाने का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। शाहजहाँ को ही पुरानी दिल्ली नामक एक पूरा नया नगर बसाने, उसका लालकिला और अत्युच्च जामा मस्जिद बनाने का श्रेय भी दिया जाता है। उसे ही यह श्रेय भी दिया जाता है कि उसने कश्मीर से लेकर सुदूर अजमेर और बुरहानपुर में अनेक राजमहलों, भवनों, किलों और झीलों का भी निर्माण कराया था। इतने सारे मोटे, कल्पनातीत व्यय के साथ-साथ ही शाहजहाँ के बारे में यह भी कल्पना की जाती है कि उसके पास इतनी विपुल संख्या में हीरे, मोती, पन्ना, माणिक्य आदि थे कि उसने किंवदन्ती-गत मयूर-सिंहासन बनवाने का आदेश दिया था। इस प्रकार की आर्थिक निष्प्रयोजनता का विशद इतिहास के रूप में विश्वास किया जाना इस बात का द्योतक है कि विदेशी आधिपत्य की हज़ार-वर्षीय अवधि में भारत के ऐतिहासिक तर्क-शास्त्र और औचित्य को भारी हानि पहुँची है।

तीसरी बात यह है कि शाहजहाँ स्वयं एक धर्मान्ध मुस्लिम व्यक्ति होने और क्रूर, भयंकर दरबारियों, असहनशील काज़ियों तथा मुल्लाओं के धर्मान्ध इस्लामी वर्ग से सदैव घिरा रहने के कारण कभी भी ऐसा 'काफ़िराना' निर्माणादेश देने का दुस्साहस न करता जिसमें घृणित मूर्तिपूजा की गन्ध आती हो। वह अपनी असहनशील इस्लामी स्वाभाविक वृत्ति के साथ उस सिंहासन पर कभी भी बैठ नहीं सकता था। उन दिनों का कोई भी मुस्लिम जौहरी एक इस्लामी बादशाह के लिए ऐसा सिंहासन बनाकर पाप कमाने का दुष्कर्म, दुस्साहस नहीं कर सकता था। ऐसी मूर्ति-मय सिंहासन पर इस्लामी बादशाह के रूप में शाहजहाँ को कोई भी मुल्ला पवित्र करने को साहस न बटोर पाता। कोई भी मध्यकालीन मुस्लिम दरबारी व्यक्ति मूर्तिमय सिंहासन पर बैठे एक इस्लामी बादशाह को कभी भी सिर न झुकाता।

तब यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या सभी समकालीन वर्णन झूठे हैं और शाहजहाँ के पास कभी मयूर-सिंहासन रहा ही नहीं? उत्तर यह है कि शाहजहाँ के पास मयूर-सिंहासन तो अवश्य था, किन्तु मात्र अपहृत हिन्दू सम्पत्ति के रूप में ही था। फिर प्रश्न किया जा सकता है कि लूटी हुई हिन्दू सम्पत्ति के रूप में भी शाहजहाँ के चारों ओर रहनेवाले मूर्ति-भंजक इस्लामी उग्रवादी वर्ग ने अपने मूर्तिभंजक उन्माद को मयुर सिंहासन के होते हुए शांत रखा? उत्तर यह है कि इस्लामी नित्याभ्यास और परम्परा में काफ़िरों से समस्त लूटी हुई सम्पत्ति को 'हलाल' अथवा पवित्र और स्वीकार्य समझने की रुचि, प्रवृत्ति रही है। 'काफ़िर' की वस्तु जितनी अधिक क़ीमती होती थी, यथा पत्नी या धन-सम्पत्ति, उतनी ही अधिक ग्राह्य वह वस्तु—लूट के रूप में—मध्यकालीन मुस्लिम गृहस्थ अथवा आक्रमणकारी को होती थी। वे अपने आदेश द्वारा कोई भी मूर्ति-मय वस्तु नहीं बनवाते थे—ठीक है, किन्तु निस्संकोच रूप में उसका पूर्ण आनन्द एवं उपभोग कर लेते थे यदि वह वस्तु लूटी हुई, ग़ैर-मुस्लिम सम्पत्ति होती थी। ऐतिहासिक इस्लामी भावना की इस प्रकार अत्यन्त सावधानीपूर्वक सुनिर्धारित ठग-विद्या और इस प्रकार तोड़-मरोड़ ही वह आधार थी जिसके कारण शाहजहाँ और उसके इस्लामी संगी-साथियों ने

न केवल उस मूर्तिमय हिन्दू मयूर-सिंहासन को सहन ही किया, अपितु उसे अपने कोषागार में डाल दिया।

चौथी स्मरणीय बात यह है कि हिन्दू सम्राटों और देवी-देवताओं के आसनों को पशु-पक्षी आकृतियां असंदिग्ध रूप में वहन करती हैं, अथवा उनकी शोभा बढ़ाती हैं। हिन्दू सम्राट् की राजगद्दी सदैव सिंहासन—सिंह का आसन—कहलाती है। व्याघ्र, मयूर, चूहा, भैंसा, और बैल लोक-प्रसिद्ध वाहन हैं जो हिन्दू देवताओं और देवियों से सम्बन्धित हैं। मयूर-पक्षी तो हिन्दू देवी सरस्वती और भगवान् कार्तिकेय दोनों का ही परम्परा-गत वाहन है। अतः मयूर के सिंहासन के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ अथवा उसके इस्लामी सलाहकारों की भावना को देना अत्यन्त ग़ैर-ऐतिहासिक और ग़ैर-इस्लामी बात है।

पाँचवीं बात यह है कि मयूर-सिंहासन से जुड़ी हुई सभी संख्याओं का एक पावन, पवित्र हिन्दू माहात्म्य है। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, जब टेवरनियर सिंहासन के १२ खम्भों और १०८ लम्बे माणिक्यों की बात कहता है, तब इन संख्याओं का हिन्दू परम्परा में एक अति विशिष्ट, पावन, धार्मिक माहात्म्य सन्निहित है। हिन्दू सन्तों और बुधजनों के नामों के साथ १०८ संख्या जुड़ी रहती है। बारह वर्षीय अवधि का अर्थ अध्ययन, विचार और साधना की परिपक्वता होती है। माणिक्यों और पन्नों की तिर्यक् आकृतियाँ केवल हिन्दू स्वस्तिक ही हो सकती थीं। किसी तिर्यक् आकृति का इस्लामी परम्परा में कोई स्पष्टीकरण नहीं है। इसके विप-रीत इसे तो ईसाई या हिन्दू मूर्तिपूजा का प्रतीक मानकर, किसी भी मूल इस्लामी नमूने में इससे नाक-भौं ही सिकोड़ी जाएगी।

उपर्युक्त सभी विचारों से प्रेरित होकर इतिहास के विद्यार्थियों को वह रटा-रटाया विश्वास अस्वीकार्य हो जाना चाहिए कि सुप्रसिद्ध एवं अतिव्ययी, कल्पनातीत मयूर-सिंहासन तो शाहजहाँ के आदेश पर ही निर्मित हुआ था। इसकी अपेक्षा इतिहासकारों को चाहिए कि वे इस मयूर-सिंहासन के हिन्दू इतिहास को और इसे नादिरशाह द्वारा फ़ारस ले-जाने के बाद अपवित्र करने, टुकड़े-टुकड़े करने और मुस्लिमों द्वारा लूट लिये जाने के इतिहास का पता करने का कार्य करें। यही तथ्य, कि इस

मयूर-सिंहासन को समूल नष्ट करने के लिए तोड़ा गया, खण्ड-खण्ड किया गया, और फिर लूट लिया गया, इस बात का प्रबल प्रमाण है कि एक मूर्तिमय हिन्दू सिंहासन को घोर इस्लामी राज्य में सहन नहीं किया गया था।

तथाकथित दीवाने-आम के पीछे, कुछ दूरी पर चलनेवाले व्यक्ति को किले की पिछली सीमा-प्राचीर के साथ-साथ अनेक शाही निवास-कक्षों की पंक्ति दृष्टिगोचर होती है। यह सीमा-प्राचीर कुछ फ़र्लांग की दूरी पर बहती हुई यमुना नदी की जल-धारा के समानान्तर है। मध्य-कालीन युग में, यमुना नदी किले की पिछली दीवार के साथ-साथ बहा करती थी, जिससे प्राकृतिक खाई के रूप में प्रतिरक्षा-बाधा उपलब्ध हो जाती थी। तथ्य तो यह है कि प्राचीन हिन्दू लोग अपने मन्दिरों, राज-प्रासादों, और विशाल भवनों को नदी-तटों पर ही बनाया करते थे। इलाहाबाद में प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्मित किला गंगा और यमुना के संगम पर बनाया गया था। आगरा-स्थित ताजमहल जो अब हिन्दू-मन्दिर—राजमहल-संकुल सिद्ध किया जा चुका है, यमुना नदी के पार्श्व में ही बना हुआ है। आगरे का लालकिला और (आजकल ऐतमादुद्दौला के मक़बरे के रूप में रूप-परिवर्तित किये) राजा भोज का जाज्वल्यमान राजप्रासाद भी पावन, पुण्यसलिला यमुना के तट पर बने हुए शोभायमान हैं। यहीं तो यमुना मैया भगवान् कृष्ण की तीर-वर्ती कौतुक-क्रीड़ाओं से पवित्र हुई थी।

दिल्ली में लालकिले के पिछवाड़े शाही निवास-स्थानों की पंक्ति की ओर मुख करके खड़े होने वाले व्यक्ति के दाईं ओर किले का दक्षिणी छोर होता है। उसके बाईं ओर किले का उत्तरी अन्तिम खंड होता है।

दर्शनार्थी व्यक्ति इस तथ्य का विशिष्ट ध्यान रखें कि ये शाही मंडप पृथक्-पृथक् हैं और उनके बीच में बड़े-बड़े, खुले हुए रिक्त स्थान पड़े हैं। उन मण्डपों और कक्षों को जोड़ने वाले गलियारों और आच्छादित मार्गों को अब नष्ट कर दिया गया है। हम इस अध्याय में पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि ये विलुप्त स्थापत्यकला के संयोज्य भाग, स्वयं ही, विजित हिन्दू भक्तों पर मुस्लिम आक्रमणों, बर्बर मूर्ति-खण्डनों, तोड़-फोड़ और

धर्मान्धतापूर्वक किये गये अपवित्रीकरण के प्रबल प्रमाण हैं। प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा करते समय हमारे द्वारा उद्धृत उस मार्ग-दर्शक सूत्र का यही अर्थ है जिसमें हमने कहा है कि वहाँ का सभी निर्माण-कार्य हिन्दुओं द्वारा हुआ है, जबकि सम्पूर्ण विध्वंस-कार्य मुस्लिमों का दुष्कृत्य है।

आइए, हम अब इन शाही मण्डपों को दाईं ओर से बाईं ओर अर्थात् दक्षिण से उत्तर की दिशा में एक-एक कर देखना प्रारम्भ करें। सर्वप्रथम वह है जिसे 'मुमताज़ महल' कहते हैं। इसका स्वयं नाम ही असंगत, असम्बद्ध है क्योंकि 'मुमताज महल' नामक सम्पूर्ण शब्दावली का परम्परागत सम्बन्ध शाहजहाँ की सर्वाधिक प्रियतमा पत्नियों में से एक के साथ जोड़ा हुआ है। यदि यह एक महिला का नाम है, तो इसका भवन पर किस प्रकार नाम-प्रयोग किया जा सकता है? आगरा में 'ताजमहल' शब्दावली मुमताज महल (के दफ़नाने) से सम्बन्धित एक भवन का द्योतक ठहराई जाती है। यदि आगरा स्थित एक संरचना मुमताज़ महल से सम्बन्धित होने के कारण 'ताजमहल' कहलाई तो दिल्ली में बने एक भवन के लिए किस प्रकार और कैसे वह भाषायी-सिद्धान्त बदल गया? उस सिद्धान्त के अनुसार तो यदि कुछ नाम रखा ही जाना था, तो दिल्ली के लालकिले में दक्षिण भाग के अन्तिम छोरवाले उस भाग का नाम 'ताजमहल' ही रखा जाना चाहिए था!

एक अन्य संदेह यह है कि मुमताज़ लगभग सन् १६३० ई० के आस-पास ही मर गई थी, जबकि विश्वास किया जाता है कि दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ द्वारा सन् १६४८ ई० में बनवाया गया था। इन अठारह वर्षों में शाहजहाँ के हरम की अनेकों महिलाओं ने शाहजहाँ का शारीरिक आकर्षण प्राप्त किया होगा। क्या वे तत्कालीन प्रतिद्वन्द्वी महिलाएँ एवं मृत प्रतिद्वन्द्वी के नाम पर किसी भी भवन का नाम रखने की अनुमति शाहजहाँ को दे सकती थीं, जबकि उनके अपने नाम पर एक भी भवन न बनाया गया हो? एक अन्य विचार भी अधिक मौलिक है। झूठी बातों से भरे हुए इस्लामी विवरणों में जनता को बताया जाता है कि मुमताज़ की मृत्यु के बाद बादशाह शाहजहाँ इतना दुःखी, सन्तप्त हुआ

था कि उसने उस मृत पत्नी की याद में न केवल आगरे में ताजमहल बनवाया अपितु आगरे के किले की एक वीथी में लगे हुए एक छोटे-से काँच में उस मृत पत्नी के मक़बरे को देखते हुए, आहें भरते-भरते, अपना शेष जीवन बिता देने की क़सम भी खाई थी। यह बात उस भ्रामक विश्वास को झुठला देती है जिसके अनुसार माना जाता है कि शाहजहाँ ने बाद के वर्षों में अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली में स्थानान्तरित कर दी थी।' इस प्रकार के सभी विचारों से सिद्ध होता है कि उस शाही भवन को 'मुमताज महल' दिया गया नाम तो बाद में ऊपर से यों ही थोपा गया काम है। सम्भव है कि यह किसी परवर्ती मुग़ल शासक की किसी रखैल या प्रिया का नाम रहा हो जो शाहजहाँ के ही समान हिन्दू लालकिले पर सत्तासीन रहा हो। यह निश्चित है कि यह नाम शाहजहाँ की पत्नी का नहीं था।

ये दोनों कपोल-कल्पनाएँ, कि चूंकि शाहजहाँ की बेग़म मुमताज आगरा में दफ़नाई पड़ी है इसलिए उसने सारी ज़िन्दगी आगरा में रहने का निश्चय किया था, तथा सन् १६३८ ई० में शाहजहाँ ने अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली लाने का निश्चय किया था, एक-दूसरे को निरस्त कर देती हैं। दोनों आधारहीन और परस्पर-विरोधी होने के साथ-साथ मध्यकालीन इतिहास के विद्वानों के मानसिक विभ्रम की द्योतक हैं क्योंकि इतिहास के सम्बन्ध में उनका समस्त अवबोधन और ज्ञान सतत ग़लत रहा है।

वास्तविक स्थिति यह थी कि शाहजहाँ ने कभी भी स्वयं आगरा अथवा दिल्ली में बने रहने की बात कही ही नहीं थी। उसने और उसके बाप-दादों ने अपने दरबार दिल्ली, आगरा या फ़तहपुर सीकरी में बदलते हुए समय की आवश्यकताओं के अनुसार अथवा बादशाहों की इच्छानुसार लगाए थे, यद्यपि आगरा ही, अन्य दोनों नगरों की तुलना में बहुत अधिक समय तक—तब तक—राजधानी बना रहा, जब तक कि शाहजहाँ का बेटा औरंगज़ेब राजगद्दी पर नहीं बैठ गया। यह झूठ कि शाहजहाँ ने अचानक ही अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदल लेने का निश्चय कर लिया था, उन लोगों ने प्रचारित कर दी जिन्होंने विश्व में एक

दूसरा झूठ भी—अर्थात् शाहजहाँ ने शाहजहानाबाद नामक दिल्ली नगरी, लालकिला और जामा मस्जिद निर्माण कराए थे—प्रसारित कर दी थी। उसने ऐसा कुछ नहीं किया था। उसने तो अति प्राचीन हिन्दू दिल्ली नगर की पुरानी इमारतों पर अपना आधिपत्य-भर कर लिया था, कोई निर्माण बिल्कुल भी नहीं किया था।

तथाकथित 'मुमताज़ महल' मण्डप के सम्बन्ध में एक सरकारी प्रकाशन में कहा गया है : 'पूर्वकाल में शाही शाहज़ादियों में किसी एक का यह शाही निवासभाग सैनिक-कारावास के रूप में उपयोग में आता रहा है (बन्दियों द्वारा उत्कीर्ण अंशों को संगमरमरी दीवार के फ़र्श को छूते हुए भाग पर अभी भी देखा जा सकता है)। और, अभी कुछ समय पूर्व तक इसे सार्जेण्टों (सैनिक अधिकारियों की पाकशाला—रसोई—के रूप में काम में लाया जाता रहा है। इस काम के लिए इसकी मूल आकृति पूरी तरह बदल दी गई थी। किले की पुरानी रेखाकृतियाँ और चित्र ऐसा स्पष्ट दर्शाते हैं कि यह एक ऐसी संरचना रही थी जो इसके पास ही बने हुए रंगमहल से भिन्न न थी। सन् १९११ ई० में की गई खुदाई में एक छोटे संगमरमरी फ़व्वारे के जलपात्र के अवशेष मिले थे। यह फ़व्वारा पश्चिम की ओर भवन के सामने था। इस भवन को छोटा रंगमहल या ख़ासमहल भी कहा जाता था।''[1]

हम अपनी ऐतिहासिक तर्क-पद्धति से जिस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'मुमताज़ महल' शब्दावली तो उस राजकीय मण्डप के वास्तविक हिन्दू नाम के ऊपर बाद में थोपा गया इस्लामी छद्मनाम होगा, इसकी पुष्टि उपर्युक्त अवतरण द्वारा पूर्ण रूप में होती है। इस सरकारी प्रकाशन में स्वीकार किया गया है कि उस मण्डप का पूर्वकालिक नाम 'छोटा रंगमहल' था। वही मार्गदर्शिका हमको आगे भी बताती है कि "मुमताज़ महल (अर्थात् छोटा रंगमहल) और (उससे आगे) रंगमहल नाम से पुकारे जाने वाले भवन के मध्य का स्थान दिल्ली के अन्तिम मुग़ल बादशाह के

१. पृष्ठ-१६, दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका; भारत पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण, १९३२

युग के भवनों में भरा पड़ा था—यह तथ्य ग़दर से पूर्व ही लिये गए चित्रों के पुराने संग्रहों से बिल्कुल स्पष्ट है।" यह इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि किस प्रकार प्रत्येक मुग़ल ने अपनी पीढ़ियों के लिए कुछ विद्यमान मण्डपों के बीच खुले खाली स्थान छोड़कर प्राचीन हिन्दू लालकिले का ध्वंस-कार्य किया है। कोई भी व्यक्ति, तब, लालक़िले के भीतर बने उन राजप्रासादीय भागों की उस विशदता, विशालता और भव्यता का अनुमान भली-भाँति लगा सकता है जो इस्लामी आक्रमणों की महामारी द्वारा, एक-एक करके समूल नष्ट कर दिए गए, जिनका आज नाम और निशान भी विद्यमान नहीं है। 'छोटा रंगमहल' का उत्तरी भाग, जो छोटे-छोटे शीशों से जड़ा हुआ है, 'शीशमहल' कहकर पुकारा जाता है।

यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'रंगमहल', 'छोटा रंग-महल' और 'शीशमहल' शब्दावली पूर्णतया हिन्दू हैं। मात्र हिन्दुओं में ही एक विशेष त्यौहार होता है जो 'रंग पंचमी' कहाता है और जो ग्रीष्म-काल के अभ्युदय पर शुक्ल पक्ष के पाँचवें दिन होता है। उस दिन गण्य-मान्य लोग सम्राट् के चारों ओर एकत्र होकर हाथ में अबवा तथा अन्य रंग और इत्र व फूल लेकर एक-दूसरे का अभिनंदन करते थे। प्रत्येक हिन्दू राजकीय दरबार का वह प्रसन्नता-द्योतक राजकीय पर्व-समारोह होता था। 'रंग' संस्कृत शब्द है, और 'महल' शब्द 'महा-आलय' शब्द का अपभ्रंश है, जो निवास-स्थान, मंडप अथवा कमरे का द्योतक है।

उसी मार्गदर्शिका का, पृष्ठ १७ पर कहना है कि "शाहजहाँ के शासनकाल में 'रंगमहल' को 'इम्तियाज महल' (अर्थात् विशिष्ट महल) कहते थे।"[1] शाहजहाँ के मात्र अपहरणकर्ता होने का यह एक अन्य प्रमाण है। उसने तो प्राचीन हिन्दू लालकिले के भीतर बने हुए भागों के हिन्दू संस्कृत नामों को परिवर्तित भी कर दिया था। और चूंकि 'रंग-महल' नाम हमारे अपने काल तक चला आया है, इससे सिद्ध होता है कि लालकिले की प्रति प्राचीन हिन्दू परम्परा इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० १७

थी कि छोटे-बड़े सभी मुग़लों के भरसक प्रयत्नों का भी किले की हिन्दू शब्दावली पर कोई लेशमात्र प्रभाव भी नहीं पड़ा, उसपर कोई छाप नहीं पड़ी।

मध्यकालीन भारत में पधारे बर्नियर नामक फ्रांसीसी प्रवासी ने लिखा है कि "लगभग प्रत्येक कमरे का, प्रवाहित जल का अपना जल-भंडार उसके अपने ही दरवाज़े पर उपलब्ध था।"[1] चूंकि मुस्लिमों की रेगिस्तानी परम्परा रही है, अतः न तो उनको प्रवाहित जल का कोई उपयोग ही आता था, और न ही उनको उसकी व्यवस्था-प्रणाली का कोई ज्ञान उपलब्ध था।

"रंगमहल के केन्द्रीय, मुख्य कक्ष के बीचों-बीच कमल पुष्प का रूप बना हुआ था, जिसकी पत्तियों के ऊपर जलराशि कलकल निनाद करती थी और एक उथले संगमरमरी पात्र में गिर जाती थी; यहाँ गुलाब की पंखुड़ियाँ और चमेली की कलियाँ संगमरमरी पच्चीकारी में अलंकृत थीं जो ऊपर जलराशि आने पर स्वयं गतिमान हो गईं प्रतीत होती थीं।"[2] इस्लामी आधिपत्य के कारण हिन्दू स्थापत्यकला के वैभव के साथ कितना भयंकर खिलवाड़ किया गया है, उसका कितना विध्वंस किया गया है! "रंगमहल की भीतरी छत चाँदी की थी, किन्तु फर्रुख़-सियर के ज़माने में चाँदी के बदले में ताँबा लगा दिया गया था। बाद में, अकबर-द्वितीय ने उस ताँबे को भी इंगुरी चित्रकारीवाली लकड़ी की भीतरी छतों से बदल दिया था"—उसी पुस्तक में अभिलिखित है। यह एक अन्य प्रमाण इस बात का है कि किस प्रकार भारत के भवनों को उनकी अपनी धन-सम्पत्ति से पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंचित किया जाता रहा।

रंगमहल के नीचे भूगर्भस्थ शाही निवास-स्थान है।

रंगमहल से उत्तर की ओर बढ़ने पर व्यक्ति को एक अन्य मण्डप मिलता है जिसके सम्बन्ध में अपहरणकारी इस्लामी परम्परा और अंधी पश्चिमी विद्वत्ता, सब-की-सब भ्रम में पड़ी हुई हैं। यह भाग केन्द्रीय हिन्दू

---

१. 'मुग़ल साम्राज्य में प्रवास', पृ० २६७

२. गोर्डन हर्न विरचित 'दिल्ली की सात नगरियाँ', पृ० १०६

मण्डप का है जिसमें लालकिला बनवानेवाले और उसका स्वामित्व रखनेवाले प्राचीन हिन्दू सम्राट् के हिन्दू राजचिह्न स्पष्ट रूप में दर्शाए गए हैं। विश्वभर को यह विश्वास दिलाकर ठगा गया है कि उस राजचिह्न में एक अर्ध-चन्द्र है। ऐसा "सचमुच में ऐसा है नहीं", सत्यतः है नहीं। जिसको अंधाधुंध विश्वास दिलाया गया है और धोखे से अर्धचन्द्र कह दिया गया है, वह तो तलवारों का एक जोड़ा है जिसमें उन दोनों तलवारों की एक मूठ दूसरी तलवार की मूठ में बराबर-बराबर, साथ-साथ लगी हुई है। किन्तु हम इस राजचिह्न के बारे में कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा बाद में आगे चलकर करेंगे। यहाँ, हम इसका उल्लेख केवल इसलिए कर रहे हैं कि पाठक तथा किले के दर्शनार्थी इस भाग को भलीभाँति पहचान सकें; विशद-वर्णन हम अब आगे प्रस्तुत करेंगे। इस प्रकार की पहचान विशेष रूप में इसलिए आवश्यक है कि इस भाग के बारे में अंग्रेज़ी और मुस्लिम वृत्तान्त, सभी विभ्रमपूर्ण हैं। एक के बाद एक मार्ग-दर्शिका इस भाग के तीन-तीन नाम प्रस्तुत करती है। उन सबों का कहना है कि यह मण्डप-भाग 'तस्बीहखाना, ख्वाबगाह और बैठक अर्थात् (उपनाम) तोशाखाना' नाम से पुकारा जाता है। हम यहाँ पर पाठक को यह भी सूचित कर देना चाहते हैं कि ख्वाबगाह को ही वैकल्पिक रूप में आरामगाह भी कहते हैं। किसी एक भाग के इतने सारे नाम क्यों हों? इसका कारण यह है कि ऐतिहासिक विद्वत्समाज ने स्वयं को अनेक ग़लत धारणाओं के माध्यम से जटिल जाल से बाँध लिया है। वे कहते हैं कि "तस्बीहखाना वह निजी उपासना-कक्ष है जहाँ मुस्लिम बादशाह द्वारा माला के मनकों को गिनकर ईश्वर (खुदा) के गुणों का स्मरण किया जाता है।"[1]

एक अन्य पुस्तक में लिखा है, "तस्बीहखाना, ख्वाबगाह और बैठक मिलकर एक ही भवन होता है: दीवाने-खास के सामनेवाले तीन कमरों की पंक्ति तस्बीहखाना है; इसके पीछे अन्य तीन कमरों की पंक्ति ख्वाबगाह कहलाती है और साथ का बड़ा कमरा जो ख्वाबगाह की चौड़ाई का लगभग आधा है, अनजाने में ही, बिना समझे-बूझे, बैठक या तोशाखाना

१. दिल्ली का किला, भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० २२

(वस्त्रागार) कहलाता था। ये तीनों भाग मिलकर दीवानेखास के आकार के बराबर हो सकते हैं। बीच के कमरे (ख्वाबगाह) की उत्तरी और दक्षिणी दीवारों में मेहराबदार दरवाजे हैं जिनमें संगमरमर की जालियाँ लगी हुई हैं।"[1]

उपर्युक्त अवतरण में उस वैचारिक प्रणाली के अनेक दोष विद्यमान हैं जो भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान के विशिष्ट नाम पर चलती जा रही हैं। पहला दोष यह है कि दीवाने खास के आकार के बराबर का एक भाग लगभग आधा दर्जन मुस्लिम नामों से क्यों पुकारा जाय? दूसरी बात यह है कि उपासना-गृह, वस्त्रागार, ख्वाबगाह और शाही बैठक में परस्पर सम्बन्ध साहचर्य क्या है? वे सब-के-सब कमरों के एक समूह के रूप में इकट्ठे कैसे हैं? तीसरी बात स्पष्टत: यह प्रतीत होती है कि अत्यन्त शेखी मारनेवाले, अहंकारी, शक्तिशाली मुग़लों को इतना दारिद्रय और जगह का अभाव था कि एक छोटे-से मण्डप को आधा दर्जन विभिन्न नाम देकर और उसके अनेक प्रकार से उपयोग करके वे अपने शाही अभिमान की आत्मतुष्टि कर लेते थे।

आश्चर्यकारी बात तो यह है कि मण्डप का एक छोटा भाग शाही इस्लामी उपासना-गृह कहलाता है। वास्तव में देखा जाय, तो (शाहजहाँ के बेटे) छठी पीढ़ी के मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब द्वारा बनाई गई तथाकथित मोती-मस्जिद इस कमरे के पास ही उत्तर-पश्चिम में विद्यमान है। स्पष्ट है कि लालकिला शाहजहाँ द्वारा बनवाने का श्रेय देनेवाले असत्य इस्लामी झूठों में विश्वास करनेवाले इतिहास-लेखकों ने प्रवंच्य रूप में अन्य झूठ में भी विश्वास जमा लिया कि औरंगज़ेब ने मोती-मस्जिद का निर्माण कराया था। चूंकि इन इतिहासकारों ने यह धारणा बना ली कि मोती-मस्जिद का निर्माण एक पीढ़ी बाद औरंगज़ेब द्वारा किया गया था, अत: उनको अपने ही अज्ञानवश यह मानने को भी विवश होना पड़ा कि शाहजहाँ का लोक-प्रचलित निजी उपासना-गृह ख्वाबगाह के कमरों में से ही एक था।

---

१. गोर्डन हर्न विरचित 'दिल्ली की सात नगरियाँ, पृ० २३४

किले के भ्रमणार्थी, दर्शनार्थी और इस पुस्तक के पाठक तथा उनके माध्यम से समस्त विश्व यह बात अच्छी तरह समझ ले कि किले के भीतर बनी हुई यह तथाकथित मोती-मस्जिद न तो शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई थी और न ही उसके बेटे औरंगजेब द्वारा बनवाई गई थी। जिसे आज भूल से मोती-मस्जिद कहा और वैसा ही समझा जाता है, वह तो प्राचीन राजकीय मोती-मन्दिर था। यह तो सम्राट्, हिन्दू राजा के अपने स्नान-घर के अत्यन्त निकट ही है। इसमें हिन्दू स्नान-कुण्ड या उथले जलाशय बने हैं, न कि परम्परागत मुस्लिम फ़व्वारे।

हमने, इस प्रकार, भयंकर भूल करनेवाली अपहारक आंग्ल-मुस्लिम परम्परा द्वारा खासमहल उपनाम ख्वाबगाह उपनाम आरामगाह व तोशा खाना-व-तस्बीहखाना को विभ्रमित होकर दिए गए अनेक नामों व उप-योगों में से किले के केन्द्रीय, मुख्य हिन्दू नरेशों के मण्डप को पृथक् प्रस्तुत कर दिया है। हम इसे मुख्य, केन्द्रीय भाग कहते हैं क्योंकि इसमें हिन्दू राजचिह्न को गौरव-सहित भव्य-रूप में, ऊँचा, प्रदर्शित किया गया है। यदि प्राचीन इतिहास का अध्ययन करनेवाले विद्वान् लोग विभिन्न हिन्दू राजवंशों से सम्बन्धित राज-चिह्नों का ठीक-ठीक हिसाब लगा सकें, तो इस राजचिह्न से उस हिन्दू शासक या राजवंश का ज्ञान प्राप्त हो सकता है जिसने वास्तव में यह किला (लालकोट) बनवाया था।

भ्रमणार्थी व्यक्ति इस शाही मण्डप में किले के हिन्दू-मूलक होने का एक और सुस्पष्ट, सजीव प्रमाण देख सकता है। यहाँ बने हुए कमरों में दरवाजे लगे हुए हैं जो सुरक्षात्मक और अलंकृत धातु की चादरों से अलंकृत हैं। प्रत्येक दरवाजे के दोनों फलकों में गज-मस्तकों की सूँड़ों में बड़े-बड़े लोह के कुंडे लटक रहे हैं। उन दोनों हाथियों के ऊपर एक-एक महावत बैठा हुआ है। यदि शाहजहाँ ने लालकिया बनवाया होता, तो उसने मूर्ति-मय हाथियों और उनपर विराजमान मानव-आकृतियों को द्वार-मूठ के रूप में कभी भी काम में लेने की अनुमति न दी होती—वह उनको वहाँ कभी भी बनने न देता। इसके विपरीत, हिन्दुओं की वृत्ति ऐसी आकृति-निर्माण की सर्व-विख्यात है। साथ ही, हाथी हिन्दू-परम्परा में राज की धन-सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य, सम्पन्नता एवं शक्ति का प्रतीक

माना जाता है—इन वस्तुओं से सम्बद्ध है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि खासमहल अर्थात् राजा का अपना विशेष महल प्राचीन हिन्दू मण्डप है जो केन्द्र में ही बना हुआ है, जिसे हिन्दू राजा अपने निजी कक्ष के रूप में प्रयोग करता था—उसके साथ ही उसका अपना मोती-मन्दिर भी था। ख्वाबगाह और आरामगाह जैसे नाम उत्तरकालीन विदेशी, मुस्लिम अपहरणकर्ताओं और आधिपत्यकर्ताओं द्वारा झूठे रूप में ऊपर से थोपे गए नाम ही हैं।

मुग़ल दरबारों में पधारे यूरोपीय प्रवासियों ने लिखा है कि उन लोगों ने उस हाथीपोल दरवाज़े के दोनों ओर जीवित-आकार हाथियों के बराबर गज-मूर्तियों को देखा है जिसके ऊपर नक्कारखाना, नौबतखाना है। उन गज-प्रतिमाओं के ऊपर गजारोही विद्यमान थे। यह इस बात का द्योतक है कि हिन्दू लालकिले का एक सामान्य लक्षण आरोहियों सहित गज-प्रतिमाएँ था। द्वार-मूँठों के रूप में प्रयुक्त गज-आकृतियाँ अब मात्र खासमहल उपनाम आरामगाह उपनाम बैठक उपनाम ख्वाबगाह के द्वारों पर ही विद्यमान हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक द्वार के केवल एक फलक पर ही एक हाथी की प्रतिमा विद्यमान है। दूसरे फलक पर का हाथी गायब है। साथ ही, हाथियों की सूँडों से लोहे के कुँडे भी लटकते थे। अभी-अभी उल्लेख किए गए दरवाज़े के एक फलक पर विद्यमान एकाकी हाथी को न केवल अपने दूसरे साथी से बिछोड़ दिया गया था अपितु इसकी सूंड में लगा लोहे का कुंडा भी इससे विलग कर दिया गया है। किन्तु उन शाही मण्डपों के कुछ दरवाज़ों पर अपने-अपने आरोहियों और लोहे के कुंडों सहित वे हाथियों के जोड़े विद्यमान हैं जिससे कि दरवाज़े बन्द करते समय उनको पकड़ लिया जाय और खींच लिया जा सके। दीर्घकालीन मुस्लिम आधिपत्य द्वारा भव्य हिन्दू भवनों की हुई घोर क्षति का यह एक अन्य द्योतक है। अतः, किसी भी व्यक्ति को भारतीय संस्कृति में किसी भी प्रकार के मुस्लिम योगदान की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो प्रायश्चित्त, परिकलन और क्षतिपूर्ति से अत्यन्त दूर, विलग, अछूता, समस्त उत्पीड़न, विध्वंस, सर्वनाश और खण्ड-विखण्ड ही रहा है। हम लालकिले में स्थित प्राचीन हिन्दू गज-प्रतिमाओं

के बारे में और अधिक विवरण आगे चलकर प्रस्तुत करेंगे।

हम अब एक अन्य संरचना की ओर चलते हैं। "ख्वाबगाह की पूर्वी दीवार के साथ सटा हुआ, और नदी की ओर बाहर को निकला हुआ एक बुर्ज सहित छज्जा है। यह एक अष्टभुजी कमरा है जिसके ऊपर एक बुर्ज है। इस कमरे की चार दिशाओं में से तीन दिशाएँ ख्वाबगाह के अन्तर्गत हैं, (अन्य) चार संगमरमर की जालियों से ढकी हुई हैं, पाँचवीं के सामने जो कि बुर्ज के मध्य में है, एक छत्रीदार छज्जा है जो अकबर-द्वितीय द्वारा जोड़ा गया था; उसी ने इस छज्जे की दो मेहराबों पर दो शिलालेख लिखवाये थे।"[1]

हम पहले ही भलीभाँति स्पष्ट कर चुके हैं कि किस प्रकार अष्टभुजी-आकृति अवश्यम्भावी रूप में हिन्दू आकृति ही है। जबकि एक अष्टभुज का हिन्दुओं के लिए बहुत अधिक महत्त्व है, उसका महत्त्व मुस्लिमों के लिए कुछ भी नहीं है। इसके विपरीत,यह तो हिन्दू रुझान होने के कारण मध्यकालीन मुस्लिमों के लिए अग्राह्य वस्तु होनी चाहिए थी। किन्तु उन्हें तो इसका कुछ-न-कुछ करना ही था, किसी-न-किसी प्रकार गुजारा करना ही था क्योंकि ऐतिहासिक हिन्दू भवनों में अष्टभुजी, अष्ट-कोणात्मक, अठपहलुआ निर्माण, आकार तो सर्वव्यापी, अवश्यम्भावी अंश है। कोई भी मुस्लिम व्यक्ति अपनी इच्छा से एक अष्टकोणात्मक निर्माण नहीं बनवाएगा, किन्तु यदि उसे यह लूटी गई सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हो जाती थी, तो मध्यकालीन मुस्लिम व्यक्ति को वह स्वीकार्य, सहर्ष ग्राह्य होती थी।

उपर्युक्त अवतरण में ध्यान रखने योग्य बात पश्चिमी विद्वानों का भोलापन है। पश्चिमी विद्वानों ने एक घोर त्रुटि, भयंकर भूल की है, कदाचित् चापलूसीभरे इस्लामी कपटपूर्ण मार्गों से, कि किसी एक मुस्लिम दरबारी और शासक के नाम का यदि कोई शिलालेख मिल गया, तो उसी शिलालेख को, उन्होंने, उस भवन को उस मुस्लिम व्यक्ति द्वारा निर्मित

---

१. कार स्टीफन विरचित 'दिल्ली के पुरातत्त्वीय और स्मारक अवशेष', पृष्ठ २३६

करवाने का प्रमाण मान लिया। यह सबसे शोचनीय और भूलों से भरा हुआ ऐतिहासिक अनुसंधान का प्रकार है। यदि उसी नियम को इसके युक्तियुक्त निष्कर्ष तक पहुँचाया जाय, तो अर्थ यह होगा कि प्रत्येक प्राचीन अथवा आधुनिक भवन को उन निरुद्देश्य भ्रमणार्थियों या भ्रष्ट-कर्ता व्यक्तियों द्वारा सामूहिक रूप में निर्मित मानना पड़ेगा जो उन भवनों पर बिना सोचे-विचारे कुछ-न-कुछ लिख देते हैं। और चूंकि इस प्रकार के लोगों का सम्बन्ध विभिन्न युगों, समाज के स्तरों, विभिन्न राष्ट्रीय-ताओं और विभिन्न वित्तीय साधनों से होगा, इसलिए ऐसे भवन का निर्माण-श्रेय अनमेल, ऊलजलूल भानमती के पिटारों के समूह को दे देने का अर्थ ऐतिहासिक बेहूदगी की पराकाष्ठा होगी। हम एक पृथक् अध्याय में शिलालेखों का वर्णन करते हुए सविस्तार बताएँगे कि दिल्ली के लाल-किले के भीतर अथवा उसके आस-पास एक भी मुस्लिम ने, कहीं कोई निर्माण-कार्य नहीं किया है। इसके विपरीत, उन्होंने तो इसके अनेक भागों को नष्ट किया, इसका समस्त धन लूट लिया, इसके सभी धातुमय फ़व्वारों की टोंटियाँ और शिखर उखाड़ दिए, इसकी संश्लिष्ट और आह्लादकारी जल-व्यवस्था को अवरुद्ध कर दिया और अन्ततोगत्वा इस भव्य किले को वास्तविक रूप में एक शाही मलिनावास ही बना दिया था।

हिन्दू राजचिह्नों को प्रदर्शित करनेवाले भाग से उत्तर की ओर जाने पर अत्युत्तम सफ़ेद संगमरमरी मण्डप आता है, जिसको इस्लामी आधिपत्य की घड़ी में दीवाने-ख़ास कहा जाने लगा था। इस विशाल कमरे में भी एक राजवंशी संगमरमरी मंच पड़ा हुआ दिखाई देता है जिसके ऊपर अति जाज्वल्यमान हिन्दू राजसिंहासन रखा रहता था जो मुस्लिम आक्रमणों की अवधि में लूट-सामग्री के रूप में अन्यत्र वाह्य देशों को ले-जाया गया था। इस विशाल कक्ष की दीवारों पर वह फ़ारसी पंक्ति-द्वय लिखा हुआ है जिसमें कहा गया है कि "यदि इस धरती पर कहीं वास्तविक स्वर्ग है, तो वह यहीं है, यहीं है यहीं है!" हम अगले किसी अध्याय में इस शिलालेख की चर्चा सविस्तार करेंगे।

दीवाने-ख़ास के उत्तर में राजवंशी हिन्दू स्नानघर हैं। यही तथ्य कि

लालकिले में ऐसे राजवंशी स्नानघर हैं जिनमें ठंडे और गर्म पानी को प्रवाहित करने की पूरी-पूरी व्यवस्था थी, सिद्ध करता है कि लालकिले के शेष भागों सहित यह भाग स्पष्टतः प्राचीनकाल के हिन्दुओं द्वारा रूप-रेखांकित था और उन्हीं के स्वामित्व में था। मुस्लिम लोग तो अपनी रेगिस्तानी परम्परा के कारण स्नान करने के अभ्यस्त नहीं हैं। इसके विपरीत, हिन्दू परम्परा प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन, एक या दो बार स्नान करने का प्रावधान, नियमन करती है। अतः राजवंशी स्नानघरों के लिए एक विशिष्ट राजवंशी मण्डप का होना लालकिले का एक हिन्दू भवन होना अन्य प्रमाण है। प्रसंगवश यह भी बता दिया जाय कि इस स्नानघर में एक केसर-कुंड भी है अर्थात् एक वह छोटा कुंड जिसमें जल को विशेष पवित्र, सुगन्धित, रंगीन और आरोग्यकर सद्गुणोंवाला बनाने के लिए थोड़ा केसर मिला दिया जाता था।

इस राजवंशी स्नानघर के पीछे अर्थात् इसके पश्चिम में निकट ही तथाकथित मोती-मस्जिद स्थित है। स्पष्ट है कि यह राजवंशी मोती मन्दिर था जिसमें हिन्दू राजवंशी लोग स्नान करने के तुरन्त बाद, पूजा-अर्चना-उपासना के लिए चले जाते थे। मुस्लिम परम्परा में स्नानों का कोई सम्बन्ध मस्जिद में नमाज पढ़ने से नहीं है। इसलिए इस भवन का राजवंशी स्नानघर के अत्यन्त समीप, सान्निध्य में होना सिद्ध करता है कि यह भवन एक हिन्दू मन्दिर है, जिसको किले के मुस्लिम आधिपत्य-कर्ताओं ने मस्जिद में बदल दिया था।

अन्य प्रमाण यह है कि सूर्य, जिसके अधिकांश हिन्दू राजवंश-वंशज होने का दावा करते हैं, इस तथाकथित मस्जिद की ऊपरी अन्दरूनी छत की दीवारों पर उत्कीर्ण है। यही सूर्य किले के बाहरी फाटक, दरवाजे से लेकर अन्दर के सबसे भीतरी भाग तक पर सर्वत्र द्रष्टव्य है। सूर्यरूपी इस अंगीभूत विशेष लक्षण की यह एकरूपता इस विश्वास को असत्य सिद्ध करती है कि उस तथाकथित मोती-मस्जिद को बादशाह औरंगजेब ने बनवाया था। कोई मुस्लिम मस्जिद हिन्दुओं के सूर्यरूपी अंगीभूत विशेष लक्षण को कभी प्रदर्शित नहीं करेगी।

एक अन्य हिन्दू अंगीभूत विशेष लक्षण भी है। जब कोई व्यक्ति इस

भवन के अन्दर प्रविष्ट होकर प्रवेश-द्वार को भीतरी मेहराब पर उत्कीर्ण कलाकृति को देखने के लिए मुड़ता है, तब उसे संगमरमरी दीवार पर बनी एक तस्तरी में पांच फल दिखाई देते हैं। तश्तरी में रखे हुए पाँच फलों की यह कलाकृति प्रवेश-द्वार को मेहराब के दोनों ओर, दाईं और बाईं दिशा में बनी हुई है। इस प्रकार के खाद्य का किसी इस्लामी मस्जिद में कोई स्थान नहीं है, तथापि यही वस्तुएँ एक हिन्दू मन्दिर में विराजमान आराध्य देव के प्रति श्रद्धायुक्त भेंट का प्रतिनिधित्व करती हैं। ऐसी श्रद्धायुक्त भेंट को 'प्रसादम्' अथवा 'नैवेद्यम्' कहते हैं। दीवार पर उत्कीर्णांशों में 'प्रसादम्' —फलों की विद्यमानता इस बात की द्योतक है कि हिन्दू देवमूर्ति को अपने स्थान से हटा दिया गया है, ताकि भवन को मस्जिद के रूप में इस्लामी उपयोग में निस्संकोच लाया जा सके।

राजवंशी स्नानागारों से उत्तर दिशा में चलने पर, खुला स्थान पार करने पर, व्यक्ति को एक सुंदर हिन्दू राजवंशी मण्डप दिखाई पड़ता है जिसमें सुन्दर मेहराबदार ऊपरी छत व्यक्ति के सम्मुख आती है। जब से इस लालकिले पर इस्लामी आधिपत्य हो गया, तब से इस मण्डप को 'शाहबुर्ज' कहकर पुकारा जाने लगा। यह मण्डप एक तीन-मंजिले बुर्ज पर खड़ा है, बना है। सम्भव है कि इसमें एक अतिरिक्त भू-गर्भीय मंजिल भी हो।

भ्रमणकर्ता व्यक्ति को सलाह दी जाती है कि वह लालकिले की पिछली दीवार के पीछे धूम्रजतु (पक्की) सड़क के साथ-साथ जाए और दुर्ग-प्राचीर के ऊपर शोभायमान बहुत-से भवनों पर दृष्टि डाले। वहाँ से, इन भव्य भवनों की हिन्दू रूप-रेखा अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है। किले के भीतर राजवंशी भवनों के विस्तार का सर्वदर्शी दृश्य दर्शनार्थी के मन में वह अदम्य भावना उत्पन्न कर देगा मानो वह ग्वालियर, इन्दौर, मैसूर, जैसलमेर, बूंदी अथवा बीकानेर-जैसे किसी हिन्दू राजप्रासाद—मन्दिर-संकुल में उपस्थित हो। लालकिले के भवनों में लेशमात्र भी इस्लामी छाया विद्यमान नहीं है। यदि यमुना नदी अब भी लालकिले की पिछली दीवार के साथ बहती होती, जैसा शताब्दियों पूर्व होता था, तो किला और इसकी इमारतें ऐसे ही दिखाई देते जैसेकि सम्पूर्ण भारत के नदी-घाटों पर बने

अन्य हिन्दू भवन दिखाई देते हैं।

अभी-अभी उल्लेख किए गए शाह-बुर्ज से आगे स्थान पर सलीमगढ़ नामक सेतु-शिखर है। चूंकि पूर्वकालिक युग में यमुना नदी लालकिले की दीवारों के साथ-साथ बहती थी, इसलिए इसके हिन्दू निर्माताओं ने नदी के दूसरी ओर एक सेतु-शिखर अर्थात् तिरोधि-दुर्ग-निर्माण की व्यवस्था कर दी थी। नदी-तट के दूसरी ओर बना हुआ वह छोटा-सा किला एक पुल द्वारा किले के साथ जुड़ा हुआ था। वह पुल अब भी मौजूद है, यद्यपि उसके नीचे की नदी की सूखी भूमि अब एक पक्की सड़क के रूप में उपयोग में आ रही है। सेतु-शिखर एक अत्युत्तम कल्पना थी क्योंकि इसके माध्यम से नदी के दूसरी ओर स्थित क्षेत्रों में पार जाने को इच्छुक हिन्दू-सेनाओं को एक अच्छा मार्ग उपलब्ध हो जाता था। सामने मोर्चाबन्दी और पिछवाड़े लालकिला होने से किले की सुरक्षा बहुत अच्छे ढंग पर थी। नदी-तट की दूसरी दिशा में शत्रु-सेना का बढ़ना सेतु-शिखर के भागों में किले से सहायतार्थ मंगाई गई कुमुक द्वारा बराबर रोका जा सकता था। यदि फिर भी शत्रु की ओर से बहुत ज्यादा दबाव पड़ता ही जाय,तो प्रतिरक्षकों द्वारा पुल को उड़ाया जा सकता था।

संयोगवश, यह सेतु-शिखर सलीमगढ़ कहलाता है। इतिहासकार इसका महत्त्व समझ नहीं पाए हैं। सलीम तो शाहजादा जहाँगीर का नाम था, जो बादशाह शाहजहाँ का पिता था। सलीम उस चिश्ती फ़कीर का नाम भी था, जो शाहजहाँ से दो शताब्दी पूर्व हो चुका था। सलीम नाम एक महत्त्वहीन पठान शासक का भी था जो शाहजहाँ से तीन पीढ़ियों पूर्व जीवित था। इसी तथ्य से, कि नदी के पुराने तट के दूसरी ओर (लाल किले का) एक भाग सलीमगढ़ नाम से पुकारा जाता है,इतिहासकारों को इस तथ्य की ओर सावधान, सचेत हो जाना चाहिए था कि इस लालकिले का निर्माणादेश शाहजहाँ से पीढ़ियों-पूर्व दिया जा चुका था। सामान्य रूप में प्रस्तुत किये जानेवाला यह मनघड़न्त स्पष्टीकरण कि हुमायूं की सम्भावित प्रगति को रोकने के लिए सलीम शाह सूर ने नदी के पार दूसरे तट पर इस छोटे दुर्ग का निर्माण किया था, न केवल झूठी ऐतिहासिक कथा है, अपितु युद्ध-नीति की दृष्टि से भी अयुक्तियुक्त है।

नदी के इस तट पर स्थित शासक किसी शक्तिशाली शत्रु आक्रमक के लिए एक पुल क्यों तैयार करके देगा ? वह तो तथ्यतः नदी को एक प्राकृतिक खाई के रूप में प्रयोग में लाने के लिए किसी भी विद्यमान पुल को तुरन्त नष्ट कर देगा। इस प्रकार भाव यह है कि सलीमगढ़ नाम शाहजहाँ से कई पीढ़ियों-पूर्व से ही किले के एक भाग के साथ जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार किले के अन्य भागों पर इस्लामी नाम थोपे गए हैं, उसी प्रकार यह सलीम गढ़ नाम भी एक पूर्वकालिक हिन्दू नाम पर थोपा हुआ नाम ही है। 'गढ़' प्रत्यय विशिष्ट हिन्दू राजपूती शब्दावली है जो इस बात की स्पष्ट द्योतक है कि सलीमगढ़ शब्दावली तो किले के उस भाग के हिन्दू नाम के स्थान पर प्रयोग करने के लिए घड़ ली गई थी। कुछ भी हो, सलीमगढ़ शब्दावली, जो शाहजहाँ से पीढ़ियों-पूर्व जीवित व्यक्तियों की ओर इंगित करती है, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जिस किले का निर्माण-श्रेय, भूल करनेवाले आंग्ल-मुस्लिम वर्णनों ने, शाहजहाँ को दिया है, वह किला शाहजहाँ से शताब्दियों-पूर्व विद्यमान था। हम इस बात के सम्बन्ध में सविस्तार विवेचन आगे करेंगे।

शाहबुर्ज से पश्चिम की ओर मुड़ने पर दो हिन्दू राजवंशी मण्डप आते हैं जो अपने प्राचीन संस्कृत नामों से अभी भी जाने जाते हैं। जन-प्रचलित शब्दावली में उनको 'सावन' और 'भादों' कहते हैं। ये दोनों शब्द 'श्रावण' और 'भाद्रपद' नामक संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश हैं। ये महीने मानसून की मूसलाधार वर्षाऋतु के द्योतक हैं जब मोर नृत्य करने लगते हैं और झुलसी हुई धरती सर्वत्र हरियाली बिखेर देती है। यदि शाहजहाँ ने ही किले का निर्माण किया होता, तो रेगिस्तानी अरबी परम्पराओं में पलेहुए इस्लामी दरबार ने इन दो अत्युत्तम मण्डपों के लिए अत्यधिक तकनीकी संस्कृत नाम कभी न रखे होते। जिस प्रकार सलीमगढ़ नाम से पृथक् आधार के कारण, उसी प्रकार इस परिस्थिति ने भी पर्याप्त रूप में इतिहासकारों को यह सन्देह उत्पन्न करना चाहिए था कि दिल्ली में शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने का दावा असत्य था, झूठा था।

एक विशाल नहर उन दोनों मण्डपों को जोड़ती थी। उस नहर के बीच में एक अन्य नहर थी। वह नहर अब पूरी तरह सूख गई है और मिट्टी

से भर गई है। उसकी खुदाई करने पर अनेकानेक महत्त्वपूर्ण अवशेष प्रकट हो जाने की सम्भावना है।

किले के हिन्दू निर्माताओं ने अत्यन्त दूरदर्शितापूर्वक किले के परकोटे के भीतर की ओर रक्षकसेना के सैनिकों को स्थित रखने के लिए सैकड़ों कमरों की व्यवस्था की थी। इनकी खिड़कियाँ अभी भी किले की पिछली सीमा-प्राचीर के साथ खुलती हुई देखी जा सकती हैं। वे अभी भी सरकारी कर्मचारीवृन्दों के पास हैं और उचित सम्पर्क द्वारा उनको देखा जा सकता है।

किन्तु किले के भीतर के अन्य अनेक राजवंशी भाग हिन्दू लालकिले पर इस्लामी और ब्रिटिश आधिपत्य की शताब्दियों में नष्ट हो गए। इसके भीतर का भू-भाग इतना सुनसान, एकाकी और खाली नहीं था जितना आज दिखाई पड़ता है। वे भाग अद्वितीय मण्डपों, हरे-भरे बाग-बगीचों और कलकल निनाद करती जल-प्रवाही व्यवस्थाओं से भरे पड़े थे, ओत-प्रोत थे। वहाँ एक मोतीमहल और एक हीरामहल था, और कदाचित् अन्य अनेक महल भी थे। हमको इनमें से कुछ के वर्णन मिल जाते हैं। वर्तमान एकाकी मण्डपों के बीच खाली पड़े सुनसान, वीरान स्थान उन हिन्दू भवनों की विशाल संख्या के द्योतक हैं जो शताब्दियों के काल-खंड में लालकिले के भीतर नष्ट कर दिए गए। अतः भ्रमणार्थी, दर्शक व्यक्ति को यह विश्वास मन में लेकर वापस नहीं आना चाहिए कि उसने किले के भीतर बने हुए वे सभी भवन, स्थल आदि देख लिये हैं जो किले के मूल-निर्माण के समय ही बन गए थे। अब तक बचे हुए ध्वंसावशेष तो किले के भीतर विपुल संख्या में पूर्वकाल में प्राप्य उस स्थापत्य-कलात्मक धन और सम्पन्न साज-सज्जा-सामग्री का नमूना-मात्र हैं जो किला विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों के हाथों में जाने के बाद नष्ट कर दी गई। इसके अनेक मण्डपों की विशदता, विशालता का अनुमान तो आगरा-स्थित प्राचीन हिन्दू लालकिले में अभी भी विद्यमान मण्डपों और भागों की शृंखला से लगाया जा सकता है, यद्यपि वहाँ भी आंग्ल-इस्लामी आधिपत्य का विनाश-कार्य अछूता नहीं रहा है।

नगर की ओर खुलनेवाले दो भव्य द्वारों के अतिरिक्त भी किले के

पाँच अन्य द्वार थे जो नदी-मुख की ओर किले के पिछवाड़े खुलते थे "जिनमें से तीन (ईंटों और चूने से) बंद कर दिए गए हैं। शेष दो में से उत्तर दिशा वाला दरवाज़ा सलीमगढ़ की ओर जानेवाले पुल की तरफ़ खुलता है और 'पूर्वी दरवाज़े' के नाम से पुकारे जानेवाला दरवाज़ा, जो मध्यभाग में है, मुसम्मन बुर्ज में है।"[1]

यह पूर्वी द्वार नदी-दरवाज़ा भी कहलाता है और खासमहल उपनाम आरामगाह, उपनाम ख्वाबगाह के नीचे से नदी-मुख की ओर जाता है। इस भू-गर्भीय मार्ग के प्रवेश को अवरुद्ध करनेवाले विशाल आधुनिक लौह-द्वार को खोलकर, चौड़ी लाल पत्थर की सीढ़ियों को उतरकर किले के पिछवाड़े बाहर जाया जा सकता है। यह बात खोज करने की है कि क्या वहाँ कुछ प्राचीन भवन-भाग आदि भी हैं अथवा नहीं। संभव है कि उनको सील-बंद कर दिया गया हो। यदि वहाँ ये कमरे हों, तो हो सकता है कि उनमें किसी क्रूर मुस्लिम सुल्तान या बादशाह के आदेश पर दीवारों में चुनवाए गए व्यक्तियों के अनोखे नर-कंकाल या खजाने और हिन्दू मूर्तियाँ तथा शिलालेख संगृहीत या दबाए पड़े हों।

पिछवाड़े के भाग में बने इन छोटे-छोटे द्वारों के सम्बन्ध में एक रोचक विवरण यह है—कहा जाता है कि दिल्ली के शहनशाह-बादशाह के रूप में लालकिले में सर्वप्रथम प्रवेश करने के लिए शाहजहाँ ने इसी नदी-द्वार का उपयोग किया—वह इसी पिछले दरवाज़े से अन्दर आया था। यदि उसने सचमुच किला बनवाया था, तो चोरों-जैसे चुपके से पिछले दरवाज़े से प्रविष्ट होने की क्या ज़रूरत थी? उसे तो पूरी शान-शौकत के साथ, शाही तरीके से शहर की तरफ से 'चाँदनी-चौक-वाले दरवाज़े—लाहौर दरवाज़े की तरफ़ से आना चाहिए था। यही तथ्य कि वह किले में पिछले द्वार से प्रविष्ट हुआ, स्पष्ट दर्शाता है कि किले के सामनेवाले दरवाज़े से प्रवेश करने के समय उसे हिन्दू-नागरिकों की प्रतिक्रिया की पूरी-पूरी आशंका थी। उन लोगों ने इसको अपना घोर अपमान ही समझा होगा कि उनके अपने पूर्वज हिन्दू राजवंशियों द्वारा पवित्र किए गए इस हिन्दू लालकिले

१. कीन की निर्देशिका, पृष्ठ १२१

को एक विदेशी मुग़ल अपने आधिपत्य में ले ले। हम एक पृथक् अध्याय में आगे इस बात पर विचार करेंगे।

नदी-मुख के समानान्तर किले की पिछली दीवार में तीन बुर्ज हैं। उत्तरी सिरे पर शाहबुर्ज है। बीच में मुसम्मन बुर्ज है। यह अष्टकोणात्मक है। दक्षिणी छोर पर असद बुर्ज है।

सलीमगढ़ के समीप यह शाहबुर्ज ही था जहाँ से "शाह आलम का सबसे बड़ा बेटा जवान बख्त बच गया था और वारेन हेस्टिंग्ज़ की सहायता लेने के लिए सन् १७८४ ई० में लखनऊ भाग गया।"[1]

१. कीन की निर्देशिका, पृष्ठ १२१

अध्याय ५

किले में विद्यमान हिन्दू लक्षण

चूँकि अब पाठक को किले के मुख्य भागों से भलीभाँति परिचित करा दिया गया है, अतः हम इस अध्याय में यह बात स्पष्ट करना चाहते हैं कि किले में विद्यमान सभी लक्षण पूर्णतः हिन्दुओं के ही हैं। यदि शाहजहाँ ने सन् १६३८-४८ ई० में इस किले को बनवाया होता और उसके इस्लामी उत्तराधिकारी २०० वर्ष तक इसमें निवास करते रहे, तब तो इसमें हिन्दू-सम्बन्धी कुछ भी नहीं रहना चाहिए था। इसके विपरीत, हम जैसा अभी देखेंगे, कुछ भागों के ऊपर से जल्दी-जल्दी थोपे गए नामों के अतिरिक्त, किले में लेशमात्र वस्तु भी तो इस्लामी नहीं है।

इस्लामी आधिपत्य की शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने पर भी किले में हिन्दू लक्षण विद्यमान रहना उस सुदृढ़ हिन्दू परम्परा का सुनिश्चित संकेतक है जो मुस्लिम हमलों से पूर्व शताब्दियों तक लालकिले में पूरी तरह खप गए थे, आत्मसात् हो गए थे।

किले का स्वयं रंग ही विचार कीजिए। यह लाल है। वह तो हिन्दुओं के लिए अति पवित्र है। यही रक्त वर्ण, भगवा रंग उनके ध्वज का भी है। हिन्दुस्तान पर आक्रमण करनेवाले मुस्लिमों के लिए लाल रंग तो सदैव क्रोधावेश उत्पन्न करने का कारण रहा है; वे इससे नाक-भौं सिकोड़ते हैं। उनका रंग हरा है और इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुस्लिम आक्रमणकारी हिन्दू भगवा ध्वज को देखते ही हरे हो जाया

करते थे।

किले के लगभग ८० बुर्ज हैं। वे सब-के-सब अष्टकोणात्मक रचनाएँ हैं। अष्टकोणात्मक रचना ऐसी विशिष्ट हिन्दू-आकृति है जिसका सम्बन्ध हिन्दू राजवंशों और देवताओं से है। उनपर आच्छादित ८० छत्र भी अष्टकोणात्मक हैं। उनके गुम्बदी-शीर्षों पर, शिखरों के नीचे, पुष्प-छत्र बने हुए हैं। पुष्पाच्छादित गुम्बद केवल हिन्दुओं की रचनाएँ ही हैं। मुस्लिम गुम्बदों के ऊपर किसी भी प्रकार के फूल नहीं होते हैं। इसके दृष्टान्त के रूप में हम पाठकों का ध्यान दिल्ली की चाणक्यपुरी नामक बस्ती में बने पाकिस्तानी दूतावास के गुम्बदों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। उनका सपाट, चमकदार बाह्य भाग होता है जैसीकि एक मुस्लिम धर्मोपदेशक की चिकनी, चमकदार खोपड़ी होती है। इसके विपरीत, हिन्दू सिरों पर बालों का एक गुच्छा कपाल पर होता था। बालों के गुच्छे के मध्य में एक लम्बी चोटी होती थी जिसे शिखा कहते हैं। हिन्दू गुम्बद भी हिन्दू-खोपड़ियों के समान ही होते थे। भवन का गुम्बददार शीर्ष इसका सिर है। इसका पुष्पछत्र बालों का गोलाकार झुण्ड है और सबसे ऊपर लगा हुआ शिखर शिखा के समान है।

प्राचीन अथवा मध्यकालीन हिन्दू शिल्पकला का अध्ययन करनेवालों को ऊपर उल्लेख की गयी विशिष्टताओं का सदैव ही ध्यान रखना चाहिए।

मुसम्मन बुर्ज और किले के अन्दर के अन्य बुर्जों पर भी गुम्बदों के ऊपर पुष्प-छत्र बने हुए हैं। वे फाँकदार गुम्बद भी हैं। देशान्तर-विषयक रेखाओं के समान ही, ये फाँके गुम्बद को अनेक लम्बमान भागों में विभाजित कर देती हैं। ऐसे गुम्बद सारे भारत के हिन्दू-मन्दिरों और राजमहलों में विद्यमान हैं, सहज लक्षण हैं। इन गुम्बदों को उन चिर स्मरणातीत हिन्दू नगरों में देखा जा सकता है जहाँ स्मरणातीत युगों से हिन्दू नरेशों का शासन ही सदैव चलता रहा है।

सभी अन्य राजवंशी भागों की ऊपरी छतें सब-की-सब सपाट हैं। न तो उनमें मुस्लिम गुम्बदें हैं, और न ही मीनारें हैं। इन भागों की सपाट छतों के चारों कोनों पर हिन्दू राजपूती प्रकार की छतरियाँ हैं।

चतुष्कोणात्मक छतरियोंवाली ऐसी सपाट छतें सभी प्राचीन हिन्दू राजवंशी भागों में सहज विद्यमान हैं जो आज भी सम्पूर्ण राजस्थान में देखी जा सकती हैं।

दीवाने-आम के स्तम्भ और इसकी अनेक मेहराबों को सहारा देनेवाली मोटी दीवारें हिन्दू आकार-प्रकार और समानुपातिक अंशों की हैं। इसी प्रकार के मेहराबदार बड़े-बड़े कमरे सारे भारत में कहीं भी, किसी भी हिन्दू महाराजा के राजमहल में आज भी देखे जा सकते हैं। कुछ टेढ़े-मेढ़े हिन्दू टेकों पर टिके हुए आगे निकले हुए छज्जे भी एक अन्य विशिष्ट लक्षण हैं।

रंगमहल, छोटा रंगमहल, सान-सम्मान (जिसे ग़लती से मुसम्मन कहते हैं) बुर्ज, श्रावण और भाद्रपद महल, मोती महल (जिसे किले के मात्र विदेशी आधिपत्यकर्त्ताओं द्वारा नष्ट कर दिया गया है), हीरामहल (जिसे विदेशी आक्रमणकारी, अपहरणकर्त्ताओं द्वारा ध्वस्त कर दिया गया है) आदि भागों के नाम सब-के-सब हिन्दू हैं।

हिन्दुस्थान के लाहौर और दिल्ली जैसे नगरों के नाम पर रखे गये और झूलती हुई हिन्दू गज-प्रतिमाओं के नाम पर रखे गए द्वार हाथी-पोल दरवाजों के नाम भी, सब-के-सब हिन्दू हैं।

इसी प्रकार की गज-प्रतिमाएँ, अपने आरोहियों सहित, खासमहल उपनाम आरामगाह उपनाम ख्वाबगाह नाम के राजमहल के अन्दर द्वार-मूँठों के रूप में उपयोग में आ रही हैं। ये प्रतिमाएँ हिन्दू हैं। मूर्ति-भंजक इस्लामी परम्परा ने उन प्रतिमाओं का निर्माण-आदेश कभी भी नहीं दिया होगा। अतः, पहले हाथीपोल के दरवाजे पर खड़े पत्थर के विशालाकार हाथियों के साथ ये गज-प्रतिमाएँ भी किले के हिन्दू-मूलक होने का अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रबल प्रमाण हैं। तथ्य तो यह है कि हाथीपोल दरवाजे पर उन विशाल हाथी-प्रतिमाओं की अनुपस्थिति इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि यद्यपि किले के हिन्दू निर्माताओं ने उन प्रतिमाओं को वहाँ स्थापित किया था, तथापि किले पर बाद में कब्जा करने वाले मुस्लिमों ने उनको गिरा दिया था। यदि शाहजहाँ ने, जो एक मुस्लिम बादशाह था, उन प्रतिमाओं को स्थापित किया था, तो कोई ऐसा कारण नहीं था

जिसकी वजह से उसके किसी उत्तराधिकारी ने उसको गिरा दिया होगा।

किले का स्वयं निर्माण-स्थल ही हिन्दू है क्योंकि पिछवाड़े नदी-मुख पूर्व दिशा में है। हिन्दुओं का यह नैसर्गिक स्वभाव सर्वज्ञात है कि वे नदी की जल-धारा में घुटनों तक खड़े होकर, पूर्व की ओर मुख करके, उदय होते हुए सूर्य की पूजा करते हैं और उसको अर्घ्य चढ़ाते हैं। चूँकि मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व इस किले में निवास करते हुए हिन्दू राजाओं की अनेकानेक पीढ़ियों ने इस सूर्य-पूजा की पद्धति का पालन किया था, इसलिए नदी का वह भाग अभी भी राजघाट के नाम से पुकारा जाता है।

नदी की जलधारा किले की दीवार से अब कुछ फ़र्लांग दूर चली गई है किन्तु प्राचीन काल से प्रचलित राजघाट शब्दावली इस बात की द्योतक है कि कुछ घाट की सीढ़ियों और चबूतरों से ही लालकिले की दीवार से नदी-धारा तक पहुँचा जाता होगा, जब नदी किले के पास ही प्रवाहित हुआ करती थी। अतः, किले की पिछली दीवार के साथ-साथ पुरातत्त्वीय खुदाई अवश्य की जानी चाहिए। किले से पृथक् किये गए बहुत सारे स्मृति-चिह्न वहाँ दबे हुए मिल जाने की सम्भावना है। पिछवाड़े के दरवाज़ों में से अधिकांश तो आधे भाग तक धरती में धँसे हुए हैं। यह आवश्यक है कि उनको, कम-से-कम उनके निचले आधार तक को, अवरुद्ध करनेवाली मिट्टी और ईंट-चूने के अंधकार से मुक्त किया जाय।

यदि किले में शाहजहाँ और उसके बाद के मुगल लोगों ने ही निवास किया होता, तो नदी-तट का प्रसार-भाग बादशाह-घाट कहलाया होता न कि राजघाट। कदाचित् यह बात कभी भी सम्भव नहीं थी क्योंकि बादशाहों के बारे में ज्ञात था कि वे स्नान नहीं करते थे, निश्चित है कि नदी-तट पर तो कभी करते ही नहीं थे। इसलिए राजघाट नाम इस बात का प्रत्यक्ष, प्रबल प्रमाण है कि लालकिला आक्रमणकारी इस्लाम के हाथों में जाने से पूर्व, हिन्दू राजा लोग ही इनमें निवास करते थे।

हिन्दुओं का विशेष अंगीभूत लक्षण सूर्य-चिह्न सम्पूर्ण किले पर प्रमुख रूप में विद्यमान है। इसको मेहराबदार प्रवेशद्वारों के स्कन्धों और तथा-कथित मोती-मस्जिद की भीतरी दीवारों पर बहुल संख्या में देखा जा सकता है। खासमहल में, जहाँ न्याय-तुला बनी हुई है, एक मध्य दीवार

पर, एक बहुत बड़ा सूर्य और उसके अनेक छोटे-छोटे प्रतिबिम्ब बने हुए हैं। अधिकांश हिन्दू राजवंश सूर्य-वंशी कहलाते हैं—अर्थात् सूर्य से अपने वंशों की उत्पत्ति मानते हैं। सूर्य अभी भी ईरान (फ़ारस) के राजचिह्न का एक भाग है, और रूस के अनेक भागों में भी राज-चिह्न था। इससे सिन्धु नदी के पार भी हिन्दू-दिग्विजयों के प्रमाण मिलते हैं।

लालकिले की प्रत्येक मेहराब के दाएँ-बाएँ स्कन्धों पर चाहे वह मेहराब किसी छोटे आले पर हो अथवा किसी भव्य प्रदेश-दीवार पर हो, दो सूर्यमुखी पुष्प बने हुए हैं। यह एक अतिसुनिश्चित हिन्दू लक्षण है। पुरातन हिन्दू-शैली में बने घरों व हिन्दू-मन्दिरों की मेहराबों के दोनों ओर ये पुष्प सुशोभित अवश्य ही दृष्टिगोचर होते हैं।

पुरानी दिल्ली नामक नगर का मुख्य राजमार्ग चांदनी-चौक कहलाता है। यह किले के लाहौर दरवाजे से प्रारम्भ होता है। यह राजमार्ग मुगल काल में सामाजिक जीवन की धुरी रहा है, और उससे पहले भी उस अतीत काल से यही भाग नगर की धुरी रहा है जब भारत के प्राचीन हिन्दू शासकों द्वारा पुरानी दिल्ली की नींव डाली गई थी। वह चांदनी-चौक आज भी मुख्य रूप में हिन्दुओं की ही बस्ती है, जिनमें मुख्यतः धनी व्यापारी वर्ग है। यदि शाहजहाँ ने लालकिले का निर्माण किया होता और पुरानी दिल्ली को बसाया होता, तो उसने शान-शौकतवाले चाँदनी चौक को मुख्यतः हिन्दुओं से सम्पन्न होने की अनुमति न दी होती। दोनों ओर के भूखंड एवं भवन शाहजहाँ के अपने निकट सम्बन्धियों और उसके कर्मचारियों—दरबारियों को ही बाँटे गए होते। अतः, यदि लालकिले अथवा पुरानी दिल्ली का निर्माण शाहजहाँ ने किया होता, तो हमें इस क्षेत्र में ईरानी, तुर्क, अरब और अबीसियन लोग ही बसे हुए मिलते। शाहजहाँ ने अपने ही दरवाजे पर उस हिन्दू समुदाय को न बिठाया होता, जिससे वह घोर घृणा करता था और जिसको नेस्तनाबूद करने, समूल नष्ट करने के लिए वह और उसके अन्धे सहायक, उत्तराधिकारी सदैव कार्यरत रहे।

तथ्य तो यही है कि चूंकि किले को जानेवाला मुख्य राजमार्ग हिन्दू लोगों से भरा पड़ा था, इसी कारणवश शाहजहाँ किले के अन्दर

चुपके से पिछले दरवाजे से प्रविष्ट हुआ था। उसे डर था कि वह यदि सामनेवाले द्वार से प्रविष्ट होता, तो संभव है कि उसकी जान के लिए कोई प्रहार कर देता। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा कारण नहीं कि वह लालकिले में पिछले द्वार से प्रविष्ट होता।

बाह्य साक्ष्य का एक अन्य महत्त्वपूर्ण अंश निकटवर्ती मंदिरों द्वारा प्राप्त होता है। लाहौर दरवाजे के सामने, खाई के साथवाले हरे-भरे भू-भाग में हिन्दू-मन्दिरों का समूह है। लाहौर और दिल्ली-दरवाजों के बीच में एक छोटी-सी पहाड़ी पर एक मुस्लिम कब्र है। हिन्दू किले के विरुद्ध मुस्लिम आक्रमणों में से एक का यह स्मृति-चिह्न है। हिन्दू-स्थान में ऐतिहासिक भवनों के चारों ओर, आसपास, बिखरी पड़ी कब्रें साधारणतः उन मुस्लिम आक्रमणकारियों की हैं जो प्रत्यक्ष युद्ध में हिन्दू प्रतिरक्षकों द्वारा मारे गए थे।

तथ्य तो यह है कि वह पहाड़ी भूमि ही प्राचीन हिन्दू प्रतिरक्षा प्रणाली के अन्तर्गत व्यवस्था का एक साक्ष्य है। मध्यकालीन युग में बन्दूकों के आविष्कार से पूर्व, युद्ध की एक विशेष प्रकार की मशीनें हुआ करती थीं जो अपक्षेपी या पाषाण-क्षेपक-यंत्र कहलाती थीं। आक्रमण करनेवाले लोग किले के भीतर बड़े-बड़े पत्थर फेंकने के लिए उनका उपयोग करते थे। इन यन्त्रों को चलाकर किले के इतने निकट न ला सकें कि किले पर पत्थर फेंके जा सकें, इसलिए सामान्यतः हिन्दू किलों और राजमहलों के चारों ओर अनेक ऊंची पहाड़ियाँ व चट्टानें हुआ करती थीं। आगरा में बने हुए हिन्दू ताजमहल के चारों ओर भी ऐसी पहाड़ियाँ थीं और ऐसी ही पहाड़ियाँ लालकिले के चारों ओर फैले हुए मैदान में भी देखी जा सकती है।

किले के लाहौर-दरवाजे से 'चाँदनी-चौक' के साथ-साथ चलने पर सबसे पहला देवालय लाल जैन-मन्दिर है। इससे आगे चलने पर हिन्दू गौरीशंकर मन्दिर है। लालकिले पर अधिकार करनेवाले, शाहजहाँ से पूर्व भी और उसके बाद भी हुए मुस्लिम बादशाहों को ये दोनों उपासनालय अस्वीकार्य, घृणित थे। जिस किले के बारे में कहा जाता है कि शाहजहाँ ने बनवाया, यदि उसने इस किले को वास्तव में बनवाया होता तो वह

इन दोनों ग़ैर-मुस्लिम देवालयों को कभी भी किले के इतने निकट न रहने देता। उसने तो इनको निश्चित ही गिरवा दिया होता। किन्तु चूंकि वह अपहारक के रूप में आया था, इसलिए उसे समझौता करना पड़ा, ग़म खाना पड़ा। कोई बड़ी बग़ावत न हो जाय, इसलिए उसे अपनी हिन्दू प्रजा की विशाल बहुसंख्या को नाराज़ करने की हिम्मत न पड़ी। वास्तविकता तो यही है कि हिन्दुओं और उनकी घृणित मूर्तियों की वक्रदृष्टि से बचने तथा उनको अभिवादन आदि करने से बचने के लिए ही वह किले में पिछली ओर बने द्वार से अन्दर आया था।

(जैनों सहित) हिन्दू मन्दिरों में पूजा के समय घंटे-घड़ियाल, शंख, नगाड़े और अन्य वाद्य-यन्त्र अवश्य बजते हैं। यदि शाहजहाँ ने क़िले का निर्माण कराया होता, तो उसने उन 'काफ़िराना' मन्दिरों को वहाँ कभी न बने रहने दिया होता।

कई बार यह तर्क भी दिया जाता है कि उन मन्दिरों का बाह्य-भाग आधुनिक होने का अर्थ यह है कि वे मन्दिर शाहजहाँ के काल में थे ही नहीं। ऐतिहासिक अनुसंधान की यह एक सामान्य न्यूनता है। किसी देवस्थान का भवन नया हो सकता है, फिर भी उसका अस्तित्व स्मरणातीत युग का हो सकता है। सोमनाथ मन्दिर का विचार सम्मुख है, प्रत्यक्ष है। इसे मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा बार-बार ध्वस्त किया गया था, किन्तु हिन्दू पुनरुत्थान की भावना ने उसका पुनः-पुनः जीर्णोद्धार किया, पुनर्निर्माण कराया। विश्वभर में बने हिन्दू मन्दिरों की यही कहानी है, यथा अज़रबेजान और बग़दाद के अग्निमन्दिर और दिल्ली में चाँदनी-चौक के लाल मन्दिर एवं गौरीशंकर मन्दिर। वे सब स्मरणातीत प्राचीनकाल के बने हुए हैं किन्तु विदेशी मूर्तिभंजक आक्रमणकारियों के मूर्तिभंजक आक्रोश के भाजन होने के कारण उनका दुर्भाग्य था कि वे बार-बार ध्वस्त किये गए। हर बार उनके हीरे-जवाहरात और सोने-चाँदी की कारीगरी को लूटा गया, तथा उनके अद्वितीय, अनुपम उत्कीर्ण, भव्य, उच्च बाह्य भागों को मुस्लिम हथौड़ों से तोड़ डाला गया था। तथापि हिन्दू-धैर्य और चरित्रबल ने उनको ठीक ही, राष्ट्रीय मान और अस्तित्व के बिन्दु समझकर उन्हीं ध्वस्त स्थलों पर पुनः खड़ा कर दिया।

इसी प्रकार, लाल-मन्दिर और गौरीशंकर मन्दिर अपने पुराने स्थानों पर नये रूपों में पुनः खड़े होकर विदेशी काफिरों द्वारा बारम्बार विध्वंस का और हिन्दुस्तान के राष्ट्रवादियों द्वारा पुनर्निर्माण का इतिहास प्रत्यक्ष दर्शा रहे हैं।

जिसे आज पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद कहा जाता है, और सामान्यतः शाहजहाँ द्वारा निर्मित विश्वास किया जाता है, वह लालकिले से मील-भर से कम दूरी पर स्थित है। यदि शाहजहाँ ने किला सचमुच ही बनवाया होता, तो उसने इस जामा मस्जिद को भी किले के निकट ही अर्थात् उस स्थान पर बनवाया होता जहाँ आज लाल मन्दिर और गौरी-शंकर मन्दिर बने हुए हैं।

किन्तु यहाँ हम चूँकि एक विशेष विषय पर विवेचन कर रहे हैं, अतः हम पाठक को बता देना चाहते हैं कि शाहजहाँ द्वारा इस कथाकथित जामामस्जिद को बनवाए जाने की जनप्रसिद्ध धारणा भी इतनी ही बेहूदा और ग़ैर ऐतिहासिक है जितनी उसके द्वारा किले को निर्मित करवाने की बात है।

मुस्लिम आक्रमणकारी तैमूरलंग ने सन् १३९८ ई० के क्रिसमस-दिनों में दिल्ली पर आक्रमण किया था। कहने का अर्थ यह है कि वह दिल्लीमें शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने से, लगभग २३० वर्ष पूर्व था। उसने अपने स्मृतिग्रंथ में लिखा है : "रविवार के दिन, यह बात मेरी जानकारी में लायी गई कि काफ़िर हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद में, अपने साथ शस्त्रास्त्र और खाद्य-सामग्री लेकर, जमा हो गए थे, और अपनी प्रतिरक्षा करने की तैयारी कर रहे थे। मेरे कुछ आदमियों पर, जो उस ओर अपने काम पर गए हुए थे, आक्रमण किया गया और उनको मार दिया गया। मैंने अमीर शाह मलिक और अली सुलतान तवाची को तुरन्त आदेश दिया कि वे अपने साथ सैनिक-दल ले जाएँ और काफ़िरों का सफ़ाया कर दें तथा उनका काम तमाम कर दिया जाय। पुरानी दिल्ली को फिर लूट लिया गया।"[1]

---

१. ईलियट और डासन : मलफ़ूजाते-तैमूरी उपनाम तुजके-तैमूर अर्थात् तैमूर का आत्मचरित में 'पुरानी दिल्ली की लूट' शीर्षक अध्याय में तैमूरलंग का पर्यवेक्षण।

इसने शाहजहाँ की कथा का आद्योपान्त भंडाफोड़ कर दिया है। पुरानी दिल्ली और इसकी तथाकथित जामा-मस्जिद शाहजहाँ से २३० वर्ष पहले भी विद्यमान थी। इसलिए इतने वर्षों तक इस बात की बराबर घोषणा करते रहने की, इतिहासकारों ने गलती की के कि शाहजहाँ ने दिल्ली नगर की स्थापना की और इसकी तथाकथित जामा-मस्जिद एवं लालकिले का निर्माण भी किया था। इसके साथ-साथ तैमूरलंग की साक्षी हमारे इस विश्वास को बल प्रदान करती है कि पुराने किले के समान ही पुरानी दिल्ली भी पाण्डवकालीन नगरी है।

तैमूरलंग की साक्षी से निष्पन्न होनेवाला एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि तथाकथित जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर है। वह स्पष्ट कहता है कि 'काफ़िर हिन्दू लोग' अपनी रक्षा करने के लिए 'ख़ुदा के घर' में जमा हो गए थे। इसका स्पष्ट निहित-भाव यह है कि आक्रमणकारी जिसे, हठपूर्वक, जामा-मस्जिद कह रहा था, वह एक हिन्दू मन्दिर था। साथ ही, स्वयं इस्लामी भाषा में भी, जामा-मस्जिद का अर्थ एक बड़ा, मुख्य मन्दिर ही है। अतः पाठकों को इस शब्दावली द्वारा, भविष्य में कभी भी विचलित, पथभ्रष्ट नहीं होना चाहिए। इस्लामी भाषा में मस्जिद का अर्थ मन्दिर ही होता है। इसके साथ-साथ, अपनी प्रतिरक्षा अपने बचाव के लिए हिन्दुओं का उस भवन में जमा होना सिद्ध करता है कि पुरानी दिल्ली की वह जामा-मस्जिद तथ्यतः पुरानी दिल्ली का मुख्य मन्दिर है।

तैमूरलंग की साक्षी पर यह उचित ही होगा कि तथाकथित जामा मस्जिद की असाधारण ऊँची पीठिका के अन्दर वास्तुकलात्मक जाँच-पड़ताल और खुदाई की जाय। सम्भव है कि वहाँ नीचे हिन्दू देव-प्रतिमाएँ दबी पड़ी हों। हो सकता है कि तथाकथित मस्जिद के फ़र्श के नीचे हिन्दू देव-प्रतिमाओं से भरी हुई एक पूरी भू-गर्भीय मंज़िल ही हो।

अभी कुछ समय पूर्व देखा गया था कि इसकी कुछ मीनारों में दरारें हो गई थीं और वे हिलने लगी थीं। यह तभी सम्भव था कि मुस्लिम विजय और आधिपत्य के बाद ही वे मीनारें हिन्दू मन्दिर में जोड़ दी गयी हों।

दो अन्य हिन्दू लक्षण जो स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं वे तथाकथित मस्जिद के ऊपर सीधे शिखर-दण्ड और पुष्प-आच्छादित संगमरमरी गुम्बद तथा छत्र हैं। मूल इस्लामी मस्जिदों में सीधे, हिन्दुओं के सुनहरी शिखर नहीं होते। इस्लामी शिखरों का अन्त एक अर्धचन्द्र में होता है जिसके शीर्षबिन्दु पर एक तारक बना होता है। भारत में उन सभी ऐतिहासिक भवनों के शिखर, जिनका निर्माणश्रेय सामान्यतः मुस्लिमों को दिया जाता है, सब-के-सब, हिन्दू नमूने के सीधे शिखर होते हैं। अतः, इतिहास और वास्तुकला के विद्यार्थियों तथा ऐतिहासिक स्थलों के दर्शकों को हिन्दू भवन पहचानने का एक अत्यन्त स्पष्ट, दर्शनीय लक्षण प्राप्त हो गया है। यदि उन भवनों के ऊपर पुष्प-आच्छादित गुम्बद अथवा डण्डी है जो यह बताती हो कि इसके चारों ओर का पुष्प-पत्र नमूना तोड़ दिया गया है, और यदि भवन के ऊपर सीधा शिखर विद्यमान हो, तो यह एक हिन्दू भवन है, तथा इसके मुस्लिम-मूल कथाओं की चापलूसी मनघड़न्त बातें घोषित करके तुरन्त अस्वीकार कर देना चाहिए।

तैमूरलंग की टिप्पणियों की सत्यता परखने के लिए इन परीक्षणों का प्रयोग करने पर हमें ज्ञात होता है कि वह बिल्कुल सही है। अपने पुष्प आच्छादित गुम्बदों और छत्रों, तथा शिखरों के स्थान पर सीधे धातुमय दण्डों के कारण, पुरानी दिल्ली की यह तथाकथित जामा-मस्जिद तथ्य-रूप में एक मन्दिर ही है।

इस खोज के साथ ही, सरकार के पुरातत्त्व-विभाग का यह दायित्व हो जाता है कि वह इस तथाकथित जामा-मस्जिद के अन्दर और बाहर का पूरा-पूरा अध्ययन करे और इसके चारों ओर तथा भीतर ऐतिहासिक खुदाई करे। इस भवन के इतिहास की भी पूरी तरह जाँच-पड़ताल करने की आवश्यकता है। यह भी हो सकता है कि इसके कुछ भाग पुराने हों और कुछ भाग नए। उदाहरण के लिए, इसकी मीनारें शेष भाग की तुलना में नई हों क्योंकि शेष भाग सम्पूर्ण हिन्दू है। इतना ही नहीं, यह भी संभव है कि दिल्ली पर मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ होने के बाद यह भवन कभी हिन्दुओं के अधीन मन्दिर के रूप में रहा हो और फिर बलात् परिवर्तित इस्लामी अनुयायी हिन्दू-परिवर्तित मुस्लिमों द्वारा ही मस्जिद

के रूप में भी उपयोग में लाया गया हो। पुरानी दिल्ली की जामा-मस्जिद के रूप में विख्यात इस सुविशाल भवन के उत्थान एवं पतन की और भूमि-परिवर्तन की कहानी भी अत्यन्त रोचक होगी।

चूंकि जामा-मस्जिद का निर्माण-श्रेय अन्तिम रूप में शाहजहां को ही दिया जाता है, अतः सम्भव है कि शाहजहाँ के शासनकाल में ही यह अन्तिम रूप में इस्लामी उपयोग के लिए व्यवहार में लाया गया था। यह पूर्णतः स्वीकार्य और संभव है क्योंकि शाहजहाँ अन्य लोगों के भवनों को हड़पकर उनको मस्जिदों के रूप में उपयोग करने के लिए कुख्यात था।

खासमहल के अन्दर बना हुआ प्राचीन हिन्दू राजवंशी राजचिह्न इस तथ्य का सबसे प्रमुख लक्षण, चिह्न एवं प्रमाण है कि यह किला प्राचीन कालीन हिन्दुओं द्वारा बनवाया गया था और उन्हीं की सम्पत्ति था। आज इस बात का ज्ञान भी नहीं हो पाता कि किस हिन्दू राजवंशी नरेश से उस राजचिह्न का सम्बन्ध था जिसमें एक अतिजाज्वल्यमान सूर्य एक न्यायतुला के ऊपर दिखाया गया है। उससे दोनों ओर शंख बने हुए हैं, और न्यायतुला की केन्द्रीय तुला एक कमल-दण्डी में झूल रही है, तथा कमल-दण्डी पवित्र हिन्दू कलश में रखी हुई है।

लाहौर-दरवाजे के भीतर बाजार का नाम छत्ताबाजार (छत्र संस्कृत शब्द का अपभ्रंश रूप) और हाथीपोल के ऊपर 'नक्कारखाना' लालकिले के मूलरूप से हिन्दूकला होने के सुनिश्चित प्रमाणरूपी लक्षण हैं।

तथाकथित दीवाने-आम के चहुँओर का क्षेत्र 'गुलाल बाड़ी' के नाम से जाना जाता है। गुलाल एक ऐसा किरमिज़ी पाउडर होता है जो हिन्दू लोग सभी शुभ अवसरों पर बहुत संख्या में उपयोग में लाते हैं। मुस्लिमों को तो गुलाल पूरी तरह असह्य है, यह सर्वविदित है। यदि शाहजहाँ ने किला बनवाया होता, तो उसने कभी भी किले के एक भाग का नाम 'गुलाल बाड़ी' न रखा होता। यह भाग कभी भी 'गुलाल बाड़ी' के नाम से न जाना जाता।

दीवाने-आम में लगे हुए खम्भों की पंक्तियाँ मात्र हिन्दू-शैली में ही बनी हुई हैं। अभिलेखों में उल्लेख है कि उनमें आकर्षक रंग-रोगन और नक्काशी थी। इस्लामी आधिपत्यकर्त्ताओं ने, ऐसी साज-सजावट से

चिढ़कर, रंग-रोगन को उतार दिया था।

पिछवाड़े के मध्यभाग में राजवंशी दीर्घा में हिन्दू शैली का छत्र है जैसाकि हिन्दू राजवंशों और हिन्दू देवताओं के ऊपर अनिवार्यतः होता है। इसके चार विशिष्ट शिखर चारों कोनों पर हैं, और एक शिखर बीच में है। पाँचों शिखर सीधे हिन्दू प्रकार के हैं, न कि मुड़े हुए इस्लामी अर्ध-चन्द्र और तारा।

ऊपर दिये गए उदाहरणों से, लालकिले के हिन्दू-मूलक होने के सम्बन्ध में पाठक का मत निश्चित हो जाना चाहिए। उसे मान लेना होगा कि लालकिला मूलरूप में हिन्दू कला ही बना था। इस्लामी आधिपत्य की शताब्दियों के बावजूद हिन्दू लक्षण आज भी लालकिले के लगभग प्रत्येक भाग से अतिघनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। किले में सर्वत्र व्याप्त और सुशोभित हिन्दू अन्तरंग लक्षणों की सुदृढ़ता और सामंजस्यता हिन्दू-मूल स्वामित्व और उपयोग की एक अति लम्बी शृंखला की परिचायक है जिसको अपहारक इस्लामी आधिपत्य की शताब्दियाँ भी विनष्ट अथवा विलुप्त नहीं कर सकी हैं।

अध्याय ६

विदेशी तोड़-फोड़

लालकिले के मैदानों और मण्डपों में निरुद्देश्य भ्रमण करनेवाले व्यक्ति कदाचित् यह विश्वास करते होंगे कि आज लालकिले को उन लोगों ने जिस स्थिति में देख लिया है, लालकिला अपने मूल-निर्माण की घड़ी से ही अन्दर और बाहर, इसी प्रकार का रहा है। वह तो बात दूर की है, आज जो भी कुछ शेष है, वह तो इसके मूल हिन्दू वैभव,धन और वास्तुकलात्मक सौंदर्य की एक छाया-मात्र है।

किले के भीतर खाली स्थान में से अधिकांश भाग ऊँचे और भव्य राजवंशी मण्डपों, हरे-भरे उद्यानों, प्रवहमान जल-प्रवाहिकाओं, झरनों, झीलों, तालाबों, कुंडों, कूपों और झर-झर झरते फ़व्वारों से भरा पड़ा था। मशीन-पूर्व युग में केवल हिन्दू लोग यह विद्या जानते थे कि नदी-स्तर से जल को ऊपर उठाकर विभिन्न भागों में, एक जटिल दुर्गम मार्ग द्वारा किस प्रकार पहुँचाया जाय। वे सब जल-व्यवस्थाएँ सूख गई हैं क्योंकि इसके मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं को जल-व्यवस्था की यांत्रिकी-प्रतिभा और उसको बनाए रखने की जानकारी प्राप्त नहीं थी। इतना ही नहीं, उनकी रेगिस्तानी आदतों ने प्रवाहित जल को भी काफ़िराना वस्तु मानकर उससे विकर्षण किया। उन लोगों ने फ़व्वारों की टोंटियाँ और अन्य धातुओं की सामग्रियाँ भी उखाड़ डालीं और अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया। इस बात से बहुत सारे फ़व्वारों से छतों और अन्य धातुओं की

टोंटियों का विलोप सन्तोषजनक रूप में स्पष्ट हो जाता है। भारत में मुस्लिम शासन भी नरहत्याओं और वधों, विद्रोहों और लूटों की अति दीर्घ कहानी होने के कारण किसी भी सुल्तान, दरबारी या अन्य अधीनस्थ व्यक्ति को यह उत्साह नहीं था कि कोई रचनात्मक कार्य किया जाय क्योंकि ऐसी कोई प्रतिभूति नहीं थी कि वह अथवा उसकी सन्तान जीवित रहेगी, अथवा वे किसी सतत परिश्रम के सुफल भोगने की स्थिति में होंगे। अतः, सभी समग्र जोर इस बात पर रहता था कि वस्तुएँ जबर्दस्ती हथिया ली जायँ, उद्ध्वस्त कर ली जायें और उनका रूप-परिवर्तित कर उन्हें अपने काम में ले लिया जाय। शाहज़ादे से लेकर भिखारी तक और दरबारी से लेकर साधारण कुली तक, प्रत्येक व्यक्ति हर मूल्य की हर वस्तु को उठाकर ले-जाने और इधर-उधर भाग जाने की पागलों की-सी दौड़ में इस प्रकार सम्मिलित हो गया कि हम आज देखते हैं कि पच्चीकारी-अलंकृति में से छोटी-से-छोटी सूर्यकान्त मणि, नीलमणि तथा अन्य सभी रत्न निकाल लिये गये हैं। मुस्लिम शाहज़ादे और दरबारी लोग भी हिन्दू लालकिले की इस भरपूर लूट में शामिल हो गए क्योंकि वे सत्ताधारी सुल्तान और उसके षड्यन्त्रकारियों के विरुद्ध सदैव विद्रोह करने की अवस्था में ही रहते थे। सारे के सारे शान्तिपूर्ण व्यवसाय और काम-धंधे बन्द हो गए थे। चापलूसी और धोखेबाज़ी का सर्वाधिक बोलबाला था।

हिन्दुओं द्वारा किले का नियन्त्रण हाथ से चले जाने के बाद की शताब्दियों की अवधि में जो विदेशी तोड़-फोड़ द्वारा इस किले को हानि पहुँचायी गई, उसके कुछ सूत्र हमें आँग्ल-इस्लामी लिथिवृत्तों में संग्रहीत टिप्पणियों से प्राप्त हो जाते हैं, यह हमारा सौभाग्य है।

फंशा लिखते हैं: "नक्कारखाने से ही दीवाने-आम के सामनेवाले प्रांगण में प्रविष्ट हुआ करते थे। नक्कारखाने के समान ही यह भी एक तोरणद्वार और मेहराबदार कमरों एवं आलों से, जो दो मंजिलों में थे, घिरा हुआ था। दीवाने-आम के सामने एक स्थान था, जो लाल बालुकाश्म के कटहरे से घिरा हुआ था, और जिसपर सुवर्णरोपित नोकदार

मेखें, कीलें थीं।"[1] लालकिले का भ्रमण करनेवाले दर्शनार्थी आज दीवाने आम का मात्र, एकाकी बड़ा कमरा ही देख पाते हैं जिसके खम्भों पर से रंग-रोगन व अलंकृति समाप्त कर दी गई है, और मेहराबदार कमरों के तोरणद्वारवाली दूसरी मञ्जिल तो अब उसे दिखायी ही नहीं पड़ती। सामनेवाली गुलालवाड़ी के चारों ओर सुवर्णरोपित नोकदार मेखों और लाल बालुकाश्म वाला कटहरा भी लूटा और अन्यत्र ले-जाया गया है। दर्शक आज जिस लालकिले का दर्शन करता है, वह तो लम्बी अवधि के मुस्लिम शासन के अन्तर्गत नग्नीकृत और लूटा गया लालकिला है। इसके अधिकांश प्राचीन विशाल, भव्य हिन्दू भवन तथा अन्य स्थावर साज-सामग्री पीढ़ियों की दृष्टि से सदैव के लिए अदृश्य हो चुके हैं।

"दीवाने-खास की उत्तरी दिशा में, एक खुला स्थान पार करने पर राजवंशी स्नानघर हैं जिनमें तीन कमरे हैं; जिनके ऊपर कभी तीन संगमरमरी गुम्बदें थीं, पानी के झरने और फ़व्वारे थे, और कुण्ड व स्नानघर थे; और इन्हीं के कारण, जैसाकि बर्नियर ने भी कहा है, तमाम दीवाने-खास भवनों को 'गुसलखानों' के नाम से पुकारा जाता था।"[2] यदि शाहजहाँ ने किले को बनवाया होता, तो उसके किसी भी मुगल-उत्तराधिकारी, अनुवर्ती व्यक्ति ने उन संगमरमरी गुम्बदों से क्यों छेड़-खानी, तोड़फोड़ करनी चाहिए थी? यह भी स्पष्ट है कि उन तथाकथित महान् मुगलों ने, जिनको सम्पूर्ण भारत में हजारों भवन बनाने का निर्माण श्रेय दिया जाता है, किन्हीं गुम्बदों के संगमरमरी पत्थरों को तो चुराया नहीं होगा, किन्तु संगमरमर का चुराया जाना सिद्ध करता है कि लाल-किला एक विजित सम्पत्ति था जिसको धीरे-धीरे एक-एक करके विनष्ट करना और लूटना था। हम उसका प्रयोजन स्पष्ट जानते हैं। उन स्नान-घरों के ठीक पीछे तथाकथित मोती-मस्जिद है। चूंकि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि किस प्रकार यह तथाकथित मस्जिद पूर्वकालिक मन्दिर है, इसलिए गुम्बदों के ऊपर का संगमरमर उन खाली स्थानों को भरने

१. दिल्ली—विगत और वर्तमान; पृष्ठ २८
२. वही; पृष्ठ ३८

के लिए इस्तेमाल किया गया था जो हिन्दू मूर्तियों को हटाने से हो गए थे और मुस्लिम मौलवी को बैठने के लिए ऊँचे आसन व उसकी तीन-चार सीढ़ियाँ बनाने के काम में लाया गया था। मन्दिर-गर्भ के दोनों दाएँ-बाएँ पार्श्व दीवारों में वक्ष-स्तर तक, पुष्पीय नमूनों की परीक्षा पूर्वकालिक हिन्दू-भवन में इस्लामी तोड़-फोड़ को स्पष्ट दर्शा देती है, प्रकट कर देती है।

"बार-बार सफ़ेदी पोतते रहने से रंगीन भीतरी छतें नष्ट हो गई हैं।"[1] यह स्पष्टतया प्रदर्शित करता है कि हिन्दू किले के मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं को कलात्मक और आकर्षक हिन्दू रंग-रोगनों का भी ज्ञान नहीं था।

भारत में बनी किसी भी मस्जिद को देखो। इसमें सफ़ेदी की बार-बार की हुई परतें स्पष्ट दिखाई देती हैं जिनमें पूर्वकालिक हिन्दू-नक्क़ाशी और मत्स्य, मयूर, सिंह और हाथी जैसे अंगीभूत लक्षण पशु-आकृतियाँ छिप गई हैं। किले के भीतर बने हुए स्नान-घरों के कोमल रंग-रोगनों पर प्रचलित मुस्लिम सफ़ेदी का होना ही हिन्दू किले का मुस्लिमों द्वारा आधिपत्य और उपयोग किये जाने का एक प्रबल प्रमाण है। 'राजवंशी स्नान-घरों' की शब्दावली में दीवाने-खास को भी लपेट लेनेवाला संभ्रम नितान्त विचित्र है। यह दो बातें प्रदर्शित करती हैं—पहली बात तो यह है कि दीवाने-खास को राजवंशी स्नान-घरों से जोड़नेवाले अन्य भाग भी अवश्य रहे होंगे, और दूसरी बात यह है कि इस विजित किले के विभिन्न भागों के उपयोग के बारे में मुस्लिम आधिपत्यकर्ता इतने असमंजस में हैं कि उन्होंने, वैसे ही, ऊलजलूल नामों की कल्पना कर ली थी।

"रंगमहल...किसी समय असीम सुन्दर राजमहल था, अपनी रंगीन सजावट, शोभा के लिए बहुत प्रसिद्ध था---उसी से इसका यह रंगमहल नाम पड़ा था। इसके सामने किसी समय एक लम्बा संगमरमरी स्नान-घर बना हुआ था जो अब शहर के क्वीन्स गार्डन में रखा हुआ है।"[2]

१. 'दिल्ली—विगत और वर्तमान', पृष्ठ ३९
२. वही, पृष्ठ ४१



किले के रंग-महल में दीवार पर यह मन्दिर का ढाँचा बना है। ऊपर की तरफ मध्य में कलश व हिन्दू देवछत्र देखें। इस किले के हिन्दुत्व का यह एक ठोस प्रमाण है।

वे अत्युत्तम, अद्वितीय हिन्दू रंग-रोगन और आलंकारिक नमूने भावी पीढ़ियों के लिए सदैव के लिए लुप्त हो गए हैं क्योंकि हिन्दू लालकिले पर सन् १२०६ ई० से लगातार विदेशियों का आधिपत्य बना रहा था, और महमूद गजनवी जैसे आक्रमणकारी ने इसे पूर्वकाल में अपवित्र व नष्ट किया था। संगमरमरी स्नानघर जैसी अनेक स्थावर-सम्पत्तियाँ चुरा भी ली गयी थीं।

"(दीवाने-खास के नमूने पर रंग-रोगन किया हुआ और सुवर्ण-रोपित) यह मोती-महल ग़दर के बाद हटा दिया गया था...क्योंकि यह बैरकों को जानेवाली हवा का मुक्त प्रवाह रोकता था।"[1] यह टिप्पणी हिन्दू लालकिले के अपहारक मुगलों के अनुवर्ती अंग्रेजों द्वारा की गई तोड़-फोड़ का पाप-स्वीकरण एक अंग्रेज लेखक द्वारा ही है। अपनी घोर अज्ञानता में उन्होंने कदाचित् यह विश्वास किया था कि वे मुगलों द्वारा बनाए गए 'मोती महल' को नष्ट कर रहे थे, परन्तु वास्तव में उन्होंने जो कुछ नष्ट-ध्वस्त किया वह तो हिन्दू मोती महल था। अंग्रेज सैनिकों की कुछ नगण्य कच्ची अगबड़ बैरकों में बिना रोकटोक हवा आने देने के लिए इस महल को ध्वस्त करना धृष्टता और बुद्धिहीनता की पराकाष्ठा थी। अतः, निष्कर्ष यह है कि अंग्रेजों और पूर्वकालिक मुगलों दोनों ने ही संयुक्त रूप में भव्य, ऐतिहासिक हिन्दू भवनों को नष्ट कर दिया है।

"रंगमहल के केन्द्रीय, मुख्य कक्ष के बीचों-बीच कमल पुष्प का रूप बना हुआ था, जिसके ऊपर जल-राशि कलकल निनाद करती थी और एक उथले संगमरमरी पात्र में गिर जाती थी; यहाँ गुलाब की पंखुड़ियाँ और चमेली की कलियाँ संगमरमरी पच्चीकारी में अलंकृत थीं जो ऊपर जलराशि आने पर स्वयं गतिमान हो गई प्रतीत होती थीं।"[2]

हमने उपर्युक्त का उद्धरण इस अध्याय में पुनः इस विचार से किया है कि पाठक को इस बात का ज्ञान भलीभाँति हो जाय कि विदेशी तोड़-

१. 'दिल्ली की सात नगरियाँ', पृष्ठ १०१
२. वही, पृष्ठ १०६

फोड़ के कारण प्राचीन हिन्दू किले का कितना अधिक भाग सदैव के लिए विलुप्त हो गया है। कमल पुष्प विशिष्ट रूप में हिन्दुओं का अंगीभूत लक्षण है। इसी प्रकार, प्रवहमान जल-प्रवाहिकाएँ और फ़व्वारे विशिष्ट हिन्दू सुविधाएँ हैं। मुस्लिम लोगों से तो उनका भली-भाँति रख-रखाव, अनुरक्षण भी नहीं बन पाया। कमल-युक्त फ़व्वारे की कल्पना और रचना करना मतान्ध इस्लाम के लिए सर्वथा असह्य, असम्भव बात है क्योंकि कमल हिन्दुओं के लिए पवित्र होता है।

"बाजार के प्रवेशद्वार और नक्कारखाने के मध्य की भूमि साफ़ कर दी गई है और समतल कर दी गई है। अब उन भवनों का स्थान पता करने का कोई लक्षण शेष नहीं है जो कभी नक्कारखाने के दाएँ और बाएँ स्कन्ध कहलाते थे।"[1]

यदि शाहजहाँ ने किला बनवाया होता, तो किसी मुस्लिम तिथिवृत्तकार को हमें सूचित करना चाहिए था कि शाहजहाँ का परवर्ती वह कौन-सा छोटा मुगल था जिसने नक्कारखाने के दाएँ और बाएँ स्कन्ध विनष्ट करने की कायरता प्रदर्शित की थी, तथा उसे ऐसा करने का कारण क्या था ? चूंकि किसी भी व्यक्ति ने ऐसी कोई बात लिखी नहीं है, अतः स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि जब एक बार हिन्दू किला जीत लिया गया, तब इसके मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने इसके विभिन्न भागों को जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाने दिया। किले के भीतर जातीय संघर्षों और षड्यन्त्रों-प्रतिषड्यन्त्रों के कारण प्रायः कलह, खलबली, आकस्मिक धावों, हाथा-पाई, और प्रारम्भिक विद्रोह का क्रूर, बीभत्स दृश्य सतत विद्यमान रहता था। भवनों को ढहाकर, गिराकर शत्रुओं को खोजा जाता था। ढहते हुए भवनों को तब नीचे गिराया जाता था और मलबे की सफ़ाई की जाती थी। यही बातें थीं जिनके कारण हिन्दू लालकिले में विद्यमान बहुत सारे हिन्दू विशाल भवन नष्ट कर दिए गए। यह दुष्कृत्य मुस्लिम आधिपत्य के बाद हुआ।

"किले के सबसे अधिक व्यस्त दरवाज़े—लाहौर-दरवाज़े में चाँदनी

१. 'दिल्ली के पुरातत्त्वीय स्मारक और अवशेष'; पृष्ठ २२०

चौक की ओर से प्रवेश किया जाता है। दिल्ली दरवाजे के सामनेवाली बाहरी दीवार के सम्मुख ही, इस दरवाजे के सामने बाहरी दीवार के बाहर एक उठाऊ पुल था, जिसे ईंटों और पक्की चिनाई से बदल दिया गया था।"[1]

उठाऊ पुलों की व्यवस्था लालकिले के प्राचीन हिन्दू निर्माताओं ने की थी। बाहरी दीवारों के सम्मुख उठाऊ पुलों का होना—न कि अन्दरूनी दरवाजों के सम्मुख होना—इस विश्वास को झुठला देता है कि शाहजहाँ ने अन्दरूनी दरवाजे बनवाए थे और उसके बेटे औरंगजेब ने बाहरी दीवारें शाहजहाँ ने बाहरी दीवारों के बिल्कुल निकटस्थ अन्दरूनी दरवाजों का निर्माण कराया होता, तो उसने उन्हीं के बाहर ऊठाऊ पुल बनवाए होते। इसी प्रकार, यदि लालकिले के सामनेवाली बाहरी प्राचीरें और उठाऊ पुल औरंगजेब ने बनवाए थे, तो कोई कारण ऐसा नहीं था कि उसके किसी उत्तराधिकारी, परवर्ती को उन उठाऊपुलों की जगह पर ईंटों और पक्की चिनाई का सहजगम्य रास्ता बनाकर किले को असुरक्षित कर देने की आवश्यकता होती। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तथाकथित बाहरी प्राचीरें और उठाऊ पुल मूल प्राचीन हिन्दू किले की प्रारम्भिक योजना में ही एक अंश के रूप में समाविष्ट किए गए थे। इसी के साथ-साथ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि दिल्ली, आगरा और लाहौर के किले (लालकिले) एक प्राचीन हिन्दू नमूने पर बने हुए हैं। वे सभी लगभग समान रूप से प्राचीन हैं। इनमें से आगरा-स्थित लालकिला पहले ही हिन्दू किला सिद्ध किया जा चुका है।[2] उस किले की प्राचीनता ईसा के पूर्व तीन सौ वर्ष पहले तक ढूंढ ली गई है। यह शो ईसा-पूर्व युग में हिन्दू सम्राट् अशोक के समय में भी विद्यमान था। यहाँ पाठक यह भी ध्यान रखें कि लालकिले की दक्षिण दिशा में, यमुना नदी के साथ-साथ, कुछ फ़र्लांग की दूरी पर, एक अन्य ध्वस्त हिन्दू गढ़ी है जिसे आजकल फ़िरोज-शाह कोटला कहते हैं। सम्राट् अशोक का भव्य प्रस्तर-स्तम्भ वहाँ मस्तक

१. "दिल्ली के पुरातत्त्वीय स्मारक और अवशेष" पृष्ठ २१८
२. पाठक "आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है" पुस्तक पढ़ें।

ऊपर ऊठाए खड़ा है। वह स्पष्ट दर्शाता है कि ईसा-पूर्व तीसरी शताब्दी के हिन्दू सम्राट् अशोक का उस गढ़ी और निकटवर्ती लालकिले, दोनों पर ही स्वामित्व था।

हम तारीखें-फ़िरोजशाही के लेखक शम्से-शीराज़ अफ़ीफ़ द्वारा प्रचारित उस जन-विश्वास को झूठी, मनघड़न्त बात कहकर अस्वीकृत कर देते हैं जिसमें कहा गया है कि अशोक-स्तम्भ को दिल्ली से कुछ मील की दूरी पर स्थित स्थान से उखाड़कर, आज की स्थिति में लगा दिया गया था—यह कार्य विदेशी सुलतान फ़िरोजशाह तुग़लक ने किया। हमारा, इस मन्तव्य को तिरस्कृत करने का आधारभूत कारण यह है कि शम्से-शीराज़ अफ़ीफ़ एक चाटुकार था और मात्र बारह वर्षायु का था जब फ़िरोजशाह ने शासन किया था। अपने समस्त शासनकाल में हिन्दुओं के प्रति तीव्र घृणा-भाव और नर-सहार व लूटपाट के लिए हमले करने को कुख्यात फ़िरोजशाह तुग़लक जैसा धर्मान्ध मुस्लिम सुलतान तो उस हिन्दू 'काफ़िराना' स्तम्भ को अनेकों मीलों से अति कष्टपूर्वक लाने और उसे अपने निवास-स्थान पर समारोहपूर्वक लगाने की बजाय उसको चूर चूर करना अधिक अच्छा समझता।

"दिल्ली के पुरातत्वीय और स्मारक अवशेष" पुस्तक के पृष्ठ २२० पर एक पदटीप में लिखा है : "नक्क़ारखाने के कमरे प्रारम्भ में खुले हुए थे···कुछ मेहराबें पक्की चिनाई से बन्द कर दी गई हैं।" यह इस्लामी फेर-बदल का स्पष्ट, प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिन्दू मन्दिरों, राजमहलों, भवनों और किलों में गायन-वादन अति प्राचीन हिन्दू प्रथा है। संगीत की धारा, स्वर-लहरी पूरी जगह व्याप्त हो जाय, इसलिए हिन्दू नक्क़ारखाने की दीर्घा में खुली मेहराबें थी। चूंकि विदेशी मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं को हिन्दू संगीत का कोई उपयोग नहीं था, इसलिए उन लोगों ने कुछ मेहराबों को भर दिया। अतः दर्शक को इस तथ्य के प्रति सावधान हो जाना चाहिए कि यह जो कुछ अब लालकिले में देखता है, वही सब कुछ और ज्यों-का-त्यों नहीं है। इसमें बहुत-कुछ फेर-बदल, अपवित्र किया हुआ और ध्वस्त भाग है।

"दीवाने-आम एक विशाल कमरा है। सिंहासन के पीछेवाली सारी

दीवार रंगीन चित्रकारी से सुशोभित है। इसमें बहुमूल्य पत्थर, रत्न-माणिक्यों में अति सुन्दर पुष्प, फल और हिन्दुस्थान के पक्षी और पशु बने हुए हैं। इनका निर्माण आस्टिन-डि-बोरड्योक्स ने किया था, जिसने अपनी विलक्षण-प्रतिभा द्वारा निर्मित झूठे रत्नों के माध्यम से यूरोप के अनेक राजकुमारों को ठगने, धोखा देने के बाद शाहजहाँ के दरबार में शरण ली थी और अपना भाग्य चमकाया था, तथा बादशाह की दृष्टि में बहुत सम्मानित स्थान पाया था। सिंहासन के पीछे की दीवार में बनी हुई रंगीन चित्रकारी में इस फ्रांसीसी व्यक्ति को अपना स्वयं का चित्र भी प्रस्तुत करने की अनुमति दे दी गई थी। उसमें उसने एक पीले बालों-वाले युवक ओरफ़ियस को चित्रित किया है जिसमें वह वायलिन बजा रहा है और एक वृक्ष के नीचे एक चट्टान पर बैठा है तथा उससे मोहित होकर एक शेर, एक खरगोश और एक चीता उसके चरणों में बैठे हैं। यह भी रंगीन चित्र है। सम्पूर्ण चित्रावली आठ फीट ऊँची थी और इसके चित्रों को रंगीन बनाने के लिए कीमती पत्थर प्रयोग किए गए थे। इसे दिल्ली स्थल-सेना के अधिकारी द्वारा सन् १८५७ में इंग्लैंड ले-जाया गया था और अब साउथ किंग्स्टन में बने भारतीय संग्रहालय में इसे देखा जा सकता है।"[1]

यह ध्यान देने की बात है कि उपर्युक्त अवतरण का लेखक किसी भी प्राधिकरण का उल्लेख नहीं करता है। उसने स्वयं इस अवतरण को बेरेस्फ़ोर्ड की दिल्ली-विषयक मार्गदर्शिका से लिया है। स्पष्ट है कि शाहजहाँ के शासनकाल के किसी भी मुस्लिम-तिथिवृत्त में दीवाने-आम के सिंहासन के पीछे रंगीन चित्रकारी में आकृति-निर्माणकर्ता के रूप में आस्टिन-डि-बोर्ड्योक्स का नाम अंकित नहीं किया गया है। किन्तु जहाँ तक उसकी कलात्मक प्रतिभा का सम्बन्ध है, यह आस्टिन-डि-बोर्ड्यो नाम एक काल्पनिक नाममात्र है। आगरा में बने सुप्रसिद्ध ताजमहल का वर्णन करनेवाली कुछ यूरोपीय पुस्तकों में भी इसी व्यक्ति का नाम समाविष्ट कर लिया गया है। वे लोग उसे ताजमहल का रूप-रेखांकन

१. "दिल्ली के पुरातत्त्वीय स्मारक और अवशेष", पृष्ठ २२५-२२६

तैयार करने का श्रेय देते हैं। इसपर श्री पी० एन० ओक की "ताजमहल हिन्दू राजभवन है" शीर्षक पुस्तक में पूर्ण प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि आस्टिन-डि-बोर्ड्यो ने यूरोप के कई राजकुमारों को बहुमूल्य मणि-माणिक्यों के बारे में धोखा दिया था, ठगा था। फिर क्या निश्चित है कि उसने शाहजहाँ के लिए क्या कुछ, सत्यतः, वास्तविक रूप में भी किया था? यदि उसने कुछ सचमुच ही किया था, तो उस शाहजहाँकालीन तिथिवृत्तों में उसका उल्लेख क्यों नहीं किया गया? यह भी पूरी तरह बेहूदगी मालूम पड़ती है कि शाहजहाँ अपने शाही महल में, शाही महल की दीवारों पर एक नगण्य और घृणित ईसाई को—आस्टिन-डि-बोर्ड्यो को अपना चित्र अंकित करने देता। अतः, हम उपर्युक्त अवतरण को पूरी तरह लापरवाहीवाला और ग़ैर-जिम्मेदारी से भरा हुआ कथन कहकर तिरस्कृत करते हैं। ऐसे आधार-हीन लेखन-संग्रहों से इतिहास के विद्यार्थियों को दिग्भ्रमित नहीं होना चाहिए।

इसके विपरीत, हम पाठक को सूचित करना चाहते हैं कि फ़तहपुर सीकरी में भी, दीवारों के ऊपर, इसी प्रकार के दृश्य और आकृतियाँ उत्कीर्ण थे। इसके लिए पाठक का ध्यान 'फ़तहपुर सीकरी एक हिन्दू नगर है' शीर्षक पुस्तक की ओर आकर्षित किया जाता है। चूँकि फ़तहपुर सीकरी एक प्राचीन हिन्दू नगर प्रमाणित किया जा चुका है, अतः अर्थ यह है कि दिल्ली का लालकिला भी, जिसमें वैसे ही दृश्य और आकृतियाँ उत्कीर्ण थे, यह एक हिन्दू भवन है। यह खेद की बात है कि वह स्तम्भ उखाड़ लिया गया और लन्दन पहुँचा दिया गया है। यह भी एक वह अंश है जो दिल्ली में बने प्राचीन हिन्दू लालकिले से अपहरण किया जा चुका है।

"श्री इलियट, दिल्ली के रेजिडेण्ट ने पादरी हेबर को बताया था कि राजमहल की ध्वंसात्मक अवस्था, शोचनीय स्थिति 'नितान्त निर्धनता के कारण नहीं' अपितु इस कारण थी कि 'लोगों ने इसे साफ़ और सुथरा रखने तथा मरम्मत कराते रहने के विचारों का पूर्ण परित्याग कर दिया

था।"[1] हम श्री इलियट के पर्यवेक्षण से पूरी तरह सहमत हैं और इतना साथ जोड़ देना चाहते हैं कि मुसलमानों द्वारा किले की उपेक्षा इस कारण हुई कि वे इसको घृणित हिन्दुओं को युद्ध में लूटी गयी सम्पत्ति समझते थे जिसको जैसे मर्जी इस्तेमाल करके पूरा मजा लेने की जरूरत और साफ़-सुथरा रखने के लिए किसी भी प्रकार के कष्ट, परिश्रम की आवश्यकता नहीं थी।

"दीवाने-आम के दक्षिण में शाही हरमों से सम्बन्धित महलों की एक पूरी शृंखला थी और शाही दरबार के सरदारों के निवास-स्थान थे, जो किले की दक्षिणी दीवार तक फैले हुए थे।"[2]

उपर्युक्त अवतरण उन अन्य महलों की एक बड़ी संख्या का सुराग प्रस्तुत करता है जिनको हम आजकल देख नहीं पाते हैं। उनका अस्तित्व समाप्त हो गया है। यदि शाहजहाँ ने वास्तव में किला बनवाया होता, तो उसके दरबारी कागज-पत्रों में किले की कुल बनी हुई भूमि के मान-चित्र, रूप-रेखांकन और पूरे विवरण प्राप्त हो जाते। अनुवर्ती वर्णनों में, तब, उनमें से कुछ भवनों का समय-समय पर किया गया ध्वंस-कार्य ही उल्लेख किया गया होता और उस विनाश-कार्य के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया होता। किन्तु लालकिले के सम्बन्ध में आंग्ल-मुस्लिम वर्णन तो मात्र गड़बड़-झाला है। अमर पक्षी के समान, वे कल्पना कर लेते हैं कि शाहजहाँ के शासनकाल में लालकिला अकस्मात् ही उदित हो गया था और फिर इसके भीतरी भागों के बारे में ऊलजलूल बातें, वर्णन करना प्रारम्भ कर देते हैं। जहाँ तक हमारी बात है, हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि शाहजहाँ के दरबारी कागज-पत्रों में किले के निर्माण के बारे में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है, क्योंकि उसने इसका निर्माण कभी किया ही नहीं था। मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, वह यह है कि कुतुबुद्दीन ऐबक नामक सुल्तान (सन् १२०६ ई०) के समय से ही सन् १६२८ ई० तक (जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा) यह किला लगातार मुस्लिम आधिपत्य

---

१. 'दिल्ली के पुरातत्त्वीय स्मारक और अवशेष', पृष्ठ २३१

२. वही, पृष्ठ २३९

में रहने के कारण, इसके हिन्दू भागों में से कुछ तो पहले ही उड़ा दिए गए थे, अथवा नष्ट हो गए थे और हटा दिए गए थे। लालकिले के भीतर बने हुए भवनों का यह क्रमिक नग्नीकरण इस्लामी आधिपत्य की छः शताब्दियों तक चलता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि किले के भीतरी भागों के मध्य बड़े-बड़े रिक्त स्थान दिखाई देने लगे। आज हम कुछ मण्डप-मात्र देखते हैं जो एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं, जिनकी सभी सज्जा-सामग्री हटायी जा चुकी है और उनके रंग-रोगन को या तो छील डाला गया है अथवा समय व्यतीत होते-होते धुँधला पड़ जाने दिया गया है।

"दीवाने-आम के प्रांगण के उत्तर-पूर्व में मेहराबदार एक द्वार था जिसमें से एक छोटे वर्गाकार में प्रवेश होता था, और इसकी पूर्वी दीवार में बने एक द्वार से दीवाने-खास के प्रांगण में प्रवेश किया जाता था।"[1]

वह भव्य मेहराबदार तोरणद्वार—प्रवेशद्वार अब वहाँ नहीं है। इसकी अविद्यमानता किले के मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं, विजेताओं की तोड़-फोड़ और घोर उपेक्षावृत्ति की स्पष्ट द्योतक है।

"मुहम्मदशाह के शासनकाल में किले का भीतरी भाग, साधारण रूप में देखने-सुनने में, बहुत बदल दिया गया था। नादिरशाह द्वारा दिल्ली के नर-संहार के बाद की कठिनाइयों के उपरान्त, (इसे) जीर्ण-शीर्ण और ध्वस्त हो जाने दिया गया। शाही भागों के साथ-साथ घिनोनी झोंपड़ियाँ छा गयी थीं जबकि अधिक आडम्बरी तथापि कम आपत्तिजनक भवन, जो बाद के निर्माण थे, खुले स्थानों में बना दिए गए थे…विद्रूप-कर दी गयी दीवारें, खम्भे जिनके ऊपर से अलंकरण चुरा लिये गए थे, शाही आसन जिनपर वर्षों की धूल जमा हो गई थी, मण्डप और स्तम्भ गिरा दिये गए थे और ध्वस्त अवस्था में थे। फ्रेंकलिन ने लालकिले के अन्दर की तबाही का आँखों-देखा हाल इन शब्दों में वर्णन किया है: 'शेष जन-भवनों की स्थिति विनाशक हालत में है, सोने और चाँदी के उन खम्भों की जगह अब कुछ मोटा करवा कपड़ा लगा दिया गया है

१. 'दिल्ली के पुरातत्वीय स्मारक और अवशेष,' पृष्ठ २३९

जहाँ पहले प्रत्येक भाग के चारों तरफ़ ज़रीदारी कपड़े या मलमल त्रिपाल का काम देते थे। विशाल चाँदी-सोने की भीतरी छतों के स्थान पर लकड़ी लगा दी गयी है जिसपर रंग-रोगन कर दिया गया है। स्वयं दीवारें भी शरारती कृपणता की अपवित्रता से बच नहीं पायी हैं। वे उत्तम सफ़ेद संगमरमर की हैं (विशेष रूप में बाग़ में) अधिकांश जन-भागों में। सुलेमानी, गोमेद और श्रृंगाभ: से अलंकृत उत्कीर्ण भागों में लगभग सभी जगह बहुमूल्य रत्नों की जगह संगमरमर के टुकड़े लगा दिए गए हैं। सन् १८५७ के ग़दर के बाद, इस किले को यूरोपीय रक्षकसेना की आवश्यकताओं के अनुरूप बदल लिया गया था। किले की दीवारों के अन्दर दुमंज़िली बैरकें बना दी गयी हैं।"[1]

उपर्युक्त अवतरण उस स्थापत्यकला के वैभव और प्रताप की छटा प्रस्तुत करता है जिसको प्राचीन हिन्दू निर्माताओं ने लालकिले के भीतर ठसाठस भरा हुआ था। वह सारा-का-सारा वैभव और प्रताप उस महान् हिन्दू दुर्ग की लगभग हज़ार-वर्षीय आंग्ल-मुस्लिम लूट, नृशंस विध्वंस और घोर उपेक्षा की अवधि में शनैः-शनैः विलुप्त हो गया था।

"दीवाने-ख़ास की भीतरी छत⋯चाँदी की बनी थी और सोने की अलंकृति उत्कीर्ण थी। इसका मूल्य ३९ लाख रुपया था जिसको सन् १७६० में मराठों द्वारा लूटे और पिघलाये जाने पर २८ लाख रुपये मिले थे। (पदटीप : यह विशाल कमरा पहले सन् १७५७ में अहमदशाह द्वारा लूटा गया था, जिसने लूट की अन्य वस्तुओं के साथ-साथ एक मुग़ल शहज़ादी को पत्नी बना लिया था)।"[2]

इस घटना को ठीक प्रकार समझा नहीं गया है। अहमदशाह अब्दाली के, जो एक मुस्लिम नर-संहारक था, आशंकित आक्रमण से भारत की रक्षा करने हेतु मराठा सेनानायक सदाशिवराव भाऊ सुदूर-स्थित पूना से उत्तर में आ गया था। सदाशिवराव भाऊ की विशाल सेना को खाद्य-सामग्री की आवश्यकता थी। हिन्दू होने के कारण उसकी प्रवृत्ति ऐसी नहीं

१. 'दिल्ली के पुरातत्त्वीय स्मारक और अवशेष', पृष्ठ २४०-४१
२. दिल्ली, इलाहाबाद आदि के लिये कीन की मार्गदर्शिका, पृष्ठ १३१

थी कि वह वैसी ही लूट-पाट करे जैसी मुस्लिम बादशाह आदि करते थे। मुस्लिम लोग हिन्दुओं के विरुद्ध बलात्कार और लूटमार को इस आधार पर न्यायोचित ठहराते थे कि उनके ये कुकृत्य इस्लाम को चार चाँद लगाते थे और फिर वे तो विदेशी लोग थे, जो हिन्दुस्थान को लूटने के लिए ही यहाँ आये थे। इसी धरती का लाल होने के कारण सदाशिवराव भाऊ का दिल ऐसा नहीं था कि वह उन्हीं लोगों को लूटता जिनको, स्वयं अपनी जान खतरे में डालकर और सम्पूर्ण मराठा शक्ति को दाँव पर लगाकर,बचाने के लिए वह यहाँ तक आया था। नीति की दृष्टि से अवश्य ही उसने भारी ग़लती की थी। उसने उस समय मात्र अमीरों को ही लूटकर पूर्णत: उचित कार्य किया होता क्योंकि राष्ट्र के सम्मुख एक आपातकालीन स्थिति और बाह्य-आक्रमण उपस्थित था। तथ्यत:, उसे विवेक से काम लेना चाहिए था और उन अरबों, ईरानियों, तुर्कों, अबीसीनियनों, कज़कों, उज़बेकों और पठानों को ही लूटना चाहिए था, जिन्होंने पीढ़ियों से हिन्दुस्थान को हिन्दू-धन-सम्पत्ति पर अपने-आपको मोटा ताज़ा पुष्ट किया था। अन्ततोगत्वा, भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से भारत पर आक्रमण करने की धमकी दे रहे अहमदशाह अब्दाली नामक भेड़िए और शिकारी से इसको, उन धनिकों को और लाखों असहाय देशवासियों को बचाने के लिए ही तो वह यत्नशील था। नीति की दृष्टि से, उसने वह कार्य न करके भारी भूल की थी। उसके स्थान पर, उसने दीवाने-खास की भीतरी छत पर लगी चाँदी की परत लूट ली। ऐसा करते समय, उसने अपने पूर्वज हिन्दुओं द्वारा निर्मित और सुसज्जित लालकिले की सम्पत्ति का ही अपहरण कर लिया। अत: यह धारणा निराधार है कि चाँदी का मूल्य मुग़ल खजाने में दिया गया था,क्योंकि शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने की धारणा निराधार है। कुछ भी हो, सदाशिवराव भाऊ ने अपनी वित्तीय दुरवस्था के अवसर पर भी एक अत्यन्त मानवीय, दयालुतापूर्ण और नर्म रुख अपनाया था। आपातकालीन स्थिति में ग्रस्त एक योद्धा के नाते तो उसे अधिक कठोर और यथार्थवादी होना चाहिए था तथा धनी विदेशियों से भरपूर रक़म वसूल की होती। इस बात को विचारते हुए कि उससे तीन वर्ष पूर्व ही अहमदशाह ने दिल्ली

पर आक्रमण किया था और लाल किले की बहुमूल्य सज्जा-सामग्री तथा अन्य वस्तुएँ अपहरण कर ली थीं, तब हमें पूर्ण सन्देह होता है कि उन भीतरी छतों की चाँदी उतारने के लिए कुछ शेष भी था या नहीं। क्या दीवाने-खास की भीतरी छत पर लगी चाँदी उस अहमदशाह की लुटेरी तलवार से बच पायी होगी ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर सावधानी-पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

"यह अत्यन्त खेद की बात है कि छोटे भवनों और प्रांगणों को गदर के बाद हटा दिया गया था; क्योंकि जो भवन आज बच रहे हैं, उनको जोड़नेवाले प्रांगणों और गलियारों के अभाव में उनका अर्थ-प्रयोजन और सौन्दर्य कुछ भी नहीं रहा है। रंगमहल, मुमताज महल और खुर्द-जहान के पश्चिम में हरमों के प्रांगणों और बागों के साथ-साथ वह भवन भी गायब हो गया है जो 'चाँदी का महल' कहलाता था और खुर्द जहान से कुछ दूर पश्चिम में स्थित था। दीवाने-आम के प्रांगण को उत्तर दिशा में स्थित शाही भंडारघर, रसोइयाँ, और राजचिह्न-कक्ष मेहताब बाग और हयात बख्श बाग के आधे पश्चिमी भाग के साथ ही समाप्त हो चुके हैं और उनका स्थान सैनिक बैरकों व परेड के मैदानों ने ले लिया है। हयात बख्श बाग के आगे उत्तर में, और इसके तथा किले की बाहरी उत्तरी दीवार के बीच में मकान, शाही शाहजादों के हरम और उद्यान थे। ये भी सब लुप्त हो चुके हैं। बाड़े के अन्तिम उत्तर-पश्चिमी कोने में शाही अस्तबल और भण्डारघर थे, जबकि दिल्ली दरवाजे के उत्तर की दिशा से मेहताब बाग के उत्तरी छोर तक तोरणयुक्त मार्ग, और पश्चिम की बाहरी दीवार के मध्य का सम्पूर्ण क्षेत्र दरबार से सम्बद्ध विशाल परिचरों-अनुचरों के मकानों से भरा पड़ा था।"[1]

ऊपर लिखे अवतरण के लेखक महोदय ध्वस्त किये गए मूल भागों का सविस्तार वर्णन करने में आंशिकरूप से सही हैं, तथापि वे यह कहने में गलती कर रहे हैं कि ध्वंस-कार्य मात्र अंग्रेजों ने किया था और सन् १८५७ ई० के बाद ही किया था। हम पहले भी अन्य लेखकों के उद्धरण

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृष्ठ ५



सूअर (वराह) के मुँह वाले ऐसे चार नल अब भी लालकिले के अन्दर खास महल में लगे हैं। क्या यह लालकिले के हिन्दुत्व का प्रमाण नहीं है ?

प्रस्तुत कर चुके हैं, मात्र यह दिखाने के लिए कि लालकिले के भीतरी भागों का विनाश-कार्य पहले भी चलता ही रहा था। हम भी पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि किले के भीतरी भागों के विध्वंस-कार्य का हिसाब ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों से, तथा बाद में सन् १२०६ से आगे दिल्ली के लगभग सभी मुस्लिम शासकों से लगाना चाहिए जिन्होंने लगभग अनवरत रूप से ही किले पर आधिपत्य किया था। दूसरी बात, जिस पर उपर्युक्त लेखक ने ग़लती की है, यह है कि उसने बाग हयातबख्श एवं मेहताब बाग तथा मुमताज़ महल एवं खुर्द जहान जैसे इस्लामी नाम तुरन्त प्रस्तुत कर दिये हैं। वह इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि मूल नाम, सब-के-सब, हिन्दू थे जैसे रंगमहल, रौप्य महल (चाँदी-महल), हीरक महल (हीरा महल), छोटा रंगमहल, श्रावण और भाद्रपद महल तथा मोती महल (अर्थात् मोती-राजप्रासाद एवं मोती मंदिर जो आज, भूल से, औरंगज़ेब द्वारा निर्मित मोती मस्जिद समझा जाता है)।

"रंगमहल से दक्षिण दिशा में कुछ गज की दूरी पर एक छोटा दरवाज़ा है जो दीवार की जड़ में है। पक्की चिनाई देखने से प्रतीत होता है कि इसे स्वयं मुग़लों द्वारा बन्द कराया गया था। इसके पीछे वाली भूमि खोदने का एक बार यत्न किया गया था, किन्तु कुछ नहीं मिला था, मात्र उसके, जो एक लम्बी भूगर्भीय नाली प्रतीत होती थी।"[1]

जिस किले को मुगलों द्वारा बनाया हुआ माना जाता है, उसी का पिछला दरवाज़ा स्वयं मुगल लोग ही सीलबंद कर दें, यह एक बेहूदगी है। अतः, यह परिस्थिति भी हमारे उस तर्क की पुष्टि करती है कि यह क़िला एक प्राचीन हिन्दू-किला था। हिन्दू राजवंशियों ने अनेक द्वार बना रखे थे जो नदी-तट पर खुलते थे, क्योंकि हिन्दू राजकुमार और हिन्दू-राजकुमारियाँ हिन्दुस्थान के लोगों से भेंट-मुलाक़ात करते थे तथा पिछवाड़े नदी-घाटों पर लगभग प्रतिदिन ही स्नान करते थे; क्योंकि लगभग प्रति-दिन का ही अपना-अपना धार्मिक माहात्म्य होता था। इसके विपरीत

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका

मुस्लिम लोग हिन्दुओं की भीड़ से घृणा करते थे और उनसे मिलने-जुलने में आशंकित रहते थे। साथ ही, मुस्लिमों को स्नान का नित्य-अभ्यास नहीं था। स्वयं अधिक आत्म-सुरक्षा के लिए भी उन्होंने यह आवश्यक समझा कि किले को जाने वाले कुछ प्राचीन हिन्दू द्वार बंद कर दिये जाएं। खुदाई का यत्न उचित था, तथापि उसको बीच में अधूरा छोड़ देना अनुचित रहा। यह टिप्पणी कि "किन्तु कुछ नहीं मिला था, मात्र उसके, जो एक लम्बी भू-गर्भीय नाली प्रतीत होती थी" उन कर्मचारियों के लिए खुदाई बंद कर देने का बहाना-मात्र रहा हो जिनके मन में आशंका रही हो कि किले की खुदाई करने पर किले के हिन्दू स्वामित्व के कुछ-न-कुछ चिह्न अवश्य ही प्रमाण-स्वरूप प्राप्त हो जाएंगे और उनसे शाहजहानी कथा का भंडाफोड़ हो जाएगा। हमारा यह पक्का विश्वास रहा है कि किले के पीछे वाला भाग ही वह महत्त्वपूर्ण स्थल है जहां पिछले युग के महत्त्वपूर्ण स्मरण-चिह्न नदी की मिट्टी के नीचे दबे पड़े हो सकते हैं।

ऊपर उल्लेख किये गये उद्धरण लालकिले के भीतर बने हुए राजवंशी भवनों की विशालता, विविधता का सुस्पष्ट विचार पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर सकने के लिए पर्याप्त होने चाहिएं। हम यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार मुस्लिम आधिपत्य की छः सौ वर्षीय अवधि में इस किले का भीतरी भाग वैसा ही गंदा, कूड़े-करकट का ढेर, भद्दा लगने लगा था जैसा सभी मुस्लिम शहरों में होता है। किले के भीतर प्राचीन हिन्दू राजवंशी भागों के साथ-साथ घिनौनी झोंपड़ियां छा गयी थीं। अवशिष्ट हिन्दू राजवंशी भागों के न होने पर तो (आज का) यह लालकिला भी बहुत बड़ा भद्दा निर्माण-स्थल ही दिखाई पड़ता। अतः किले के दर्शक को यह विश्वास नहीं करना चाहिए कि वह किले के भीतर आज जो कुछ देखता है, वह वैसा ही है जैसाकि किले के मूल-निर्माण के समय था। किले का भीतरी भाग तो लूट-खसोट, तोड़-फोड़ और विध्वंस की अनेक पीढ़ियों का शिकार हो चुका है।

अध्याय ७

शिलालेख

हम, इस अध्याय में उन सभी इस्लामी शिलालेखों का उद्धरण प्रस्तुत करेंगे, जो लालकिले में मिलते हैं। उनसे, पाठक को यह भलीभाँति ज्ञात हो जाएगा कि उनमें से किसी एक में भी यह उल्लेख नहीं है कि शाहजहाँ ने किले में अथवा उसके आस-पास या लालकिले के बारे में कुछ भी निर्माण-कार्य किया था। इनसे भी बढ़कर बात यह है कि ये शिलालेख नगण्य हैं और ऐसे हैं जिनको तुरन्त ही पहचाना जा सकता है कि ये तो किन्हीं दूषित करने वालों, अपहरणकर्ताओं और विजेताओं के द्वारा थोप दिये गए हैं। भवनों और किलों के निर्माता और स्वामिगण अपनी सम्पत्ति को ऐसे शिलालेखों से विद्रूप नहीं करते। रमणीय स्थानों का भ्रमण करने वाले वे अनुत्तरदायी व्यक्ति ही होते हैं जो बहुमूल्य भवनों पर ऊल-जलूल बातें और अपने नाम लिखकर उनको भद्दा करते हैं। अतः मुगल लोग तो लालकिले में भ्रमण करने वाले अनुत्तरदायी व्यक्तियों के समान ही थे जिन्होंने किले के हिन्दू भागों को असंगत उत्कीर्ण-लेखों द्वारा विद्रूप करने का संकोच भी नहीं किया।

दीवाने-खास में यह शिलालेख है: "गर फ़िरदौस बररूए ज़मीं अस्त, हमीं अस्ता, हमीं अस्ता, हमीं अस्त"—अर्थात् "अगर इस धरती पर कहीं स्वर्ग है, तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।" यह शिलालेख इस मण्डप में दो स्थानों पर लिखा हुआ है। मध्य भवन के ऊपरी भाग में, उत्तर-

दिशा की ओर पूर्व से प्रारम्भ होकर तथा दक्षिण दिशा की ओर पश्चिम से प्रारम्भ होकर—यहीं पर रोहिल्ला गुलाम क़ादिर ने बादशाह शाह-आलम की आँखें फोड़ डाली थीं।"[1]

आइए, हम उपर्युक्त शिलालेख का साक्ष्य के रूप में मूल्यांकन करने के लिए इसकी न्यायिक जाँच-पड़ताल करें। इस्लामी अक्षरों में लिखा होने के कारण यह स्पष्टतः एक मुस्लिम शिलालेख है। किन्तु यह इस बात का सकेत नहीं करता कि इसको किसने लिखा और उसका मन्तव्य इसे लिखते समय क्या था। हमें यह भी नहीं बताया जाता कि इन पंक्तियों की रचना किसने की थी, क्या स्वयं इनका रचनाकार—लेखक ही शिला-लेख लिखने वाला, उत्कीर्णक भी था अथवा उल्टी बात थी ? और, लेखक व उत्कीर्णक को किसने अनुमति दी थी कि वह, वे, इस प्रकार की असंगत निरर्थक और मनमौजी लिखावट से राजवंशी महाकक्ष को विद्रूप कर दें ? यह कल्पना, अनुमान निराधार है कि शाहजहाँ के प्रधानमंत्री सादुल्ला-खान ने इस शिलालेख को उत्कीर्ण करने की इजाजत दी होगी, आदेश दिया होगा। ऐसी निराधार कल्पनाओं को इतिहास में प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए। किसी भी बात का कुछ तो आधार होना ही चाहिए। साथ ही, इससे अन्तर क्या पड़ता है कि यह कोई सादुल्ला खान था, अथवा कोई और खान। इसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होने में यह हमें सहायता कैसे प्रदान कर सकता है ! वास्तव में, हम यहाँ न्यायिक सूक्ष्म-जाँच-पड़ताल का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित करेंगे और यह प्रदर्शित करेंगे कि किस प्रकार यह नामविहीन शिलालेख स्वयं इस बात का प्रमाण है कि शाहजहाँ ने लालकिले का निर्माण नहीं करवाया था।

यह तथ्य, कि न तो उत्कीर्णक ने और न ही पंक्तियों के रचनाकार ने अपनी कोई पहचान प्रस्तुत की है, स्पष्टतः प्रदर्शित करता है कि वे नगण्य, तुच्छ व्यक्ति थे। अब हम एक अति महत्त्वपूर्ण बात पर विचार करते हैं। लालकिले का निर्माता शाहजहाँ होने सम्बन्धी निराधार पूर्व-कल्पनाओं ने विद्वानों को यह अटकल लगाने का अवसर दिया कि ये

१. 'दिल्ली—विगत और वर्तमान', पृष्ठ ३६

पंक्तियाँ अवश्य ही शाहजहाँ के शासन-काल में ही उत्कीर्ण की गयी होंगी। किन्तु इस प्रकार का उपदेश, प्रचार अनुपयुक्त, अनुचित है। सन् १२०६ ई० से लालकिले पर आधिपत्य करने वाले किसी भी मुस्लिम शासक या दरबारी के आदेशानुसार अथवा उसकी मिली-भगत के कारण, अथवा ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही महमूद गजनवी के आक्रमण के समय ही इन पंक्तियों को रख दिया गया होगा। कुछ भी हो, इस शिलालेख को शाहजहाँ के शासन-काल से सम्बद्ध करने का आधार क्या है जबकि स्वयं इस मत की जाँच-पड़ताल चल रही है कि उसने लालकिले का निर्माण करवाया था?

यह स्वीकार कर लेने पर भी कि शाहजहाँ की व्यक्त अनुमति अथवा उसकी मिली-भगत के बाद ही राजवंशी भवन की दीवार पर यह शिलालेख उत्कीर्ण किया गया था, हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वह स्वयं भी हिन्दू किले का मूल-निर्माता न होकर, उस किले पर बलात् अधिकार करने वाला ही था। हम यह बात पहले ही भलीभाँति स्पष्ट कर चुके हैं कि किन कारणों से ऐसे नगण्य, संदर्भ-रहित, असंगत उत्कीर्णांशों का लेखन-श्रेय अपहरणकर्ताओं को ही दिया जाना चाहिए, न कि भवन-निर्माताओं को।

अपराध-खोजने की विधि प्रयुक्त करने और यह निष्कर्ष निकाल लेने के बाद कि शाहजहाँ उस राजवंशी भवन का निर्माता नहीं हो सकता था जिसे उसने स्वयं विद्रूप हो जाने दिया, हम अब उसी शिलालेख की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक जाँच-पड़ताल करेंगे।

शिलालेख में इस भाग को पृथिवी पर प्रत्यक्ष स्वर्ग ही उल्लेख किया गया है। कोई अपहरणकर्त्ता और विजेता या अतिथि और बलात् कब्जा करनेवाला व्यक्ति ही किसी निवास-स्थान को प्रत्यक्ष स्वर्ग घोषित कर सकता है। कोई मूल निर्माणकर्त्ता और स्वामी स्वयं अपनी संरचना को प्रत्यक्ष स्वर्ग कभी भी उल्लेख नहीं करता क्योंकि वह स्वतः अति-विनीत होता है। चाहे अन्य लोग उसके निवास-स्थान की कितनी भी अधिक प्रशंसा क्यों न करें, वह तो अपने इस भवन को झोंपड़ी या कुटिया ही कहता रहता है। इसी प्रकार जिस पति की कानूनी रूप में

विवाहित पत्नी बहुत सुन्दर, रूपवती होगी, वह सार्वजनिक स्थानों में, लोगों में खड़ा होकर कभी भी शेखी नहीं बघारता फिरेगा। वह तो बिल्कुल चुप रहेगा। किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी को भगाकर ले जाता है, तो वह उसको भगा ले-जाने की क्रिया को औचित्यपूर्ण ठहराने के लिए उसके मनोहारी रूप, सौन्दर्य, आकर्षण और लावण्य की जहाँ-तहाँ, खूब चर्चा करता फिरता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान की दृष्टि से देखने पर भी स्पष्ट हो जाता है कि दीवाने-खास को पृथिवी पर साक्षात् स्वर्ग घोषित करने वाला यह इस्लामी शिलालेख सिद्ध करता है कि उन पंक्तियों को उत्कीर्ण करने वाले मुस्लिम लोग इस किले को अपने आधिपत्य में करनेवाले ही थे, किसी भी प्रकार इसके मूल-निर्माता नहीं।

जैसाकि निम्नलिखित शिलालेख प्रदर्शित करता है, मुसम्मन बुर्ज से बाहर निकला हुआ, तुलनात्मक रूप में यह आधुनिक छज्जा है। यह उत्तर-पश्चिमी किनारे से प्रारम्भ होता है और इसमें लिखा है: "विश्व के प्रभु ईश्वर की आराधना और पूजा हो, जिसने इस बादशाह को शहंशाहों का शहंशाह बनाया, जो बादशाहों का बेटा और तैमूर के खानदान का था; वह विश्व का संरक्षक है जो स्वर्गिक स्थानों में अपना दरबार लगाता है अनेकों तारकों सहित; धर्म का उद्धारक, विजय का जनक, विश्वास-आस्था को आगे बढ़ाने वाला, अपने युग के विश्व का स्वामी और विजेता, ईश्वर की स्वयं छाया। मुसम्मन बुर्ज के सामने उसने एक नया बैठने का स्थान बनाया, जो ऐसा था कि सूर्य और चन्द्र उसे देखकर शर्मा रहे हैं। उस प्रसिद्ध कवि को आदेश दिया गया कि वह कोई तिथिक्रम ढूंढे ताकि वह सदैव लिखितरूप में अंकित रहे। उस सैयद ने निम्नलिखित बना दिया: प्राचीन वंश के अकबर शाह का यह सदैव स्थान, तख्त बना रहे, हिजरी सन् १२२३।"[1]

ऊपर उद्धृत "दिल्ली की सात नगरियाँ" शीर्षक पुस्तक के लेखक गोर्डन हर्न इस शिलालेख से यह निष्कर्ष निकालने में बड़ी गलती कर

---

१. गोर्डन हर्न विरचित "दिल्ली की सात नगरियाँ" पुस्तक, पृ० १०४

रहे हैं कि उसमें किसी संरचना का उल्लेख किया गया है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास का ऊपरी तौर पर अध्ययन करने वाले इतिहासकारों का एक बड़ा भारी दोष अनुचित निष्कर्ष निकाल लेना ही रहा है। हमें आश्चर्य यह होता है कि वे लोग किसी निरर्थक शिलालेख के लेखक को किस प्रकार उस भवन का निर्माण-श्रेय दे देते हैं जिस पर वह नगण्य शिलालेख थोप दिया गया है। हम उन लोगों से यह प्रश्न करना चाहते हैं कि संसद्-भवनों या लन्दन के स्तम्भ पर कुछ वाक्यों को लिख देने-वालों अथवा अपना नाम खुरच देनेवाले व्यक्तियों को भी क्या वे उन भव्य भवनों का निर्माण-श्रेय देने को तैयार हैं? किसी भी न्यायालय में अथवा सामान्य मान्य कार्यकलाप में ऐसे व्यवहार पर, ऐसी सरलता पर जग-हँसाई होगी, उपहास किया जाएगा। फिर भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में अतिप्रसिद्ध इतिहासज्ञ भी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, घृणास्पद होने तक, उस असंगत, असम्बद्ध, इस्लामी लेखन-कार्य को देखते ही तथा इस बात का स्वयं अन्तिम, निर्णायक प्रमाण तक मानने की बार-बार ग़लती करते रहे हैं कि उस भवन का निर्माण-श्रेय किसी मुस्लिम व्यक्ति को ही देते रहे हैं, जिस पर इस्लामी लिखावट प्राप्त हुई है। इससे भी अधिक बात यह है कि इतिहासकार इतने उदार रहे हैं कि जो निर्माण-श्रेय स्वयं उस शिलालेखक ने नहीं लेना चाहा है, वहीं इन इतिहासकारों ने उसको स्वयं अपनी ओर से दे दिया है। इस सम्बन्ध में हम दिल्ली की तथाकथित कुतुब-मीनार के निकट एक तोरणद्वार पर उत्कीर्ण पंक्तियों का उल्लेख करना चाहते हैं। वहाँ, कहा जाता है कि प्रथम मुस्लिम सुलतान कुतुबुद्दीन ने २७ हिन्दू सूर्यमन्दिरों को नष्ट करने में अपनी इस्लामी शक्ति का वर्णन किया है। वह यह नहीं कहता कि उसने कुछ निर्माण किया था, तथापि इतिहास के तथाकथित विद्वानों ने अपनी मनमौजावस्था में विश्व को यह विश्वास दिलाकर दिग्भ्रमित किया है कि उसी ने २३८ फीट ऊँचा स्तम्भ बनवाया था।

लालकिले में विद्यमान उपर्युक्त शिलालेख लेखन-क्रिया में पूर्णतः मूर्खता का परिचायक है। इसके पाठ से स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि यह तो किसी ऐसे व्यक्ति का करिश्मा है जिसे अपना समय व्यतीत करने

के लिए कुछ-न-कुछ करना अभीष्ट था। हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि श्री हर्न के अपने अजाने तथापि रहस्यमय पर्यवेक्षण से तुरन्त हो जाती है। शिलालेख का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हुए श्री हर्न ने लिखा है : "जिस पद्धति को 'अबजाद' कहा जाता है, उसके अनुसार अरबी-अक्षरों का मूल्य लगाते हुए अन्तिम वाक्य से हज़ीरा के बाद का काल (वर्ष) प्राप्त होता है। यह तारीख सन् १८१० से मेल खाती है। यह सब कुछ अकबर शाह द्वितीय का अत्यन्त आलंकारिक वर्णन है; यह व्यक्ति वह बादशाह था जो अपनी सुरक्षा और आय के लिए माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर निर्भर करता था।"

उपर्युक्त शिलालेख में किसी भी निर्माण का उल्लेख है तो यह है कि "मुसम्मन बुर्ज के सामने उसने एक नया बैठने का स्थान बनाया।" इन सबका मात्र इतना ही इंगित हो सकता है कि उसके आदेश से एक सोफ़ा वहाँ रख दिया गया अथवा उसने कुछ ईंटों की सहायता से एक पत्थर का टुकड़ा वहाँ रखवा लिया जिसपर बैठकर वह वहाँ शाम को ठंडक में कुछ घंटे बिता सके। क्या वह किसी महान् मुगल के सम्मान की ऐसी बात है जिसे हर समय रटता रहा जाय? तथ्य तो यह है कि उपर्युक्त शिलालेख के आधार पर तो कोई भी समझदार इतिहासकार उस बादशाह को किसी भी भवन-निर्माण का श्रेय नहीं दे सकता। कारण यह है कि इसमें कुछ भी तो नहीं बताया गया कि किसने क्या बनाया, कब बनाया, कितनी धन-राशि व्यय की और निर्माण-कार्य में कुल कितना समय लगा। कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि ब्रिटिश लोगों के पेन्शन-भोगी के रूप में अपना समय बिताते हुए अकबरशाह द्वितीय ने अपने अधिक भाग्यवान् और अधिक शक्तिशाली पूर्वजों द्वारा लूट-खसोट और तोड़-फोड़ के शासनकालीन लालकिले के किसी भाग में अपना नाम भी उत्कीर्ण कर देना चाहा। किन्तु सभी व्यक्ति, सर्वप्रकार की सत्ता-विहीन बादशाह द्वारा कुछ भी निर्मित न किये जाने पर भी सूर्य और चन्द्र को लज्जित कर देने की बात करने की जड़-बुद्धिमय कायरता भली-भाँति देख सकते हैं।

श्री हर्न फिर दूसरे शिलालेख का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं : "इस

छज्जे के पीछेवाले कमरे की भीतरी दीवार में एक बहुत अच्छा शिलालेख है जो इस प्रकार है : "हे तू जिसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं, और दिल बन्द है, सावधान हो ! हे तू, जिसकी आँखें बन्द हैं और पैर भारी दलदल में धँसते जा रहे हैं, जाग जा ! हे तू, जो पश्चिम की तरफ़ जा रहा है, मुख पूर्व की ओर है, पीछे देख रहा है, अपने गन्तव्य का ध्यान कर !"[1]

पाठक प्रश्न कर सकता है कि उपर्युक्त शिलालेख की संगति, तुक क्या है ? उसका यह प्रश्न पूर्णतः उचित होगा। लालकिले का ऐतिहासिक अध्ययन करनेवालों ने स्वयं से भी यह प्रश्न करने का कभी साहस नहीं किया था : इस शिलालेख को किसने लिखा ? लेखक का मन्तव्य क्या था ? क्या विश्व इस शिलालेख की प्राप्ति से कुछ अधिक बुद्धिसम्पन्न हो गया है ? किसी भी अन्वेषक के लिए ये प्रश्न संगत होने चाहिएँ। उपर्युक्त ऊलजलूल शिलालेख से यदि कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो वह केवल यही है कि न तो शिलालेख और न ही उसका इस्लामी संरक्षक किसी भी प्रकार, किले का स्वामी था। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि किसी भवन के ऊपर कुछ लिखकर उस भवन को विद्रूप करनेवाला व्यक्ति तुरन्त उस भवन का विजेता और अपहरणकर्ता पहचाना जाना चाहिए, किन्तु कभी भी अधिकार-प्राप्त स्वामी नहीं। भवन को स्वयं बनवानेवाला अथवा उत्तराधिकार में भवन को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति असंगतिपूर्ण, ऊलजलूल लिखावटों द्वारा न तो स्वयं भवन को विद्रूप करता है, और न ही दूसरे को ऐसा दुष्कृत्य करने देता है।

हम अब एक अन्य शिलालेख का विचार करते हैं। श्री हर्न कहते हैं : "मेहराब की भीतरी ओर, जो संगमरमरी जाली के ऊपर 'ख्वाबगाह' पर मेहराब बनाती है, चार शिलालेख हैं जिनमें से दाईं ओर लिखा हुआ नीचेवाला शिलालेख इस प्रकार है : विश्व का स्वामी, स्वर्गिक भवन का संस्थापक, शहाबुद्दीन मुहम्मद द्वितीय, अति सौभाग्यशाली घड़ी में जन्म लेने वाले, शाहजहाँ बादशाह गाजी ने उदारता का द्वार विश्व के

१. "दिल्ली की सात नगरियाँ", पृष्ठ १०४-१०५

लोगों के लिए खोल दिया।"[1]

पाठकगण उपर्युक्त शिलालेख का अध्ययन समालोचनात्मक दृष्टि से करें। इस शिलालेख में बादशाह शाहजहाँ का नाम लिखा हुआ है, और उसको स्वर्गिक भवन का संस्थापक बताया गया है। यह उस भवन का नामोल्लेख नहीं करता। क्या इसका अर्थ उस मण्डप से है जिसमें यह शिलालेख लगा हुआ है अथवा सारा किला ही है? यह 'संस्थापना'—शब्द का विस्तार भी प्रकट नहीं करता। ऐसी छोटी-मोटी पर्ची के भरोसे किसी भवन पर अपना दावा, अपने स्वामित्व का अधिकार प्रस्तुत करनेवाले को किसी भी न्यायालय द्वारा तिरस्कृत करके बाहर धकेल दिया जाएगा। स्वयं शिलालेख भी तो ऐसा दावा नहीं करता। वह हमें यह नहीं बताता कि बनाया क्या गया था, कीमत कितनी थी, किसने रूप-रेखांकन तैयार किया था, इसे प्रारम्भ किसने किया था और यह पूर्ण कब हुआ था। किसी भी शिलालेख को सुसंगत होने के लिए ये सभी बातें उसमें समाविष्ट होनी ही चाहियें। यदि शाहजहाँ ने वास्तविकता में ही लालकिला निर्माण कराया होता, तो उसने इधर-उधर की बातें करने की बजाय, बिल्कुल स्पष्ट और सीधे-सादे शब्दों में वैसा कह दिया होता। क्या वह इतना संकोची अथवा सलज्ज था? यदि वह अथवा उसके उत्तराधिकारी सचमुच संकोची अथवा सलज्ज रहे होते, तो उन्होंने कभी वे असंगत,बुद्धि-हीनतावाले शब्द ऐसी अत्यन्त आलंकारिक भाषा में न रखे होते जहाँ उनकी अपनी नशीली, औषध-सेवी और कामुक तथा बादशाही इस्लामी शान-शौकत की तुलना में स्वर्ग, सूर्य व चन्द्र को लज्जित होते हुए उल्लेख किया गया है।

लाहौर-दरवाज़े अर्थात् जिस दरवाजे से दर्शकगण लालकिले के भीतर प्रवेश करते हैं—उसके बाहर एक शिलालेख है। पाठकों को पहले ही जानकारी दी जा चुकी है कि किले के स्वामियों और निर्माणकर्ता प्राचीन हिन्दुओं ने किले के दोनों प्रमुख नगर-द्वारों के सम्मुख उठाऊ-पुलों की व्यवस्था की थी। समय व्यतीत होते-होते, किले के विदेशी मुस्लिम

१. "दिल्ली की सात नगरियाँ", पृ० १०४

ग्रौर ब्रिटिश ग्राधिपत्यकर्ताग्रों ने उन उठाऊ-पुलों को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर पुलियों का निर्माण करा दिया था। लाहौर दरवाजे के बाहर, ५२ फीट लम्बी ग्रौर २७ फीट चौड़ी एक पुलिया के बारे में मेहराब पर लिखे शिलालेख में लिखा है—

"ग्रो, स्वाधीन
शासन के पाँचवें वर्ष में,
१२२६ हिजरी, १८११ ईस्वी

(शान-शौकत में) जमशेद बादशाह के समान, मुहम्मद ग्रकबर बादशाह गाजी, साहिब किरण सानी, दिलावर-उल-दौला रौबर्ट मोकर्सन बहादुर, दलेरजंग यह शानदार भवन निर्माण किया गया था।"[1]

उपर्युक्त शिलालेख में जिस 'शानदार भवन' का उल्लेख किया गया है, वह एक छोटी-सी पुलिया है जो उठाऊ पुल को समाप्त करने के बाद बनाई गई है। मेहराबदार पुल किले के प्रवेशमार्ग के पास खाई तक फैला है। ब्रिटिश लोग पर्याप्त चालाक थे कि उन्होंने इस कार्य का भुगतान ब्रिटिश संरक्षण में किले के भीतर निवास करनेवाले पेंशन-भोगी मुगल बादशाह से ही कराया। इस प्रकार किले के भीतर कुछ भी निर्माण कराने की बात तो दूर रही, हम मुगलों में से एक व्यक्ति को किले के बाहर यह छोटा-सा सड़क-पुल (पुलिया) बनाने का श्रेय-भर दे सकते हैं। मुगलों ने किले के भीतर जो कुछ किया वह तो मात्र विध्वंस ग्रौर ग्रपवित्रीकरण है।

"(ख्वाबगाह के) बीच के कमरे की उत्तरी ग्रौर दक्षिणी दीवारों पर मेहराबदार दरवाजे हैं जो संगमरमर की जाली से ढके हुए हैं; उन मेहराबों के नीचे शिलालेख हैं, यह कार्य शाहजहाँ के वजीर सादुल्ला खाँ का है। इस कमरे के दरवाजे के बाहर पूर्वी भाग में एक अन्य शिलालेख है—यह भी उसी व्यक्ति का कार्य कहा जाता है।"[2] दक्षिणी मेहराब पर ग्रंकित शिलालेख पुस्तक के पृष्ठ २३५ पर दिए गए पादटीप

१. "दिल्ली के पुरातत्त्वीय ग्रौर स्मारक ग्रवशेष", पृ० २१८
२. वही, पृ० २३५

में उल्लेख है। यह इस प्रकार है: "ईश्वर महान् है, ईश्वर पवित्र है। वे चित्रित भवन और आकर्षक निवास-स्थान कितने सुन्दर हैं। (वे) स्वर्ग का ही एक भाग है। मैं कह सकता हूँ कि महान् आत्मा देवदूत भी उनको देखने के लिए आतुर हैं। यदि लोग (विश्व की) सभी दिशाओं और स्थानों से (यहाँ) उनके चारों ओर चक्कर लगाने को आएँ जैसे वे पुराने स्थान (काबा) के चारों ओर परिक्रमा करते हैं, तो यह ठीक होगा; या फिर, जैसे दोनों विश्वों के लोग अपने (काबा-स्थित) काले-पत्थर की यशस्वी देहरी को चूमने को दौड़ पड़ते हैं, वही ठीक होगा। इस महान् किले का प्रारम्भ जो स्वर्ग के राजमहल से भी ऊंचा है और सिकन्दर की दीवार का प्रतिद्वन्द्वी है; और इस चमकदार भवन का; और हयातबख्श बाग का, जो उन भवनों के लिए ऐसा ही है जैसा शुद्ध शरीर के लिए आत्मा और सभा के लिए रोशनी; और शुद्ध नहर का, जिसका शुभ्र निर्मल जल दृष्टिवान् व्यक्ति को दर्पण के समान लगता है और बुद्धिमान् को विश्व के रहस्यों का अनावरण करनेवाले के समान लगता है; और पानी के झरनों का जिनमें से प्रत्येक को तुम कह सकते हो कि वह प्रातःकाल की सफ़ेदी, श्वेतता है, या (भाग्य की) मेज और कलम लेखनी से ली गई रहस्य की गोली है, और उनसे खेलते हुए—चलते हुए फ़व्वारों का, जिनमें से प्रत्येक प्रकाश का बादल, समृद्ध है।"

उपर्युक्त शिलालेख किसी विजित, स्व-अधिकार कब्जे में लिए गए भवन पर अनधिकृत प्रवेशकर्ता और अपहरणकर्ता व्यक्ति द्वारा असंगत उत्कीर्ति ठूंस दिये जाने का विशिष्ट उदाहरण है। स्वामी, निर्माता और किसी भवन के प्रारम्भकर्ता लोग अपनी स्वयं की संरचनाओं पर कभी ऐसी असंगत पंक्तियाँ नहीं लिखते। यह इस बात का द्योतक है कि मुस्लिम लोग, जिन्होंने दिल्ली के लालकिले में ऊलजलूल इस्लामी शिलालेखों को स्थापित किया, सब-के-सब उस लालकिले के अपहरणकर्ता ही थे।

हम अब एक अन्य इस्लामी शिलालेख का विचार करेंगे। उसका भी इसी प्रकार, न कोई सिर है और न ही पैर। उसकी मेहराब पर अंकित इस शिलालेख में वर्णन है: "स्वर्ग-वासियों को मिलने के लिए और पृथ्वी

के निवासियों को पुरस्कार देने के लिए चमकदार मोतियों की वर्षा करते हुए; जीवन के जल से पूरित तालाब का (और) शुद्धता के कारण, सूर्य के प्रकाश का प्रतिद्वन्द्वी राजगद्दी के १२वें पुण्य वर्ष के १२वें जिलहाज को घोषित किया गया था जो १०४८ हिजरी बाद के अनुरूप है—मानव को प्रसन्नता की घड़ियाँ। विश्व के स्वामी, पृथिवी के प्रभु के शुभ चरणों की शक्ति से, उन भवनों के प्रारम्भकर्ता, सौभाग्य के द्वितीय स्वामी, विजेता बादशाह शाहजहाँ द्वारा पचास लाख रुपयों की कीमत पर इसकी पूरी निर्मिति हुई; विश्व के लिए अनुकम्पा-द्वार राजगद्दी के २१वें शुभ वर्ष में २४वें रबी-उल-अव्वल के दिन खोल दिया जो १०५८ हिजरी बाद होता है।"

कदाचित् यही वह शिलालेख है जिसने कुछ इतिहासकारों को ये विचार प्रकट करने को प्रेरित किया है कि शाहजहाँ ने अपनी राजगद्दी के १०वें वर्ष में दिल्ली का लालकिला बनवाना शुरू किया था और अपनी राजगद्दी के २१वें वर्ष में इसका निर्माण पूरा कर दिया था तथा इस पर कुल खर्चा पचास लाख रुपया हुआ था। चूंकि शाहजहाँ गद्दी पर सन् १६२८ में बैठा था, इसलिए उपर्युक्त शिलालेख अभिव्यक्त करता है कि लाल-किला लगभग सन् १६४० से १६४६ तक निर्माणाधीन रहा था।

किन्तु उपर्युक्त शिलालेख इस बात का अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार थोथे दावे भी तथाकथित गैर-व्यावसायिक सरलता-सम्पन्न इतिहासकारों ने अन्धाधुन्ध ग्रहण कर लिये हैं, मान्य किये हैं। हम अब उन अनेक असंगतियों-विसंगतियों का उल्लेख करेंगे जिनके कारण हिन्दू लालकिले में इस इस्लामी शिलालेखगत लेखन-कार्य को वैध साक्ष्य के रूप में अस्वीकार करना पड़ेगा। सर्वप्रथम बात यह है कि इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इस शिलालेख का रचनाकार कौन है। कहने का अर्थ यह है कि शिलालेख हमको सूचित नहीं करता है कि किस व्यक्ति के आदेश पर यह शिलालेख उत्कीर्ण किया गया था। इस शिलालेख को उत्कीर्ण करने की तारीख का कोई उल्लेख नहीं है, यह भी उल्लेख नहीं है कि किस स्वामी के आदेशों पर यह शिलालेख तैयार किया गया था—उस शक्तिशाली स्वामी का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। यह तो उस प्रकार का

लिखित कागज हैं जिसमें न किसी के हस्ताक्षर हैं और न ही लेखन की तारीख। स्पष्ट है कि इस प्रकार की कृति में वैध साक्ष्य होने के सभी गुणों, लक्षणों का पूरा-पूरा अभाव है।

इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि किसी चाटुकार मुस्लिम उत्कीर्णक ने, जो बाद के मुगलों की निष्प्रयोजन कठपुतली था, अच्छा इनाम प्राप्त करने के लिए, शाहजहाँ के पीढ़ियों बाद अपने निष्प्रयोजन और निःशक्त बादशाह की बादशाही-निस्सारता में सम्मिलित होने के लिए, उस शिलालेख को अंकित कर दिया। स्वयं शाहजहाँ के शासनकाल में ही यह दावा करना—किले को बनवाने का कोई भी दावा करना संभाव्य-व्यावहारिक नहीं था क्योंकि उसकी सारी प्रजा को मालूम था कि शाहजहाँ ने लालकिला नहीं बनवाया था। किन्तु कुछ पीढ़ियों बाद जब जन-मानस से इतिहास धुंधला, विस्मृत हो चला था, ऐसे कपटपूर्ण शिलालेख को चाटुकार इस्लामी दरबार के निजी, गुप्त-कक्ष में लगादेना सम्भव हो गया क्योंकि तब तक मुगलों का इस लालकिले पर इतने लम्बे काल तक आधिपत्य रह चुका था कि वे इस कार्य में सफल हो सकते थे कि भावी सन्तानों को यह कहकर ठगा जा सके कि उन मुगलों के एक पूर्वज ने ही लालकिले का निर्माण करवाया था।

अन्य संदेहास्पद विवरण यह है कि इस शिलालेख में बहुत सारे असंगत शब्दों की भरमार है। किसी विशेष भाव,विचार-वस्तु तक पहुंचने में पर्याप्त समय लगता है और जब ऐसा प्रतीत होता है कि अब शाहजहाँ की ओर से इसमें कोई दावा प्रस्तुत किया जाना है, तब यह चालाकी से बिगड़ जाता है और इधर-उधर हो जाता है। यह राजगद्दी पर बैठने के १२वें वर्ष में कुछ सुखद घड़ियों के होने की बात करता है, परन्तु स्पष्ट रूप में उन सुखद घड़ियों का वर्णन करने से रह जाता है। फिर, समान रूप में रहस्यपूर्ण और अस्पष्टतापूर्वक 'इन भवनों' को पूरी तरह बन जाने की बात करता है किन्तु उन भवनों की संख्या अथवा उनका नामोल्लेख नहीं करता है। स्पष्ट है कि शिलालेखक और उसका शाही स्वामी किसी यथार्थता के साथ ऐसा बिल्कुल झूठा,कपटपूर्ण दावा प्रस्तुत करने से संकोच करते थे। क्या 'ये भवन' शब्दावली में लालकिले की बाहरी विशाल

प्राचीर निहित है, अथवा इसके अन्दर के कुछ भवनों के लिए ही यह प्रयुक्त हुई है, या सभी भवनों की द्योतक है ? यदि दावा सच्चा, वास्तविक रहा होता, तो लेखक ने यह बताना शुरू किया होता कि भूमि किससे ली गयी थी, उसकी प्रतिपूर्ति कितनी की गई थी, किले का प्रारूप किसने तैयार किया था, इसकी क्या जरूरत आ पड़ी थी जबकि शाहजहाँ आगरा में ही रहना चाहता था। जहाँ विश्वास किया जाता है कि उसने अपनी पत्नी मुमताज के लिए ताजमहल नामक अनुपम सौन्दर्ययुक्त एक स्वप्निल मक़-बरा बनवाया था वे कौन-कौन-से भवन थे जिनको शाहजहाँ ने बनवाया था ? क्या उनमें एक मस्जिद, रसोई, अनेक राजमहल, कूप और तालाब भी सम्मिलित थे ? चूँकि इस शिलालेख में यह दावा नहीं किया गया है कि शाहजहाँ ने विशाल लालकिले की बाहरी दीवार भी बनवायी थी, अतः यह स्पष्ट है कि लालकिले की कम-से-कम दीवार तो पूर्वकालिक हिन्दू संरचना है। यह ठीक भी यों होगा कि अन्य किसी मुस्लिम बादशाह ने इसे बनवाने का दावा नहीं किया है। यदि, उपर्युक्त शिलालेख से हमने जिस प्रकार तर्क प्रस्तुत किया है, किसी हिन्दू शासक ने शाहजहाँ से शताब्दियों पूर्व लालकिले की मात्र बाहरी प्राचीर का ही निर्माण कराया था, तो क्या यह सम्भव है कि उसने मात्र बाह्य आवरण ही इसलिए बनवाये थे कि भविष्य में किसी तारीख को कुछ अज्ञात विदेशी इस्लामी अपहरणकर्ता उन आवरणों को उपयुक्त राजमहलों का निर्माण करवाकर भरवा देंगे ?

उपर्युक्त तर्क से यह स्पष्ट है कि दीवार और अन्दर बने हुए महल, दोनों ही, पूर्वकालिक हिन्दू मूल के होने के कारण, इस्लामी शिलालेख अस्पष्ट रूप में इस बात से इधर-उधर हो जाता है और अप्रकटरूप में, असावधान-मानस के सम्मुख यह सुझाव प्रस्तुत कर देता है कि यह व्यक्ति शाहजहाँ ही हो सकता है जिसने लालकिला बनवाया होगा।

यदि यह शिलालेख किले के भीतर किसी केन्द्रीय, मुख्य स्थल पर लगा होता और फिर स्पष्ट रूप में घोषित करता कि बाहरी दीवार और इसके भीतर चारों ओर बने हुए भवन शाहजहाँ द्वारा बनवाये गए थे, तो उसके कहने में कुछ वजन होता, बशर्ते उसमें निर्माणाधीन अवधि, निर्माण-

मूल्य, प्रयोजन और रूप-रेखांकनकारों के बारे में अन्य संगत विवरणों का भी उल्लेख होता। साथ ही, शिलालेख में समाविष्ट जानकारी की पुष्टि शाहजहाँ के दरबारी कागज़ों यथा रूपरेखांकन-चित्र, दैनंदिन व्यय-पत्रक, मज़दूरों की नाम-सूची, विपत्रों, रसीदों, सर्वेक्षण-प्रतिवेदनों और निर्माण-आदेश आदि में से एकाध से तो होनी ही चाहिए। किन्तु शाहजहाँ के दरबारी-अभिलेखों में ऐसे किसी भी कागज़ का एक टुकड़ा भी नहीं है।

एक अन्य बात जिसकी ओर हम पाठक का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, वह इस शिलालेख का समापन-अंश है जिसमें कहा गया है कि विजेता बादशाह शाहजहाँ ने क़िले के द्वार १०५८ हिजरी सन् में खोल दिये थे। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि शाहजहाँ के पिता जहाँगीर के शासनकाल में यह लालकिला बहुत समय तक उपयोग में नहीं आया था और फिर जब शाहजहाँ ने कुछ लम्बी अवधि तक अपना निवास-स्थान दिल्ली में रखने का निश्चय किया, तब उसने किले को खुलवा दिया था और शाही निवास के योग्य करवा लिया था।

हमारा यह निष्कर्ष इस तथ्य से परिपुष्ट होता है कि उपर्युक्त शिलालेख, जिसमें किले का निर्माण-श्रेय शाहजहाँ को देने का अस्पष्ट दावा प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है, किले की भीतरी इमारतों में से एक भवन के दुर्बोध स्थान पर स्थित है और वह शिलालेख स्वयं भी अकेला नहीं है। इसके साथ ही अन्य नगण्य असंगत लिखावटों का समूह भी है। संगति से ही मनुष्य की पहचान होती है, उसी प्रकार हम चाहते हैं कि सभी इतिहास-लेखक भी यह अनुभव कर लें कि यही बात शिलालेखों पर भी चरितार्थ होती है। ऐतिहासिक अन्वेषण से सम्बद्ध सभी व्यक्तियों को यह बात मार्गदर्शक सिद्धान्तों में से एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में स्मरण रखनी चाहिए। यदि दिल्ली के लालकिले में एक और मात्र एक ही ऐसा इस्लामी शिलालेख होता जिसमें शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने का दावा किया गया होता, तो उसे स्वीकार्य-साक्ष्य के रूप में मान्य किया जा सकता था। किन्तु चूंकि लालकिले में बिना सिर-पैरवाले निष्प्रयोजन, निरर्थक,ऊलजलूल शिलालेखों के रूप में इस्लामी उत्कीर्ण

का एक पूरा समूह ही विद्यमान है, अतः स्पष्ट है कि वे अस्पष्ट-घुमाव-फिराववाले, झूठे चापलूसीभरे इस्लामी सुझावों के माध्यम से इतिहास-ज्ञों को यह विश्वास दिलाकर पथभ्रष्ट, दिग्भ्रमित और ठंडा करना चाहते हैं कि लालकिले को बनवानेवाला व्यक्ति शाहजहाँ या अन्य कोई मुस्लिम बादशाह अथवा अन्य ओहदेदार ही था।

ऊपर उल्लेख की गयी कीमत अर्थात् पचास लाख रुपये के बारे में हम मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखन की दो धोखेपूर्ण वृत्तियों, लक्षणों की ओर इतिहास-लेखकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। चाटुकार मुस्लिम लेखक अपने शाही संरक्षकों की शाही शान-शौकत की झूठी भावनावश उनके खर्चों को सभी प्रकार से बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते थे। इस बात पर एच० एम० इल्लियट ने जहाँगीरनामा और अन्य मुस्लिम तिथिवृत्तों के समा-लोचनात्मक अध्ययन में पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस प्रकार, जब कोई मुस्लिम तिथिवृत्तकार दावा करता है कि उसके स्वामी ने पचास लाख रुपये व्यय किये, तब यह व्यय-राशि पाँच सौ रुपये भी हो सकती थी। इतना ही नहीं, वह अत्यल्प राशि भी अत्यन्त क्रूर उपायों द्वारा अपनी निर्धन असहाय प्रजा से वसूल की गई होगी।

मध्यकालीन इस्लामी-लेखन की व्याख्या करते समय अन्य जिस शब्द की ओर सावधानी बरतने की आवश्यकता है वह 'बनाया'—'बनवाया' है जिसका अर्थ केवल इतना है कि इसका भाव यही मानना चाहिए कि सफ़ाई करायी गयी, झाड़ा-बुहारा गया या अधिक-से-अधिक यही कि आवास के लिए मरम्मत आदि की गयी। इस प्रकार जब पूर्वोक्त शिला-लेख उल्लेख करता है कि पचास लाख रुपये व्यय किये गए थे, तब उससे जो कुछ अर्थ निकालना चाहिए वह मात्र इतना ही है कि चूंकि प्राचीन हिन्दू लालकिला मुस्लिम बादशाहों द्वारा पर्याप्त समय तक उपयोग में नहीं लाया गया था, अतः इसे शाहजहाँ के निवास-योग्य बनाने के लिए झाड़ा-बुहारा गया और साफ़ किया गया था तथा इस समस्त कार्य के लिए कुछ सौ अथवा कुछ हजार रुपये व्यय किये गए थे।

उर्युपक्त विशद-विवेचन से उन लेखकों और अन्वेषकों का एक घोर दोष प्रकट हो जाता है जो आधुनिक ऐतिहासिक पाठ-सामग्री के लिए

उत्तरदायी हैं। उन लोगों ने किसी भी इस्लामी-लेखन में अत्यन्त खेद-जनक, बालसुलभ विश्वास जमा लिया है, और यह भी देखने की आवश्यकता नहीं समझी कि किसने क्या और कैसे कहा है, तथा बिना सोचे-विचारे ही अनुचित निष्कर्ष निकाल लिये हैं। इसका परिणाम नितान्त दुःखद स्थिति है अर्थात् भारतीय इतिहास अत्यन्त विवेकशून्य और निपट सफ़ेद झूठों के ऊबड़-खाबड़ भार से बोझिल हो गया है। ये झूठ विगत कई शताब्दियों में इतिहास-शिक्षण के रूप में सरकारी और शैक्षिक-संरक्षण के माध्यम से विश्व-भर में फैल चुके हैं और अब संसार-भर के लोगों को उन ज्ञान-विरोधी असत्य बातों को अन-सीखा कराने में अत्यन्त कठिनाई सिद्ध हो रही है।

उसी भवन में कुछ और भी पद्य हैं जो पूर्व-उद्धृत असंगत इस्लामी उत्कीर्णांशों के समूह में एक संख्या और बढ़ा देते हैं। पद्यों में कहा है : "विश्व के सम्राट्, शाहजहाँ बादशाह, अपने सौभाग्य से उदारता में द्वितीय, भगवान् की कृपा से अपने राजोचित राजमहल में उसी भव्य प्रकार से सदैव जीवित रहें, जिस प्रकार सूर्य आकाश में (जीवित) रहता है। ईश्वर करे उसका यह सौभाग्यवाला राजमहल सर्वोच्च आकाश का स्पर्श कर ले, जब तक यह भवन बिना नींव के खड़ा रह सके। यह सुसज्जित राजमहल आश्चर्यजनक रूप में आकर्षक है जिस प्रकार स्वर्ग सैकड़ों सौन्दर्यों से अलंकृत है। इसकी स्तुति में महानता धर्मग्रंथों के एक पाठ के समान है। अनुकम्पा इसके महाकक्ष के आलिंगन में है (शब्द विलुप्त हैं) जो भी इसके सम्मुख सत्य-हृदय से झुकता है, उसका सम्मान नदी के सम्मान के समान बढ़ जाता है। जिस समय यह राजप्रासादीय महाकक्ष बना, इसने सूर्य के मुख के सम्मुख दर्पण प्रस्तुत कर दिया। इसकी दीवार का सम्मुख भाग इतना अलंकृत है कि चीन के चित्रकार भी इसकी तुरंत प्रशंसा करने लगे। समय ने अपने संरक्षणशील हाथ इसके ऊपर फैला रखे हैं। आकाश ने अपनी ऊँचाई इससे ही ग्रहण की है। नदी के समान इसके फ़व्वारों और तालाबों में आकाश अपना मुख धरती के जल से धोता है। यह स्थान बादशाहों में प्रथम का आसन होने के कारण, अन्य सभी भवनों का बादशाह है।"

इन पद्यों में भी यह नहीं बताया जाता कि किसने, कब और किस प्रयोजन से यह भवन बनवाया था, किसने इसके सुन्दर फ़व्वारों और जल-प्रवाहिकाओं का रूप-रेखांकन बनाया था, पानी कहाँ से लाया गया था और वह किस उपयोग में लाया गया था। स्पष्टतः यह एक पूर्वकालिक हिन्दू राजमहल था।

यहाँ हम ऐतिहासिक अनुसंधान का एक अन्य नियम प्रस्तुत करते हैं। स्वामी-निर्माता कभी भी अपने भवन की शेखी नहीं बघारेगा, परन्तु अपहरणकर्ता अवश्य ही ऐसा करेगा। इसलिए जब भी कभी कोई व्यक्ति या समुदाय किसी भवन की प्रशंसा अतिशय प्रशंसाभरे शब्दों में करता है, तब प्रारम्भिक अवस्था में ही उस व्यक्ति या समुदाय को उस भवन का अथवा जिस भी वस्तु को वह बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत कर रहा हो, उसका अपहरणकर्ता समझ लिया जाना चाहिए।

मुसम्मन बुर्ज पर लगे हुए एक शिलालेख का पूरा हवाला इस अध्याय के प्रारम्भिक भाग में पहले ही दिया जा चुका है। वहाँ के अन्य शिलालेख में यह अंकित है : "हे ! (तू, जिसके) पैरों में बेड़ियाँ लगी हुई हैं, और हृदय पर ताला लगा हुआ है, सावधान ! (तू) जिसकी पलकें सिली हुई हैं और जिसके पैर कीचड़ में गहरे धँसे हुए हैं, सावधान ! तू पश्चिम की ओर जाना निश्चित है; किन्तु तू हे पथिक ! तूने अपने गन्तव्य, लक्ष्य की ओर पीठ फेर ली है, सावधान।"[1]

अकबर द्वितीय उस दीर्घा में खाली बैठकर अपना समय व्यतीत करने का अभ्यस्त हो चुका था, और चूँकि सुरा, सुन्दरी व काव्यकला विलास के वे साधन थे जिनसे इस्लामी बादशाह आदि अपनी न बीतनेवाली अनन्त घड़ियाँ मनोविनोद में व्यतीत करते थे, इसलिए किसी खुशामदी चापलूस ने उस दीर्घा में कुछ निरर्थक पद्य उत्कीर्ण करके अपने शहँशाह का मनोविनोद किया था।

हम यहाँ पाठक का ध्यान भवनों पर लगे शिलालेखों के मूल्यांकन के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विचार की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

---

१. "दिल्ली के पुरातत्त्वीय और स्मारक अवशेष", पृष्ठ २३६

यह सर्वज्ञात है कि जब कोई स्वामी-निर्माता अपने भवन पर कुछ लिखवाता है तो भवन-निर्माण का उद्देश्य तथा मात्र निर्माण-तिथि के ही सम्बन्ध में कुछ संगत बातें लिखवाता है। हम सब जानते हैं कि ऐसे वर्णनों से युक्त नींव के पत्थर प्रायः भवनों में लगे रहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि स्वामी-निर्माता इस बात का विशेष ध्यान रखता है कि अपरिचितों और अनधिकृत प्रवेशकर्त्ताओं की तो बात ही क्या है, स्वयं उसके अपने प्रिय लाड़ले बच्चे भी असंगत, ऊलजलूल बातें लिखकर भवन को विद्रूप न करें। इसके विपरीत, हम जानते हैं कि अनुत्तरदायी आगन्तुक अथवा किरायेदार असंगत बातें लिख-लिखकर अन्य लोगों के भवनों को विद्रूप करते रहते हैं। मानव-स्वभाव के इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए, दिल्ली के लालकिले में बहुत सारे और अनुचित इस्लामी शिलालेख स्वयं इस बात का प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि मुस्लिम लोग एक प्राचीन हिन्दू किले से उत्तरकालीन किराएदार थे, और इसलिए इसके निर्माता किसी भी प्रकार नहीं हैं।

ऊपर उल्लेख किये गये एक शिलालेख में अंकित पचास लाख रुपयों की राशि भी एक काल्पनिक, कपटपूर्ण संख्या है क्योंकि सुप्रसिद्ध इतिहासकार कीन ने कहा है : "लालकिला, या किला मुबारक या किला शाहजहानाबाद के बारे में कीमत एक सौ लाख बतायी जाती है जो इसकी दीवारों और राजमहलों में समानरूप से लगी थी।"[1]

चूंकि कीन ने किसी समकालीन प्राधिकरण का उल्लेख नहीं किया है, इसलिए स्पष्ट है कि उसने मुस्लिम प्रवंचनाओं और किंवदन्तियों पर विश्वास किया है। क्योंकि हमारे द्वारा ऊपर उद्धृत शिलालेख में कुछ भीतरी भवनों पर खर्च की गयी धनराशि पचास लाख रुपया उल्लेख की गयी है, अतः यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होना चाहिए कि किसी कल्पनाशील मुस्लिम ने बाहरी दीवार पर खर्च को भी सम्मिलित करके कुल धन-राशि को दुगुना कर दिया है। किन्तु जैसा पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है, हमारे द्वारा उद्धृत शिलालेख में केवल कुछ भवनों का ही

---

१. कीन की निर्देशिका, पृष्ठ १२०

अस्पष्ट सन्दर्भ है, अतः स्पष्ट है कि शाहजहाँ ने स्वयं अथवा उसकी ओर से किसी ने भी कभी यह दावा प्रस्तुत नहीं किया कि शाहजहाँ ने लाल-किले की बाहरी दीवार बनवायी थी। और चूंकि अन्य किसी व्यक्ति ने बाहरी दीवार बनवायी थी, अतः स्पष्ट है कि उसी ने अन्दरवाले राज-महल भी बनवाए थे क्योंकि कोई भी व्यक्ति केवल बाहरी दीवार तब तक नहीं बनवाता जब तक कि उसके अन्दर के राजमहलों को सुरक्षित न रखना हो।

कीन के पर्यवेक्षण से यह भी स्पष्ट है कि विदेशी मुस्लिम आक्रमण-कारियों से पूर्व जिसको प्राचीन हिन्दू लोग लालकिला कहा करते थे, उसी को शाहजहाँ के शासनकाल में नाम बदलकर किला मुबारक या किला शाहजहानाबाद कहा जाने लगा था। 'मुबारक' शब्द 'एहसानमन्दी' अथवा 'बधाई' का द्योतक है। हिन्दू लालकिले के साथ यह इस्लामी शब्द लगाने का महत्त्व प्रत्यक्ष है अर्थात् विदेशी मुस्लिम लोग प्रसन्न थे कि अल्लाह ने उनको किला ऐसे दे दिया था मानो वह कोई पका सेब हो। खुदा ने उनको छप्पर फाड़कर यह किला सौंप दिया था। किला शाहजहानाबाद का स्पष्टीकरण इस तथ्य से होता है कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली नामक प्राचीन हिन्दू नगर का नाम बदलकर ही शाहजहानाबाद रख दिया था और इसीलिए लालकिला, जो उस नगरी का एक भाग था, किला शाहजहानाबाद के नाम में बदल दिया गया था।

अध्याय ८

शाहजहाँ का पिछले दरवाज़े से प्रवेश

एक अत्यन्त छोटा तथापि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवरण हमें मिल गया है जो निर्णायक रूप से सिद्ध करता है कि शाहजहाँ तो दिल्ली के लाल-किले का मात्र आधिपत्यकर्ता ही था, किसी भी प्रकार इसका निर्माता नहीं।

उस विवरण का सम्बन्ध उस मार्ग से है जिससे शाहजहाँ दिल्ली के लालकिले में सर्वप्रथम प्रविष्ट हुआ था। हम जैसा पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, पुरानी दिल्ली के नगर की ओर से लालकिले में प्रवेश करने के लिए दो भव्य प्रवेशद्वार हैं। इनमें से एक लाहौर-दरवाजा और दूसरा दिल्ली-दरवाज़ा कहलाता है।

किले को देखने के लिए जानेवाले दर्शक प्रायः लाहौर-दरवाज़े से ही किले में प्रविष्ट होते हैं क्योंकि पुरानी दिल्ली का मुख्य राजमार्ग, जो चाँदनी चौक कहलाता है, सीधा लाहौर-दरवाज़े पहुंचता है। यदि शाहजहाँ पुरानी दिल्ली और लालकिले का निर्माता रहा होता, तो उसने पूरी शान-शौकत रस्म-रिवाज के साथ, लाहौर-दरवाज़े से राज-प्रवेश किया होता जिस अवसर पर सड़कों के दोनों ओर भारी भीड़ ने खड़े होकर अपने बादशाह का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया होता।

किन्तु इस सामान्य मार्ग को अपना राजपथ बनाने के विपरीत शाहजहाँ ने लालकिले में चुपके से, पिछले दरवाज़े से प्रवेश किया था।

इस विचार के समर्थन में हम दो प्राधिकरणों को उद्धृत करते हैं :

"मकरामत खान, तत्कालीन 'निर्माण-अधीक्षक' ने अपने बादशाह को आने और इसे देखने के लिए कहा, तथा सन् १०५८ हिजरी बाद की २४ वीं रबी (सन् १६४८ ई०) को शाहजहाँ किले में, नदी की ओर वाले दरवाज़े से प्रविष्ट हुआ और उसने अपना पहला दरबार दीवाने-आम में किया।"[1]

भारत सरकार का एक अन्य प्रकाशन भी इस तथ्य की पुष्टि यह लिखकर करता है : "सन् १०५८ हिजरी (सन् १६४८ ई०) को २४ वीं रबी के दिन शाहजहाँ किले में,नदी की ओर वाले दरवाज़े से प्रविष्ट हुआ और उसने अपना पहला दरबार दीवाने-आम में किया।"[2]

हम इन दोनों पुस्तकों के लेखकों को यह महत्त्वपूर्ण विवरण लिखने के लिए धन्यवाद, बधाई देते हैं। इसी के साथ-साथ हम उनकी शैक्षिक सरलता पर भी तरस खाते हैं कि उस अत्यल्प तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र के होते हुए भी, जो उन्हीं के पास था, वे यह सत्य नहीं समझ पाए कि दिल्ली में शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाए जाने की परम्परागत कहानी नितांत झूठ है, प्रवंचना है। हमें आश्चर्य इस बात का होता है कि किस प्रकार लेखक के बाद लेखक ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी, इस विनश्वर किंवदन्ती को पुष्ट होने दिया।

यदि शाहजहाँ ने सचमुच ही किला-निर्माण करवाया होता, जैसाकि झूठा दावा किया जाता है, तो वह घनी बसी हुई नगरी की ओर से किले में प्रविष्ट हुआ होता, न कि अनिष्टकर और असुविधाजनक नदी-तट की ओर से जहाँ उस विदेशी, मध्यकालीन स्वामी की शान और शौकत के उपयुक्त वह बाह्य-आडम्बर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता था जो नगर के राजमार्ग से प्रवेश करने पर किया जा सकता था।

उपर्युक्त विवरण तो महत्त्वपूर्ण है ही; हम यह भी चाहते हैं कि पाठक इसमें सन्निहित एक विशिष्ट असंगति का भी ध्यान रखें। शाहजहाँ

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० १
२. दिल्ली के पुरातत्त्वीय और स्मारक-अवशेष, पृ० २१६

फ़रवरी सन् १६२८ ई० में राजगद्दी पर बैठा था। यद्यपि उसकी राजधानी आगरा बनी रही, तथापि दिल्ली उसके राज्य का एक महत्त्व-पूर्ण नगर था, जो आगरा से केवल १३६ मील दूर है। शाहजहाँ की शाही सेनाएँ और स्वयं शाहजहाँ, अपने समस्त फौज-फाटे सहित दिल्ली आता था और अपना दरबार किया करता था। इतना ही नहीं, वह दिल्ली से होता हुआ ही उत्तर-पश्चिम सीमान्त तक जाया करता था। अतः यह सुझाव देना अथवा विश्वास करना ऐतिहासिक रूप में असत्य है कि यद्यपि शाहजहाँ राजगद्दी पर सन् १६२८ में ही बैठ गया था, तथापि उसके बाद २० वर्ष तक अर्थात् सन् १६४८ ई० तक वह दिल्ली नहीं आया था।

अपनी इस धारणा के पक्ष में, कि शाही मुग़ल राजगद्दी पर शाहजहाँ के बैठने के समय भी लालकिला विद्यमान था, और शाहजहाँ ने सन् १६२८ ई० में अपने राज्य-शासन के प्रारम्भ से ही इस लालकिले का उपयोग किया था, अत्यन्त सशक्त, अकाट्य प्रमाण के रूप में हम पृष्ठ ३८ पर चित्र दे चुके हैं जो सन् १६२८ ई० का है। वह मुग़ल-चित्र बोडलियन पुस्तकालय, ऑक्सफ़ोर्ड में सुरक्षित रखा है। हमें उस चित्र की प्रतिकृति दिनांक १४ मार्च, सन् १९७१ ई० के 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' के अंक से प्राप्त हुई है। वह चित्र इस अंक के पृष्ठ ३२ पर छपा है।

चित्र के शीर्षक में उपयोगी भाग यह है: "शाहजहाँ दिल्ली के लालकिले के दीवाने-आम में फ़ारस के राजदूत का स्वागत करता है। (मुग़ल, लगभग १६२८, एमएस ओन्स्ले, बोडलियन पुस्तकालय, ऑक्स-फ़ोर्ड के संग्राहक)।"

स्पष्ट है कि इलस्ट्रेटेड वीकली ने चित्र के साथ ही शीर्षक भी 'बोडलियन पुस्तकालय, आक्सफोर्ड, ग्रेट ब्रिटेन' से लिया है। बोडलियन-पुस्तकालय के संग्रह-पालों ने उस चित्र की तारीख निश्चित करने में अथवा उसमें प्रदर्शित घटना की तारीख सन् १६२८ ई० निश्चित करने में बहुत पर्याप्त सावधानी बरती होगी। इसी वर्ष, सन् १६२८ में शाहजहाँ राज-गद्दी पर बैठा था।

तथ्यतः, इस चित्र की तिथि निश्चित करना बिल्कुल भी कठिन नहीं

था। सबसे पहली बात यह है कि स्वयं चित्रकार ने ही चित्र बनाने की तिथि अथवा फ़ारसी राजदूत की तिथि का कुछ अभिलेख अवश्य छोड़ा होगा। दूसरी बात यह है कि फ़ारसी दरबार के पास भी उस तिथि का अभिलेख अवश्य ही होगा जबकि उनका राजदूत शाहजहाँ के पास आया था। तीसरे, यह नितान्त संभव प्रतीत होता है कि फ़ारसी राजदूत शाहजहाँ के पास उसी वर्ष आया हो जिस वर्ष शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा था। मध्यकालीन युग में, जब स्थायी राजदूत नहीं होते थे और संचार की द्रुत-व्यवस्था भी नहीं थी, तब राजदूतों को उसी समय भेज दिया जाता था जब कोई बादशाह राजगद्दी पर बैठता था। अतः, जब 'बोडलियन पुस्तकालय' में सुरक्षित (मुगलकालीन) चित्र का शीर्षक घोषित करता है कि फारसी राजदूत ने सन् १६२८ ई० में शाहजहाँ से दिल्ली के लालकिले में, दीवाने-आम में भेंट-मुलाकात की थी, तब उसकी सत्यता, यथार्थता पर संदेह करने का लेशमात्र भी औचित्य नहीं है।

चित्र में लालकिले के दीवाने-आम का विशेष रूप में उल्लेख होना और भी महत्त्वपूर्ण है। वह सिद्ध करता है कि हम आज अपने युग में जो भी भाग, भवन आदि देखते हैं, वे सब-के-सब उस वर्ष विद्यमान थे जब शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा था। यह विवरण उस दावे को और भी तिरस्कृत, रद्द कर देता है कि शाहजहाँ ने किले की दीवार अथवा उसके भीतरी भवनों का निर्माण किया था।

उपर्युक्त चित्र एकबारगी ही दो परम्परागत दावों को निरस्त कर देता है। यह उस दावे को अस्वीकार झूठा सिद्ध कर देता है कि शाहजहाँ ने दिल्ली में अपना पहला दरबार केवल सन् १६४८ ई० में ही अर्थात् अपने बादशाह घोषित होने के २० वर्ष बाद किया था। यही चित्र इस दूसरे दावे को भी असत्य प्रमाणित करता है कि शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया था, क्योंकि इस चित्र द्वारा सिद्ध हो गया है कि जिस वर्ष शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा था, उसी वर्ष यह लालकिला अपने सभी भागों सहित अस्तित्व में था, पहले से ही बना हुआ था।

यह भी ध्यान रखने की बात है कि इस चित्र का सन् १६२८ ई० निर्माण-काल हमारे द्वारा निर्धारित न होकर, उस विरोधी पक्ष द्वारा

निश्चित किया गया है जो परंपरागत रूप में उच्चस्वर से, अर्थात् इतिहास, स्थापत्यकला और पर्यटन-शास्त्र की पुस्तकों के माध्यम से, सदा कहता रहा है कि लालकिले को बनवाने वाला तो शाहजहाँ ही था और वह निर्माण भी उसने राजगद्दी पर बैठने के २० वर्ष बाद ही किया था—पहले नहीं।

इस प्रकार की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात उनकी लेखनी और अत्यन्त सतर्क, सधी-सधायी बुद्धि से असावधानीवश छूट जाना वास्तव में अत्यन्त महत्त्व की बात है। इससे केवल वही उक्ति चरितार्थ होती है कि झूठ का किसी-न-किसी प्रकार भंडाफोड़ होकर सत्य प्रकट हो ही जाता है—सत्यमेव जयते !

प्रसंगवश हम अब यह जान गए हैं कि शाहजहाँ सन् १६४८ ई० में नदी की ओर बने पिछले दरवाज़े से लालकिले में प्रविष्ट क्यों हुआ था। पहली बात तो यह प्रत्यक्ष हो गई है कि सन् १६४८ ई० में उसकी लाल-किले की यात्रा पहली न होकर, अनेक बार यात्रा कर चुकने के बाद की यात्रा है। यदि यह उसकी पहली यात्रा होती तो वह कभी भी पिछले दरवाज़े से प्रविष्ट न हुआ होता। इससे बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि परम्परागत कहानी किस प्रकार, प्रत्येक विवरण में भी झूठी है, पूर्णतः असत्य है। प्रत्येक विवरण में झूठा यही इतिहास भारतीय इतिहास के नाम से सम्पूर्ण विश्व में, सभी स्तरों पर प्रस्तुत किया जा रहा है। सभी विश्वविद्यालयों, संस्थाओं और विद्यालयों को तुरन्त ऐसे इतिहास का परित्याग कर देना चाहिए और उसका तिरस्कार करना चाहिए। ऐसा उथला, थोथा, झूठा इतिहास पढ़ाना और प्रचारित-प्रसारित करना अत्यन्त निर्लज्जता की बात है, धिक्कारने योग्य है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि बोडलियन पुस्तकालय में सुरक्षित रखे गए इस चित्र की तिथि, स्वतन्त्र रूप से ही, सन् १६२८ ई० अंकित हुई है। इस तिथि का अंकित किया जाना इस भाव से नहीं हुआ था कि यह बाद में हमारी उस खोज का समर्थन करे कि लालकिला शाहजहाँ से शताब्दियों पूर्व हिन्दुओं द्वारा निर्मित किया गया था। अतः परम्परागत इतिहासकारों के लिए अब यह कहना अनुचित होगा कि इसकी तिथि ग़लत है।

सन् १६४८ ई० में, जब शाहजहाँ ने नगर की ओर से सम्मुख प्रवेश करने की उपेक्षा करके लालकिले में चुपके-से, चोरी-से पिछले दरवाजे से प्रवेश किया, तब यह स्पष्ट है कि उसे अपने लम्पट और गर्म-स्वभाव के कारण तथा अपने सम्पूर्ण राज्य में सभी हिन्दू मन्दिरों को योजनाबद्ध रूप में ध्वस्त करने के आदेश देने के कारण आशंका थी कि उसके जीवन को खतरा बना रहता है। इसीलिए वह पिछले द्वार से प्रविष्ट हुआ था।

यहाँ हम शाहजहाँ के शासनकाल के बारे में प्रचारित एक अन्य झूठ को भी धराशायी करना चाहते हैं, उसका पर्दाफ़ाश करना चाहते हैं। इस झूठे दावे का औचित्य सिद्ध करने के लिए कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली की स्थापना की थी और यहाँ के लालकिले व जामा-मस्जिद का निर्माण किया था, एक के बाद एक इतिहासकार ने यही कहा है कि शाहजहाँ की राजधानी प्रारम्भ में आगरा में थी, परन्तु उसने इसे बाद में दिल्ली में बदल दिया था। इस धारणा, विश्वास का इतिहास में कोई आधार नहीं है। शाहजहाँ की राजधानी उसके अपने शासन के अन्त तक आगरा में ही रही थी। यही कारण है कि वह जब सन् १६५७ ई० के सितम्बर मास में बीमार पड़ा, तब वह आगरे के किले में निवास कर रहा था और उसके सबसे बड़े-बेटे दाराशिकोह ने, अपने रोगी पिता की देख-रेख में ही, राज्य-संचालन का कार्यभार संभाल लिया था। इसके वर्ष बाद आगरा में ही, शाहजहाँ के विद्रोही बेटे औरंगज़ेब ने अपने पिता को क़ैद कर दिया था जबकि वह अपने तीनों भाइयों और पिता को पराजित, अपमानित करके राजगद्दी हड़प लेने में सफल हो गया था। और चूंकि शाहजहाँ आगरे के किले में नज़रबन्द, क़ैद था, इसीलिए औरंगज़ेब दिल्ली से ही सन् १६६६ ई० तक राज्य-शासन करता रहा, जब तक शाहजहाँ मर नहीं गया। यह सब इस बात का प्रबल प्रमाण है कि आगरा नगर ही शाहजहाँ के सम्पूर्ण शासनकाल में उसकी राजधानी बना रहा। इस बात की पुष्टि परम्परागत इतिहासकारों के एक अन्य दावे से भी होती है। अपनी पत्नी मुमताज़ के लिए, आगरा में, मक़बरे के रूप में शाहजहाँ द्वारा ताजमहल बनवाने की झूठी कथा को प्रचारित

करने में परम्परागत इतिहासकारों ने सदैव यह वर्णित किया है कि दुःखित, संतप्त हृदय शाहजहाँ अपनी बन्दी-अवस्था में भी, मकबरे की ओर ही देखा करता था और आँसू बहाता रहता था। उसका यह क्रम उसकी मृत्यु तक जारी रहा था। यदि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति इतना अधिक लगाव था, और यदि आगरा में ताज इसीलिए बनवाया था कि वह अपना शेष जीवन आगरा में बने उस प्रिया के मकबरे की ओर देखते हुए ही बिता दे, तो वह अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली क्यों बदलता ? साथ ही, राजगद्दी पर बैठने के लगभग दो वर्ष बाद ही उसकी पत्नी मुमताज़ की मृत्यु हो गयी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि जहाँ तक भावना का तकाज़ा है, अपने शेष जीवन में तो शाहजहाँ अपना दरबार आगरा से दिल्ली बदल नहीं सकता था।

परम्परागतवादी लोग इतिहास में दोनों बातों को अपने पक्ष में प्रस्तुत नहीं कर सकते। कहने का भाव यह है कि वे साथ-साथ यह नहीं कह सकते कि (यद्यपि उसकी पत्नी सुदूर बुरहानपुर में मरी थी, फिर भी) शाहजहाँ ने आगरा में ताजमहल इसलिए बनवाया था कि वह अपनी पत्नी के मकबरे को कभी अपनी आँखों से ओझल न होने देगा और यह भी कि उसने अपनी राजधानी सन् १६४८ ई० में आगरा से दिल्ली बदल ली थी। इस विचार-विमर्श से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि परम्परागत रूप में पढ़ाया जा रहा इतिहास किस प्रकार, परस्पर-विरोधी बातों का पुलिन्दामात्र है।

हमारे विचार में तो ताजमहल शाहजहाँ-पूर्व काल का एक हिन्दू-मंदिर—राजमहल-संकुल है। शाहजहाँ ने उस भवन को हथिया लिया, इस भवन को इसके विपुल हिन्दू धन-वैभव से विहीन कर दिया और कदाचित् अपनी मृत पत्नी को इसके अन्दर दफ़ना दिया अथवा एक झूठी कब्र बनवा दी। किन्तु हम ऊपर यह दिखा चुके हैं कि परम्परागत ऐतिहासिक वर्णन स्वयं अपनी ही अग्राह्यताओं और परस्पर-विरोधी बातों के कारण किस प्रकार एक-दूसरे को निरस्त, रद्द कर देते हैं।

शाहजहाँ ने अपना सरकारी इतिहास मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी नामक एक वेतनभोगी दरबारी तिथिवृत्त-लेखक से लिखवाया है। वह

तिथिवृत्त—रोजनामचा—'बादशाहनामा' कहलाता है। इसमें १६६२ पृष्ठों के दो खण्ड हैं। हमने भारत सरकार के राष्ट्रीय अभिलेखागार-कार्यालय में नियुक्त फ़ारसी-भाषा के एक अपने विद्वान्-मित्र श्री कृष्णलाल अरोड़ा से अनुरोध किया कि वे 'बादशाहनामा' पर दृष्टिपात करें और हमारे लिए वह संदर्भ निकालकर देने का कष्ट करें जिसमें उस बहु-प्रचलित दावे की पुष्टि होती हो कि शाहजहाँ ने आगरा छोड़कर अपनी राजधानी दिल्ली बना ली थी, और कि शाहजहाँ ने पुरानी दिल्ली बनायी थी, और साथ-ही-साथ, यहाँ के लालक़िले और तथाकथित जामा मस्जिद का भी निर्माण किया था। अपने कुछ साथियों के साथ श्री अरोड़ा महीनों तक 'बादशाहनामा' को इधर-उधर टटोलते रहे और अन्त में, उन्होंने अत्यन्त संकोचपूर्वक सखेद सूचित कर दिया कि उनको ऐसा कोई सम्दर्भ नहीं प्राप्त हो सका। संयोग से, श्री अरोड़ा ने उस तिथिवृत के खण्ड १ के पृष्ठ ४०३ पर अंकित यह स्वीकरण भी देखा कि शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज को राजा जयसिंह के स्वामित्ववाले राजप्रासादीय, भव्य भवन में ही दफ़नाया था। श्री अरोड़ा ने उस घोर विस्तार-सीमा पर भी आश्चर्य व्यक्त किया जहाँ तक कि पीढ़ियों को अंधानुकरण करते हुए विश्वास दिलाया गया है कि शाहजहाँ ने आगरा में ताजमहल का निर्माण कराया था, उसी ने पुरानी दिल्ली नगर बनाया-बसाया था, पुरानी दिल्ली की तथाकथित जामा मस्जिद बनायी, पुरानी दिल्ली का ही लाल-किला बनवाया था और अन्य अनेकों भवन बनवाए थे।

भारतीय इतिहास के विद्वानों द्वारा आँख मूंदकर उद्धृत किये गए अस्पष्ट और चिकने घड़े-जैसे मुस्लिम झूठों के दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए हम एक विशिष्ट अवतरण सम्मुख लाते हैं। इसमें कहा गया है : "अपने शासनकाल में शाहजहाँ जिस-जिस स्थान पर गया, वहीं-वहीं उसकी असमाधेय स्थापत्य-कलारत रुचि का एक स्मारक अवश्य विद्यमान है। ऐसे समस्त भवनों की एक सूची देना भी असंभव कार्य है...अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के मकबरे में मस्जिद और अन्नासागर-झील पर बारादरी...समकालीन तिथिवृत्तकारों द्वारा कश्मीर, लाहौर, अम्बाला, बारी, फ़ैज़ाबाद, ग्वालियर, काबुल तथा बहुत सारे अन्य नगरों का उल्लेख

किया जाता है जहाँ शाहजहाँ ने भवनों का निर्माण किया था⋯वहाँ (आगरे के किले में) शाहजहाँ ने दीवाने-आम, दीवाने-ख़ास और शाही बेगमों के लिए निवास-स्थान भी बनवाए थे⋯(आगरे के किले में) मोती-मस्जिद सात वर्षों में (सन् १६४५ से १६५३) तीन सौ हज़ार रुपयों की लागत पर बनी थी। किले के बाहर जामा मस्जिद है जो शाहजहाँ की सबसे बड़ी बेटी जहाँआरा बेगम ने बनायी थी। यह पाँच वर्ष के निर्माण के बाद सन् १६४८ ई० में पूरी हुई थी और इस पर पाँच सौ हज़ार रुपये खर्च हुए थे⋯भवन (अर्थात् तथाकथित दीवाने-ख़ास) का शानदार तरीके से विचार अमीर खुसरो की इन पंक्तियों में निहित है :

"यदि इस धरती पर कहीं स्वर्ग है,
तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।"[1]

उपर्युक्त अवतरण 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' के एक प्रोफ़ेसर श्री० बी० पी० सक्सेना द्वारा लिखित 'दिल्ली के शाहजहाँ का इतिहास' नामक पुस्तक से उद्धृत किया गया है। इस विषय-वस्तु को श्री सक्सेना ने शोध-कार्य के रूप में 'लन्दन विश्वविद्यालय' के सम्मुख प्रस्तुत किया था। इसी से, इसके रचनाकार श्री सक्सेना को सन् १९३१ में डॉक्टरेट की उपाधि मिली थी।

हम अब उनके कथनों के अनेक दोषों को प्रस्तुत करेंगे और 'लंदन विश्वविद्यालय' के आत्मश्लाघायुक्त विद्वानों और स्वयं श्री सक्सेना महोदय की प्रतिभा को पाठक के सम्मुख सिद्ध करेंगे। हममें दोनों के प्रति ही अत्यन्त सम्मान-भावना विद्यमान है, तथापि हम ऐतिहासिक शिक्षावृत्ति के कारण विश्व के प्रति अपनी कर्तव्य-भावना और पीढ़ियों तक विश्व को भ्रमित करने के प्रकार के प्रति त्रास और लज्जा की भावना के कारण, उनके भारतीय इतिहास के उभयपक्षीय विचार में सन्निहित दोषों के प्रति यहाँ विरोध प्रकट कर रहे हैं।

ऊपर लिखे अवतरण में श्री सक्सेना ने मृदुभाषा में कह दिया है कि :

---

१. प्रोफ़ेसर बी० पी० सक्सेना विरचित 'दिल्ली के शाहजहाँ का इतिहास पृष्ठ २६३ से २६६

"अपने शासनकाल में शाहजहाँ जिस-जिस स्थान पर गया, वहीं-वहीं उसकी असमाधेय स्थापत्य-कलागत रुचि का एक स्मारक अवश्य विद्यमान है।" यह विचित्र, अस्पष्ट वक्तव्य है। क्या इससे पाठक को यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि, मानो, शाहजहाँ यदि लाहौर से आगरा या आगरा से अजमेर गया, तो उसने पहुँचने के अन्तिम निर्दिष्ट स्थान पर यह-वह भवन बनाया था अथवा रास्ते में जहाँ भी कहीं रुका, वहीं कुछ-न-कुछ निर्माण-कार्य किया था।

यह नहीं समझना चाहिए कि हम वाग्छल अथवा वक्रोक्ति कर रहे हैं। इसी पद्धति पर न्यायालय में दावों की जांच-पड़ताल की जाती है और शाही मुस्लिम चापलूसी भरी धूर्तता के हज़ार प्रकारों में नितांत और अन्ध-विश्वास रखने की वर्तमान पद्धति के स्थान पर इस न्यायिक विधि को ही इतिहास में भी उपयोग में लाना चाहिए।

श्री सक्सेना फिर अत्यन्त भोलेपन से कहते हैं कि शाहजहाँ द्वारा बनवाये गए "ऐसे समस्त भवनों की एक सूची देना भी असम्भव कार्य है।" यदि श्री सक्सेना ने अपने इस अत्यन्त छोटे-से वाक्य का निहितार्थ समझने का तनिक भी कष्ट किया होता, तो वे इसमें निहित बेहूदगी की अनुभूति कर ही लेते। यदि शाहजहाँ के शासन के सम्बन्ध में विशद शोध-प्रबन्ध लिखने वाले प्रोफ़ेसर सक्सेना-जैसा एक लेखक और अन्वेषक भी शाहजहाँ की मनोहारी भवन-परियोजनाओं की सूची देने में हताश हो जाता है, तो क्या यह तथ्यतः प्रत्यक्ष नहीं है कि उतने सारे भवनों आदि का निर्माण कार्यक्रम शाहजहाँ के २६ वर्ष के शासनकाल में कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता था ?

मध्यकालीन शाही लम्बाई-चौड़ाई के प्रत्येक भवन के लिए रूप-रेखांकन-चित्रों की हज़ारों प्रतियाँ, हज़ारों रूप आवश्यक होते थे। यदि शाहजहाँ ने ऐसे सैंकड़ों भवन बनवाये थे, तो उनके लिए तो लाखों स्थापत्य-कलात्मक रूपरेखांकन बने होंगे। शाहजहाँ को एक महान् निर्माता के रूप में शेखी बघारने वाले इतिहासकारों को उन भवनों से सम्बन्धित कुछ की रूपरेखांकन प्रतियाँ तो प्रस्तुत करनी चाहिएं जिनका श्रेय वे शाहजहाँ को देते हैं। ऐसा एक भी रेखांकन उपलब्ध नहीं है। यह बात इस तथ्य

का प्रबल प्रमाण है कि मध्यकालीन इतिहास से किस प्रकार थोथे और निराधार निष्कर्ष निकाल लिये गए हैं।

शाहजहाँ की स्थापत्यकलात्मक संरचनाओं की सूची देने में नैराश्य प्रकट कर देने के बाद भी प्रोफ़ेसर सक्सेना उनमें से कुछ का उल्लेख करने का थोड़ा-सा यत्न करते हैं। वे सर्वप्रथम अजमेर में फ़क़ीर मुईनुद्दीन चिश्ती के मक़बरे में एक मस्जिद का उल्लेख करते हैं। इससे हमें इस्लामी तिथि-वृत्तलेखन का कपट और मिथ्यावाद ज्ञात हो जाता है। उसका एक दृष्टान्त हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है। सर्वप्रथम यह ध्यान में रखना चाहिए कि फ़क़ीर मुईनुद्दीन चिश्ती का मनोहारी मक़बरा स्वयं ही अजमेर में तारागढ़ पहाड़ी दुर्ग के नीचे बना हुआ हिन्दू भवन-संकुल है। दूसरी बात यह है कि शाहजहाँ मुईनुद्दीन चिश्ती की मृत्यु के शताब्दियों बाद राजगद्दी पर बैठा था। मुईनुद्दीन चिश्ती की मृत्यु के शताब्दियों बाद तक उस मनोहारी मक़बरे के परिसर में प्रत्यक्षतः कोई भी मस्जिद का न होना इस बात का अन्य संकेतक है कि वे परिसर हिन्दू सम्पत्ति थे। साथ ही, शाहजहाँ द्वारा निर्मित कही जाने वाली मस्जिद स्वयं ही उस हिन्दू-भवन का एक भाग है जो आजकल मुईनुद्दीन चिश्ती के मक़बरे के रूप में उपयोग किया जा रहा है। यदि शाहजहाँ द्वारा इसे निर्मित किये जाने का दावा किया जाता है, तो इसकी पुष्टि रूपरेखांकन-चित्रों, निर्माण-आदेशों, विपत्रों, रसीदों (सामग्री खरीदने की) तथा व्यय-लेखाओं आदि द्वारा की जानी चाहिए। स्पष्टतः, ऐसे किसी अभिलेख की एक पर्ची तक नहीं है।

उपर्युक्त पर्यवेक्षण प्रोफ़ेसर सक्सेना द्वारा उल्लेख किये गए अन्य दावों पर भी समान रूप से संगत बैठता है। बाराहदरी स्वयं ही एक नगण्य भवन है जो मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा विजित और विनष्ट किये गए एक प्राचीन हिन्दू भवन का भाग है। शाहजहाँ के दरबारी-कागज-पत्रों में उसके द्वारा इसे बनवाये जाने का कोई उल्लेख नहीं है। अन्नासागर झील एक प्राचीन जन-सुविधा है जो अतिप्राचीन अजय-मेरु अर्थात् अजमेर रजवाड़े के हिन्दू-संस्थापकों ने प्रदान की थी। 'अन्ना सागर' शब्दावली संस्कृत शब्दावली है जो अन्न-उत्पादन में सहायक झील का अर्थ-द्योतक

है। स्पष्ट है कि इसका प्रयोजन राजस्थान-से रेतीले अनुपयोगी भागों में चहुँओर के निकटवर्ती क्षेत्र को सींचना था। इस प्रकार का नाम अपनी विदेशी फ़ारसी इस्लामी-संस्कृति का दम भरने और शेखी बघारने वाले दरबार की कल्पना में कभी नहीं आ सकता।

श्री सक्सेना का यह दावा ग़लत है कि "समकालीन तिथिवृत्तकारों द्वारा कश्मीर, लाहौर, अम्बाला, बारी, ग्वालियर, काबुल तथा बहुत-सारे अन्य नगरों का उल्लेख किया जाता है, जहाँ शाहजहाँ ने भवनों का निर्माण किया था।" सर्वप्रथम बात यह है कि उन्होंने यह उल्लेख करने का कष्ट नहीं किया है कि वे समकालीन लेखक, तिथिवृत्तकार कौन हैं और उन लोगों ने कौन-कौन से दावे किये हैं। हमारा विश्वास है कि ऐसे कोई समकालीन दावे नहीं हैं। यदि कोई हों, तो वे दावे बाद में तैयार किये गए हैं जिनको चाटुकार और धोखेबाज़ इस्लामी दरबार के चापलूसों ने प्रस्तुत किया है। उन दावों को प्रस्तुत करने वाले प्रोफ़ेसर सक्सेना जैसे लोगों ने उन अनियत, अस्थिर, अस्पष्ट, आधारहीन, अपुष्ट और असमर्थित दावों की अत्यन्त सूक्ष्म और कठोर जांच-पड़ताल करने की तकलीफ़ नहीं उठायी। प्रत्येक इतिहासकार ने उन कानों-कान कहे हुए कपटपूर्ण दावों को दुहराया ही, जिससे अन्ततोगत्वा आधारहीन दावों का एक पहाड़ ही बन गया।

हम इस अवसर पर, मध्यकालीन इस्लामी लेखकों द्वारा अति सामान्य रूप में काम में लाये गए कपट-व्यवहार की ओर इतिहास के सभी विद्यार्थियों और शिक्षकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। उनको इसके प्रति सचेत करना चाहते हैं। वे सब-के-सब उस सर्व-व्यवहार्य वाक्यांश का प्रयोग करते हैं कि अमुक-अमुक बादशाह, सुलतान या दरबारी ने एक किले, नगर या झील की 'नींव' रखी। उनके अपने शब्दों का मूल्यांकन करते हुए हमें निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि मुस्लिम शासकों और दरबारियों ने मात्र 'नींवें' ही रखी थीं, तथापि उनके ऊपर कोई निर्माण-कार्य नहीं किया था। उस अवस्था में हमें मध्यकालीन भारत में सर्वत्र चबूतरे-चौकियां और नींवें ही प्राप्त होनी चाहिए थीं, जिनके ऊपर कोई भी भवन आदि न बने होते। हम आशा करते हैं कि इसके बाद से, अब

कोई भी व्यक्ति उनके कपटपूर्ण दावों में विश्वास नहीं करेगा। अपने कथनों में निजी रूप से लिखते हुए भी वे ऐसी अस्पष्ट शब्दावली का प्रयोग जान-बूझकर करते हैं, क्योंकि अंतस्तमभाव से वे भी ऐसा कोई अस्वाभाविक दावा सीधे और स्पष्ट शब्दों में करने का साहस नहीं कर पाते थे। फिर भी, यदि वे कोई दावा करते थे, तो वे भली-भाँति जानते थे कि उनका दावा दरबारी प्रलेखों और लेखाओं से पुष्ट नहीं होता था।

ऊपर उद्धृत अवतरण में जब प्रोफ़ेसर सक्सेना कहते हैं कि शाहजहाँ ने आगरा के किले में दीवाने-आम और दीवाने-खास तथा शाही बेगमों के लिए निवास-स्थान भी बनवाये थे, तब हम आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि क्या हमें प्रोफ़ेसर सक्सेना के कथन से यह अर्थ लगाना चाहिए कि शाहजहाँ से पहले जिसने भी आगरा में लालकिला बनवाया था, तब उसने मात्र बाहरी दीवारें ही बनवायी थीं, जिनके भीतर कोई भी शाही भाग, निवास-स्थान नहीं था? किसी भी व्यक्ति को बाहरी दीवारों मात्र का खोल, आवरण बनवाने में क्या प्रयोजन सिद्ध करना होता था? यदि उस पूर्व-निर्माता ने किले की बाहरी दीवार के भीतर शाही निवास-स्थान भी बनवाये थे, तो शाहजहाँ द्वारा अन्य निर्माण करने के लिए अन्दर स्थान ही कहाँ बचा था? और यदि, जैसा पाखण्डपूर्वक तथा व्यर्थ ही माना जाता है कि शाहजहाँ ने, किले के भीतर अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित ५०० भवनों को गिराकर उनके ही स्थान पर अन्य ५०० भवनों को बनवाया था, तो प्रश्न उठता है कि क्या शाहजहाँ जन्मजात बेवकूफ़ था? और, यदि उसने सचमुच ही अकेले आगरा के लालकिले में ही इतना विशाल निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया था, तो संगत, सम्बन्धित दरबारी प्रलेख, कागज़-पत्र कहाँ हैं?

प्रोफ़ेसर सक्सेना द्वारा उल्लेख किये गए सभी स्पष्ट दावों के बीच में ही वे अचानक तथाकथित मोती-मस्जिद के बारे में कुछ विवरण देते हुए प्रतीत होते हैं। यह मोती-मस्जिद शाहजहाँ द्वारा आगरे के लालकिले के भीतर बनवायी गई विश्वास की जाती है। हमें बताया जाता है कि यह सात वर्षों में तीन लाख रुपयों की लागत पर बनकर तैयार हुई थी। सर्वप्रथम यह दावा अस्वीकार्य, अमान्य है क्योंकि यह किसी दरबारी प्रलेख,

अभिलेख द्वारा पुष्ट, समर्थित नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि शाहजहाँ ने, जिसे दिल्ली में लालकिला बनवाने का निर्माण-श्रेय दिया जाता है, दिल्ली में किले के भीतर कोई मस्जिद नहीं बनवाई थी, ऐसा घोषित किया जाता है। क्या यह सुस्पष्टतया बेहूदा नहीं प्रतीत होता कि आगरा में किसी अन्य बादशाह द्वारा पहले बनाये गए लालकिले में तो शाहजहाँ एक 'मोती मस्जिद' बनवाये, किन्तु दिल्ली के लालकिले में ऐसी कोई मस्जिद न बनवाये, यद्यपि इस किले का मूलनिर्माता शाहजहाँ ही विश्वास किया जाता है ? और यदि दिल्ली के लालकिले में बनी हुई मस्जिद उसके बेटे और उत्तराधिकारी औरंगजेब द्वारा निर्माण-आदेश पर ही बनायी गई थी, तब इसका भी नाम वही अर्थात् मोती-मस्जिद ही क्यों हो ? क्या यह किसी समान मुस्लिम परम्परा से मान्य है कि भारत के किसी भी किले में बनी कोई भी मुस्लिम सुल्तानी मस्जिद 'मोती-मस्जिद' ही कहलाए ? यह निष्कर्ष भी तथ्यों द्वारा पुष्ट नहीं होता क्योंकि भारत की तथाकथित मस्जिदों के पृथक्-पृथक् नाम हैं। अतः हम जिस असंदिग्ध निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, वह यह है कि आगरा और दिल्ली के लालकिलों के भीतर बनी तथाकथित दोनों मोती-मस्जिदें पूर्वकालिक हिन्दू-मंदिर थे जो हिन्दू शासकों द्वारा बनवाये गये थे। जब वे किले मुस्लिम आधिपत्य में चले गए, तब देव-मूर्तियों को फेंक दिया गया था और वे मन्दिर मोती मस्जिद के नाम से पुकारे जाने लगे थे।

प्रोफ़ेसर सक्सेना की यह अन्य घोषणा, कि शाहजहाँ की सबसे बड़ी (अविवाहिता) बेटी ने आगरा में बनी जामा-मस्जिद का निर्माण-मूल्य चुकाया था, जो पाँच वर्ष में पाँच लाख रुपयों के ख़र्चे पर बनी थी, दूसरा अस्पष्ट, विनीत और अपुष्ट दावा है जो हमारे द्वारा ऊपर बताए गए पैने, तीखे प्रश्नों के माध्यम से पाठकों द्वारा अवश्य ही जाँच-पड़ताल किया जाना चाहिए। जहाँआरा को एक तथाकथित मस्जिद का निर्माण-श्रेय दिया जाना से पूर्व हम पूछना चाहेंगे कि उसने अपने लिए कौन-से सामयिक भवन बनवाए थे ? एक मस्जिद बनवाने में उसका अपना क्या हित था, उसे रुचि क्या थी ? उसकी अपनी आय क्या थी, और उसका स्वयं अपने ऊपर क्या कितना खर्चा होता था ? जिस मस्जिद को उसके निर्माण-आदेश पर

बनाया गया विश्वास किया जाता है, उसका व्यय-लेखा कहाँ है? ऐसे प्रश्नों से स्पष्ट हो जाएगा कि प्रोफ़ेसर सक्सेना-जैसे इतिहासकारों ने चापलूसी-भरे, मनघड़न्त इस्लामी दावों को परखने की कभी सोची ही नहीं।

"यदि इस धरती पर कहीं स्वर्ग है,
तो यहीं है, यहीं है, यहीं है!"

इस काव्यमय पद्य के बारे में हम पहले ही कह चुके हैं कि कुछ इतिहासकार इन पंक्तियों का निर्माण-श्रेय शाहजहाँ के प्रधान-मंत्री सादुल्ला खान को देते हैं जबकि प्रोफ़ेसर सक्सेना का मत है कि इनका रचनाकार अमीर खुसरो है। व्यक्ति किसका विश्वास करे? यह एक अन्य विवरण है जो इस अव्यवस्थित ढंग, प्रकार को स्पष्ट दर्शाता है जिसमें मध्यकालीन इतिहास लिखा गया है। यह उस इस्लामी रुझान का दृष्टान्त भी प्रस्तुत करता है जिसमें वे विजित हिन्दू-भवनों को पृथिवी पर साक्षात् स्वर्ग ही घोषित करते थे। हथियाए, कल्पनातीत हिन्दू-भवनों को लूटने और अपने अधीन कर लेने से वे इतने अधिक प्रफुल्लित, हर्षित थे।

शाहजहाँ के सम्बन्ध में ऐसे थोथे शोध-प्रबंध को, जिसमें बिना किसी प्राधिकरण अथवा सूक्ष्म जाँच-पड़ताल के ही अतिशयपूर्ण दावे भरे पड़े हैं, डॉक्टरेट की उपाधि के लिए 'लन्दन विश्वविद्यालय' द्वारा मान्य किया जाना अन्यदेशीय आधिपत्य की अवधि में पराभूत भारत की अवस्था में भारत के इतिहास पर अपने विद्वानों और विश्वविद्यालयों द्वारा किये गए प्रलयंकर सर्वनाश का एक सुस्पष्ट और दोलायमानकारी प्रमाण स्वीकार किया जाना चाहिए। हमारे इतिहास की इस प्रकार अन्यदेशियों द्वारा अथवा उनके अंधानुयायी देशी व्यक्तियों द्वारा की गई, की जा रही दुर्गति के प्रति हम अपना कठोर विरोध प्रकट करते हैं।

अध्याय ६

किले का शाहजहाँ-पूर्व अस्तित्व

हम इससे पूर्व अध्याय में पहले ही लिख आए हैं कि ऑक्सफ़ोर्ड के 'बोडलियन पुस्तकालय' में एक चित्र सुरक्षित रखा हुआ है जिसमें शाहजहाँ को अपने राज्य-शासनकाल में ही अर्थात् सन् १६२८ ई० में दिल्ली के लालकिले के दीवाने-आम में फ़ारसी-राजदूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है।

उस चित्र से जो-कुछ निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि लालकिला शाहजहाँ के बादशाह बनने से पूर्व ही, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बनाया हुआ विद्यमान था। इस निष्कर्ष की पुष्टि कई अन्य प्रमाणों से भी होती है, जिनका उल्लेख हम इस अध्याय में करना चाहते हैं।

राजस्थान के इतिहास-लेखक कर्नल टाड ने लिखा है : "चित्तौड़ के विजेता ने अत्युच्च भावना प्रदर्शित की, अपनी विजय के मूल्य की ही नहीं अपितु अपने शत्रुओं के गुणों की भी—उसने दिल्ली में अपने राजमहल के सबसे अधिक उल्लेखनीय प्रवेश-द्वार के सम्मुख जयमल और पत्ता के नाम की पाषाण-मूर्तियाँ बनवाकर स्थापित की थीं।"[1]

कर्नल टाड यह विश्वास करने में ग़लती पर हैं कि हाथियों पर सवार

---

१. कर्नल टाड विरचित, 'राजस्थान का इतिहास', (अंग्रेजी) भाग I, पृष्ठ ३२८

वे मानव-प्रतिमाएँ जयमल और पत्ता की थीं और उनको अकबर ने बनवाया था। किन्तु यह उल्लेख करने में पर्याप्त रूप से सही है कि हाथियों पर सवार हिन्दू योद्धाओं की ऐसी प्रतिमाएँ स्वयं अकबर के समय में भी अर्थात् शाहजहाँ से दो पीढ़ियों-पूर्व दिल्ली के लालकिले के सबसे अधिक उल्लेखनीय प्रवेशद्वार के सम्मुख विद्यमान थीं।

अकबर और शाहजहाँ की शासनावधियों में भारत में आए प्रवासियों ने फतहपुर सीकरी, आगरा के लालक़िले और दिल्ली के लालकिले के प्रवेश-द्वारों पर गजारूढ़ मानव-आकृतियाँ देखी थीं और वे विस्मित रह गए थे। किन्तु वे मुस्लिम दरबार के चाटुकार मुस्लिम दरबारियों के झाँसे में आ गए थे। जब कभी उन प्रवासियों ने सहज रूप में जानना चाहा कि इन प्रतिमाओं को किसने बनवाया था, तभी असत्यवादी खुशामदी दरबारियों द्वारा उनको यह कह दिया जाता था कि भवनों और प्रतिमाओं सहित भारत के सभी नगर भी भारत पर शासन करने वाले विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा ही स्थापित किये गए थे। और जब प्रवंच्य पश्चिमी प्रवासी यह पूछते थे कि मुस्लिम बादशाह ने हाथियों के ऊपर राजवंशी हिन्दू सवार क्यों बैठाए थे, तो चालक और धूर्त मुस्लिम दरबारीगण अपनी पहली झूठ बात को यह दूसरा झूठ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करके ढक देते थे कि अकबर बादशाह ने अपने उन हिन्दू शत्रुओं का सम्मान किया था जिनको उस चित्तौड़ दुर्ग के भीतर लड़ाई में अत्यन्त नृशंसतापूर्वक मार दिया था।

यह विषय 'आगरे का लालकिला हिन्दू-भवन है'—शीर्षक पुस्तक के 'गज-प्रतिमा संबंधी भयंकर भूल' के अन्तर्गत अध्याय १३ में सविस्तार वर्णित है। जहाँ तक दिल्ली के लालकिले में विद्यमान रही प्रतिमाओं की बात है, हम उनका सविस्तार वर्णन अगले किसी अध्याय में करेंगे।

यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि अपने प्रतिवेदन के पृष्ठ २२६ पर दिये गये टाड के पर्यवेक्षण से जनरल कनिंघम पूरी तरह भ्रमित हो जाता है, चक्कर में पड़ जाता है। कनिंघम का पर्यवेक्षण है: "…चूंकि शाहजहानाबाद का निर्माण चित्तौड़-विजय के बाद भी सत्तर वर्ष तक प्रारम्भ नहीं हो पाया था, अतः यह बिल्कुल निश्चित है कि जिन

प्रतिमाओं को बर्नियर और थेवेनाट ने दिल्ली-राजमहल के सामने देखा था, उनको अकबर द्वारा नहीं बनवाया जा सकता था।"[1]

यहाँ पाठकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कर्नल टाड यह बात कहने में पूरी तरह सही है कि अकबर के समय में अर्थात् शाहजहाँ से दो पीढ़ी पूर्व युग में भी दिल्ली के लालकिले के बाहर (जिसे वह दिल्ली राजमहल कहता है) आरोहियों सहित गज-प्रतिमाएँ अवश्य स्थापित थीं। फलस्वरूप, जनरल कनिंघम की यह धारणा कि शाहजहाँ ने एक दिल्ली नगर बसाया था और उसका नाम शाहजहानाबाद रखा था, पूर्णतः अयुक्तियुक्त एवं अनुचित है। यह इस बात का एक ठोस स्पष्ट और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है कि किस प्रकार भारत सरकार के पुरातत्त्व-विभाग के लिए तैयार किए गए जनरल कनिंघम के मूल प्रतिवेदन में भारतीय पुरातत्त्व का सम्पूर्ण ढाँचा ही पूर्णतः काल्पनिक, मनमौजी और अनुचित धारणाओं पर आधारित है। भारत-जैसे विशाल और अति प्राचीन देश का सम्पूर्ण पुरातत्त्वीय ढाँचा झूठी, खोखली बातों पर आधारित होना घोर शैक्षिक त्रासदी है क्योंकि जनरल कनिंघम की निराधार कल्पनाओं को निर्दोष मानकर, विश्वभर में भारतीय इतिहास के सभी अध्यापक और अनुसन्धानकर्ता लोग अस्वाभाविक विसंगतियों, परस्पर विरोधी बातों और बेहूदगियों की अति जटिल भूल-भुलैया में फँस गए हैं। यह बात उपर्युक्त प्रतिमाओं का अकबर या शाहजहाँ द्वारा बनवाने के बारे में मुस्लिम कपटजाल से स्पष्ट हो गई है। प्रारम्भ में तो यह कहना ही परले दर्जे की बेहूदगी है कि धर्मान्ध मध्यकालीन मुस्लिम मूर्तिभंजक लोगों ने हाथियों और उनके सवार आदमियों की मूर्तियाँ बनवाई थीं। इससे भी अगली बेहूदगी यह कहना है कि उन्हीं लोगों ने अपने घृणित काफ़िरों की, उन शत्रुओं की मूर्तियाँ बनवायी थीं जिनको उन्होंने अत्यन्त परम शत्रुता के भाव-वश नृशंसतापूर्वक मार डाला था। मनुष्य अपने शत्रु का बेढंगा, विद्रूप पुतला उसका अपमान करने के लिए बनाता है, श्रद्धा-आदर-भाव से पूजा, अर्चना, उपासना के लिए

१. जनरल कनिंघम का प्रतिवेदन, खण्ड १, पृष्ठ २२६

नहीं। ऐसी अनूठी, अजीब, अनेक बेहूदगियाँ हैं जो जनरल कनिंघम-जैसे विदेशियों एवं विदेशी मुस्लिम शासनकाल में भारत की निरुद्देश्य यात्रा करनेवाले पूर्वकालिक यूरोपीय पर्यटकों की विचित्र, मूर्खतापूर्ण, ज्ञानशून्य नासमझ, अकल्पनाशील, अनुचित और अयुक्तियुक्त धारणाओं से निःसृत हैं।

मुस्लिम कपट-जाल के शिकारी उन प्रवंच्य पश्चिमी लोगों ने, तर्क-शास्त्र से पूरी तरह अनभिज्ञ होने के कारण, बिना जाँची-परखी टिप्पणियों के अनुचित भार से बोझिल करके इतिहास को अति क्षति पहुँचायी है।

यह तो संयोगवश ही है कि कर्नल टाड जैसा व्यक्ति अनजाने में ही सत्य लिख गया है। इस उदाहरण में, उसका यह लिखना कि दिल्ली के लालकिले के बाहर हिन्दू गजारोही विद्यमान थे (जिसे वह अकबर का राजमहल कहता है), हमें वह साधन उपलब्ध करता है जिससे हम अन्य यूरोपीय और मुस्लिम तिथिवृत्तकारों को चुप करा सकते हैं, उनकी काट कर सकते हैं।

भारत सरकार की एक मार्गदर्शिका पुस्तक सहज ही मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों से कुछ महत्त्वपूर्ण पर्यवेक्षण प्रस्तुत करते हुए, अपनी मन की तरंग में ही यह तथ्य भी प्रकट कर देती है कि लालकिला अकबर के समय में भी अर्थात् शाहजहाँ से दो पीढ़ियाँ पूर्व विद्यमान था।

पुस्तक का पर्यवेक्षण है : "पहले जमाने में (यह दीवाने-खास) शाह-महल या दौलतखाना-ए-खास, और गुसलखाना के अशुद्ध नाम से भी पुकारा जाता था। शाहजहाँ के दरबार का अब्दुल हमीद लाहौरी नामक तिथिवृत्तलेखक इस महाकक्ष के प्रयोजन और जिन नामों से यह जाना जाता था, उसके बारे में हमें जानकारी देता है (बादशाहनामा, खण्ड II पृष्ठ २२०; वही, खण्ड I, भाग II, पृष्ठ २३७। साथ ही, अमल-ए-सलीह के पृष्ठ ५७९-८० भी देखें)।

"दौलतखाना-ए-खास निपुण कलाकारों और आश्चर्यकारी कारीगरों द्वारा जनाना भाग और दीवाने-आम के मध्य में बनाया गया था, और विश्व का संरक्षक स्वामी दीवाने-आम से आने के बाद उस आह्लादकारी भवन की शोभा बढ़ाता है, और शाही सिंहासन पर विश्राम करता है।

यहाँ राज्य के कुछ खास महत्त्वपूर्ण मामले, जो विश्वासपात्रों और प्रिय दरबारियों के अतिरिक्त किसी को मालूम नहीं होते, बादशाह के स्वर्ग-जैसे दरबार के समस्या-समाधानकारी ध्यान और देवदूत-जैसी शक्ति के कारण, तुरन्त हल कर दिये जाते हैं।...चूंकि यह समृद्ध भवन हमाम के साथ ही है, इसीलिए यह गुसलखाना के नाम से (जो बादशाह अकबर के समय में इस भवन को दिया गया था) पुकारा जाता है। वर्तमान शुभ शासनावधि में यह दौलतखाना-ए-खास कहलाता है।"[१]

उपर्युक्त उद्धरण स्पष्टतः कहता है कि 'पहले जमाने में' अर्थात् शाहजहाँ से पहले, 'दीवाने-खास' शाहमहल अथवा दौलतखाना-ए-खास के नाम से जाना जाता था और चूंकि दिल्ली का लालकिला, जिसमें उपर्युक्त भाग स्थित है, शाहजहाँ के अतिरिक्त किसी अन्य मुस्लिम शासक द्वारा निर्मित होने का दावा किया जाता है, अतः शाहजहाँ से दो पीढ़ियों पूर्व इसके विद्यमान होने से स्वतः सिद्ध है कि यह एक प्राचीन हिन्दू-किला है जो विजय के कारण मुस्लिमों के अधिकार में चला गया था।

उपर्युक्त अवतरण शाहजहाँ के दरबार के अपने तिथिवृत्त—'बादशाह नामा'—से उद्धृत है। शाहजहाँ द्वारा दिल्ली में लालकिला बनवाने का दावा करना तो दूर, उसका दरबारी तिथिवृत्तलेखक स्वयं स्वीकार करता है कि संलग्न हमामवाला वह राजवंशी भाग अकबर के समय में गुसलखाना अर्थात् स्नानघर, हमाम ही कहलाता था। चूंकि अकबर शाहजहाँ का दादा (पिता का पिता) था, अतः स्पष्ट है कि हिन्दू लालकिले में शाहजहाँ से पूर्व भी विजयी होनेवाले विदेशी मुस्लिम बादशाहों की कई पीढ़ियाँ निवास कर चुकी थीं।

इसी मार्गदर्शिका-पुस्तक में अन्यत्र लिखा है: "कौन यह निष्कर्ष निकालता प्रतीत होता है कि सलीमगढ़ ही वह स्थान था, जहाँ से जवाँ-बख्त, राजमहल के अपने कमरे में चुपके-से खिसकने के बाद, एक भवन की छत से दूसरे भवन की छत पर कूद-कूदकर उस जल-राशि (नहर-

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० २७

फ़ैज, एक पुरानी नींववाली नहर जिसे शाहजहाँ ने किला बनने पर पुनः चालू कर दिया था) तक पहुँच गया था, जो हयात-बख्श बाग से गुजरती थी।"[1]

हम उपर्युक्त अवतरण का सम्यक् विश्लेषण करना चाहते हैं। यह अवतरण प्रारम्भ में ही सलीमगढ़ का सन्दर्भ प्रस्तुत करता है और कहता है कि (सन् १८५७ ई० के आसपास) एक मुस्लिम शाहज़ादा आसानी से एक भवन की छत पर से दूसरे भवन की छत पर आ सकता था, और लालकिले से नदी पर बने सलीमगढ़ नामक सेतु-शिखर तक पहुँच सका था। यह स्पष्टतः सिद्ध करता है कि सलीमगढ़, किले का ही एक अन्तरंग भाग था। अब, सलीम तो मुगलवंश के कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का नाम है, जो सब के सब शाहजहाँ से पूर्व हुए थे। अकबर का प्रिय गुरु सलीम चिश्ती शाहजहाँ से दो पीढ़ी पूर्व हुआ था। अकबर से एक पीढ़ी पूर्व सलीमशाह सूर हुआ था। तीसरा कुख्यात सलीम बादशाह जहाँगीर था जो शाहजहाँ का अपना पिता था। लालकिले का एक भाग जो यमुना नदी का स्पर्श करता था, शाहजहाँ से पूर्व किसी सलीम के नाम पर होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ से पूर्व विद्यमान था।

हमारे द्वारा उद्धृत अवतरण के अन्त की ओर यह भी कहा गया है कि प्राचीन मूल की एक नहर विद्यमान थी और शाहजहाँ ने उसे मात्र चालू ही किया था। हम, उन दिनों भी, इन जल-प्रवाहिकाओं को अपना मार्ग लालकिले में बनाए देखते हैं। शाहजहाँ द्वारा इसको पुनः चालू करना मात्र स्पष्टतया निहितार्थ प्रकट करता है कि जब शाहजहाँ दिल्ली के लालकिले में निवास करने के लिए आया, तब इसकी प्राचीन हिन्दू जल-व्यवस्था, जो मुस्लिम विप्लव और उपेक्षा के कारण अवरुद्ध, भंग हो गई थी, जिस-तिस प्रकार पुनः चालू कर दी गई थी। यह बात पुनः इस तथ्य की द्योतक है कि अपनी जटिल जल-प्रवाहिकाओं सहित यह किला शाहजहाँ से पूर्व भी विद्यमान था। यदि एक प्राचीन जल-व्यवस्था

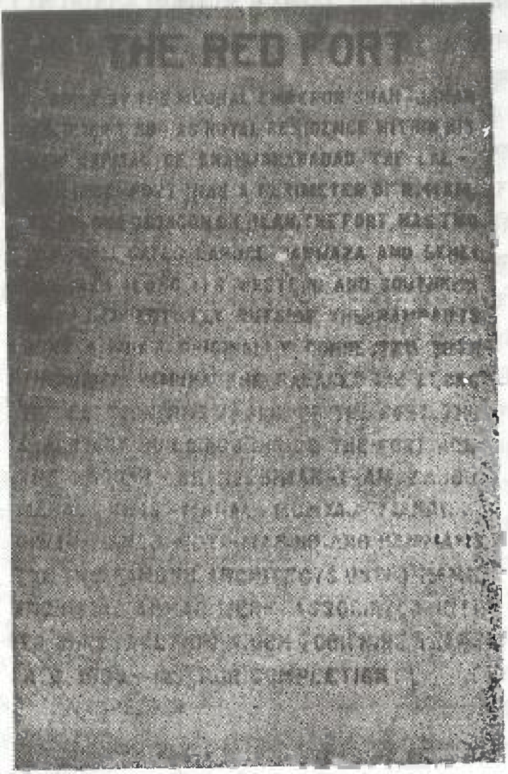
१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० ३६

विद्यमान थी, तो इसका अस्तित्व निर्जन में नहीं हो सकता था, जहाँ इनके उपयोग के लिए कोई निर्मित भाग न रहे हों। इसके विपरीत, यह मुस्लिम-काल ही था जब हिन्दू राजमहलों के भागों की अटूट शृंखला में बड़े-बड़े रिक्त-स्थान बना दिए गए थे। आज हम, रंगमहल और छोटे रंगमहल, खास महल और दीवाने-खास आदि को पर्याप्त रूप में एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् पाते हैं जिनके मध्य में बड़ी, खुली, संरचनाहीन, घास की स्तम्भ-पीठें विद्यमान हैं। पूर्वकाल में, इन सब रिक्त-स्थानों में राजवंशी हिन्दू राजमहलों के भाग थे जिनसे राजमहलों की एक अटूट शृंखला बनती थी जिनमें सतत जल-प्रवाहिकाएँ कार्यशील रहती थीं। आज, विलुप्त भाग के कारण, जल-प्रवाहिकाएँ अकस्मात् ही कहीं समाप्त हो जाती हैं, और फिर कहीं चालू होकर एकान्त में, एकाएक ही फिर समाप्त हो जाती हैं। इसलिए, उत्तरकालीन इस्लामी बादशाहों द्वारा लालकिले के भीतर किसी प्रकार की जल-व्यवस्था प्रारम्भ करना तो दूर, इन्हीं लोगों ने अपने यांत्रिकी अज्ञान और बर्बरतापूर्ण विक्षोभ के कारण किले के अत्यन्त जटिल और अत्युच्च तकनीकी प्राचीन हिन्दू जल-व्यवस्था को विनष्ट किया था।

वही मार्गदर्शिका-पुस्तक, चाहे बिना किसी प्राधिकरण के हीं, मात्र किंवदन्ती के आधार पर ही कहती है कि "हुमायूँ के पहुँचने के विरुद्ध, प्रतिरक्षा के रूप में, सलीमगढ़ का निर्माण शेरशाह के पुत्र और उत्तराधिकारी सलीमशाह ने किया था।"[1]

इस मार्गदर्शिका-पुस्तक ने अपने कथन के पक्ष में किसी प्राधिकरण का उल्लेख नहीं किया है क्योंकि स्पष्टतः इस प्रकार का प्राधिकरण कोई है ही नहीं। इसके विपरीत, हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि 'सलीमगढ़' लालकिले का एक अन्तरंग भाग है। अतः, यह स्पष्ट है कि शाहजहाँ से कुछ पीढ़ियों-पूर्व, मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं का यह स्वभाव बन चुका था कि वे सारे लालकिले को ही सलीमगढ़ के नाम से पुकारते थे। तथ्य तो यह भी है कि शाहजहाँ से कुछ पहले ही आगरा-स्थित किला भी कुछ

१. दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका, पृ० ४०



देहली का लालकिला ई० सन् १६३६ से १६४८ तक बना। इसे १६२८ कहनेवाला यह आधुनिक अभिलेख झूठ है क्योंकि सन् १६२८ में बादशाह बनते ही शाहजहाँ को उस किले में दर्शानेवाला एक तत्कालीन चित्र इस ग्रन्थ में समाविष्ट है।

पीढ़ियों द्वारा 'सलीमगढ़' ही कहा जाता था। अज्ञानी ब्रिटिश और मुस्लिम इतिहासकार इस सीदे-सादे सत्य को समझ सकने में विफल रहे क्योंकि उनको यह विश्वास बार-बार रटाया गया था कि शाहजहाँ ही वह व्यक्ति था जिसने दिल्ली में लालकिला बनवाया था। उस मुस्लिम प्रवंचना ने उन लोगों को, उन सुस्पष्ट प्रमाणों के प्रति भी अंधा बना दिया जो हम इस पुस्तक में यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं कि दिल्ली स्थित लालकिला चिरकालीन हिन्दू-अतीत का निर्माण है।

इस तथ्य के अतिरिक्त भी कि उपर्युक्त कथन का कोई ऐतिहासिक आधार अथवा प्रमाण नहीं है, इसमें स्वयं बहुत-सी बेहूदगियां हैं। एक बेहूदगी यह है कि ग्यारहवीं शताब्दी के महमूद गजनवी से हुमायूं तक लगभग ४५० वर्षों तक असंख्य इस्लामी आक्रमणकारियों ने यमुना के पार दिल्ली और उसके आगे दक्षिणी क्षेत्र पर हमले किये थे। तब प्रश्न उठता है कि क्या सलीमशाह सूर से पहले दिल्ली के सभी प्रतिरक्षक युद्ध-कला के प्रति इतने अज्ञानी अथवा उपेक्षावादी और लापरवाह थे कि उन्होंने यमुना के पास कोई प्रतिरक्षा-प्रतिष्ठान नहीं बनाया था? साथ ही, सलीमशाह सूर स्वयं एक ऐसा नगण्य बादशाह था जो दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्र, और वह भी बहुत थोड़े समय के लिए ही, अपना अस्पष्ट प्रभुत्व रख सका था। वह बिल्कुल ही महत्त्वपूर्ण शासक नहीं माना जाता। इतना ही नहीं, उसके अपने सम्बन्धियों में ही शत्रुगण थे। दूसरी बेहूदगी यह है कि यमुना के साथ-साथ प्रतिरक्षा-निर्माण करना इतनी नगण्य परियोजना नहीं है कि जब कोई आक्रमण सिर पर ही आ रहा हो, तभी उसका विचार भी कर लिया जाय और उस विचार के अनुरूप अतिद्रुत गति से निर्माण-कार्य भी सम्पन्न कर दिया जाय। तब फिर यह कैसे हुआ कि जब सलीमशाह सूर ने सुना कि हुमायूं अपने नर-राक्षसों के साथ भारी सेना लेकर भारत को लौट रहा है, तभी उसने सलीमगढ़ का तुरन्त निर्माण कर दिया? यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि आजकल सलीम-गढ़ नाम से पुकारा जानेवाला किले का क्षेत्र सम्पूर्ण किले के मूल रूप-रेखांकन का एक अन्तरंग भाग ही है। यह कोई बाद का विचार नहीं है। ऐसा नहीं है कि सलीमगढ़ को सर्वप्रथम एक तुच्छ सेतु-शिखर के रूप में

बना दिया गया था और फिर लगभग एक शताब्दी बाद उसकी पूंछ के रूप में यह लालकिला बनाकर जोड़ दिया गया था। इतना ही नहीं, इस बात का कोई अभिलेख नहीं है कि सलीमशाह सूर ने किले का कोई मार्ग बनवाया था। भयंकर भूल करनेवाले आँग्ल-मुस्लिम इतिहासकारों ने कल्पना को जोखिम में डालकर भी इतिहास के ऊपर एक असत्य कथा थोप दी है कि चूंकि हमारे आज के युग में भी किले का एक भाग सलीम गढ़ के नाम से जाना जाता है, इसलिए अवश्य ही इसको निर्माण किसी सलीम द्वारा किया गया होगा और वह सलीम केवल सलीमशाह सूर ही हो सकता था। इतिहास-अन्वेषण अथवा लेखन का यह उचित प्रकार नहीं है। प्रत्येक कथन के लिए उपयुक्त प्रमाण और तर्क होने चाहिएँ जो इतने गूढ़ या गोपनीय नहीं होने चाहिएँ जिनको मात्र तथाकथित इतिहासकार ही जान सकें अथवा समझ सकें—अपितु वे तो इतने स्पष्ट, सरल और समाधेय होने चाहिएं कि प्रत्येक पाठक को स्वीकार्य हों। पाठक को यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि उसे कुछ पूर्व-निश्चित, पूर्व-कल्पित निष्कर्ष, निर्णय वितरित किये जा रहे हैं और उसको उन्हें जिस-तिस प्रकार निगलना ही पड़ेगा। उसे समस्त प्रमाण और तर्क प्रस्तुत किये जाने चाहिएँ जिससे उसे पूरी तरह समाधान अनुभव हो कि लेखक द्वारा निर्णीत या सुझाया गया निष्कर्ष ही वह एकमात्र निष्कर्ष है जो उन विशिष्ट परिस्थितियों में हो सकता था। सम्पूर्ण साक्ष्य से पाठक को तादात्म्य अनुभव करा देना तो दूर रहा, तथाकथित इतिहासकारों ने स्वयं भी किसी प्रमाण, तर्क या साक्ष्य की परवाह करने या देखने-भालने की आवश्यकता अनुभव नहीं की है। उन्होंने परम्परागत झूठों, पाखंडों को पुनः प्रस्तुत करने और चिरस्थायी बनाने में ही सन्तोष कर लिया है, अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर ली है। "सलीमशाह सूर द्वारा लालकिले के सलीमगढ़ नामक अंश का निर्माण कराया जाना" भी एक ऐसा असत्यापित झूठ है जिसको भारतीय मध्यकालीन इतिहास की पुस्तकों द्वारा अन्धाधुन्ध दोहराया गया है।

अब हम एक अन्य लेखक को उद्धृत करते हैं। उसने भी इसी प्रकार की मनघड़न्त, असत्य बातों को दोहराया है। उसका पर्यवेक्षण है : "सन्

६२३ हिजरी (तदनुसार १५४६ ई०) में, जब शेरशाह के पुत्र सलीमशाह हुमायूं के आने की खबर सुनी, तब उसने 'तारीखे दाऊदी' के लेखक के अनुसार, लाहौर से वापस दिल्ली को प्रस्थान कर दिया जहां उसने यमुना की धारा के बीच में, दीन-पनाह के सामने सलीमगढ़ का निर्माण किया, ताकि हिन्दुस्थान में कोई भी किला इतना मजबूत न हो क्योंकि यह ऐसा लगता है मानो एक ही पत्थर से काटा गया हो।" यह एक अर्धवर्तुलाकार किला है; और किसी समय इसकी रक्षा-हेतु उन्नीस स्तंभ व बुर्ज बने हुए थे।...कहा जाता है कि इसके निर्माण में सलीमशाह को चार लाख की धन-राशि व्यय करनी पड़ी थी और पांच वर्ष का समय लगा था, किन्तु तब तक केवल दीवारें ही बन पाई थीं जबकि बादशाह मर गया और तब किले की घोर उपेक्षा हो गई। अस्सी वर्ष बाद, ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर और जहांगीर के शासनकाल में समृद्धि को प्राप्त होनेवाले एक अमीर फ़रीद खां उपनाम मुर्तज़ा खान को अन्य वस्तुओं के साथ-साथ, यमुना के निकट ही यह किला भी अकबर से अनुदानस्वरूप प्राप्त हो गया था, और उसने इसमें मकान बनवाए थे...इस किले में से अब ईस्ट इंडिया रेलवे की रेल-लाइन जाती है...यह शाहजहाँ के राजमहल के उत्तरी छोर पर स्थित है, और उस राजमहल के निर्माण के बाद राज्य-कारावास के रूप में उपयोग में लाया गया था। यह लम्बाई में पूरा एक-चौथाई मील भी नहीं है, और दीवारों की पूरी परिक्रमा भी एक मील की मात्र तीन-चौथाई ही है। यह नदी के पश्चिमी तट के निकट एक द्वीप में स्थित है, और अपने ऊँचे-उत्तुंग स्तम्भों तथा विशाल दीवारों के साथ, यमुना के दूसरी ओर से अति रमणीय चित्र प्रस्तुत करता है। दक्षिण दरवाज़े के सामने पांच मेहराबों का एक पुल बादशाह नूरुद्दीन जहाँगीर द्वारा बनवाया गया था, जिसके नाम पर ही, सैयद अहमद के अनुसार, इस स्थान का नाम नूरगढ़ बदल दिया गया था।"[1]

जिस प्रकार न्यायालय में प्रस्तुत एक दस्तावेज़ की अधिकारिकता और स्वीकार्यता देखने-परखने के लिए उसकी अत्यन्त सूक्ष्म पड़ताल की

१. "दिल्ली के पुरातत्त्वीय और स्मारक अवशेष", पृ० १६५

जाती है, उसी प्रकार हम भी उपर्युक्त अवतरण की समालोचनात्मक समीक्षा करेंगे।

इस्लामी झूठी कथाओं के अनुसार, जो मध्यकालीन इतिहास में प्रचलित है, दीन-पनाह एक ऐसा नगर था जिसको हुमायूं ने बनवाया था। दूसरा झूठ यह है कि शेरशाह ने उस शहर को पूरी तरह गिरा दिया था और उसके स्थान पर शेरगढ़ नामक एक अन्य नगर, अपनी पंच-वर्षीय शासनावधि में बनवाया था। यदि इन झूठी कथाओं पर विश्वास ही करना है, तो फिर हमारे द्वारा ऊपर उद्धृत अवतरण में शेरशाह की मृत्यु के कई वर्ष बाद तक भी दीन-पनाह नामक नगर का नाम कैसे उल्लेख किया गया है ?

यह स्पष्ट कर देता है कि अपनी धर्म-परिवर्तनकारी इस्लामी भावना को सन्तुष्ट करने के लिए ही हुमायूं ने पुरानी दिल्ली नाम के प्राचीन हिन्दू नगर का नाम दीन-पनाह कर दिया था। शेरशाह ने हुमायूं को खदेड़ देने के बाद उसी नगर का नाम शेरगढ़ कर दिया था। बाद में, शाहजहाँ की शासनावधि में उसी नगर का नाम शाहजहानाबाद कहलाने लगा था। स्पष्ट है कि प्रत्येक अनुवर्ती विदेशी मुस्लिम बादशाह और उसके चापलूसों की टोली यह सहन नहीं कर सकती थी कि नगरों के नाम किन्हीं भी पूर्व-वर्ती शासकों के नाम पर रखे जायें। नगरों के नाम बदलने की उनकी इस क़मज़ोरी से यह कल्पना करना ग़लत होगा कि उन लोगों ने नये नगरों की स्थापना की थी।

तारीखे-दाऊदी का लेखक भी अन्य दरबारी चापलूसों-जैसा प्रतीत होता है, जिसे शेरशाह-परिवार द्वारा अपने वंशधरों के पक्ष में सराहनीय वृत्तान्तों के लेखन-कार्य पर अवश्य ही भारी पुरस्कार प्राप्त हुए होंगे।

हमने ऊपर जिस अवतरण को उद्धृत किया है, वह अत्यन्त चिकनी-चुपड़ी मनघडन्त चापलूसी, चाटुकारिता का एक विशिष्ट उदाहरण है। मात्र हुमायूं के आने की अफ़वाह सुनकर ही जल्दी-जल्दी में लाहौर से दिल्ली वापस आनेवाला कायर सलीमशाह दिल्ली में ऐसा किला कैसे बना सकता था जो हिन्दुस्थान के अन्य सब किलों से श्रेष्ठ हो ? वापस तेजी से भागनेवाले कायर लोग भी क्या कभी ऐसे महान् दुर्गों का निर्माण

करते हैं ?

यदि सलीमशाह सूर को किसी सुदृढ़ प्रतिरक्षा निर्माण की ही आवश्यकता आ पड़ी थी, तो वह तो हुमायूं का मुक़ाबला करने के लिए लाहौर और दिल्ली के बीच में अनेकों ऐसे मजबूत किलों में से किसी एक में भी मोर्चाबन्दी कर सकता था। और, यदि फिर भी यह विश्वास किया ही जाना है कि उसने इतना भव्य किला बनवाया था 'जो मानो एक ही पत्थर से काटा गया हो', तो शाहजहाँ द्वारा बनाया जाने के लिए फिर शेष रहा ही क्या था ? फिर भी शाहजहाँ को लालकिला बनाने का श्रेय, यश क्यों दिया जाता है जबकि उससे पूर्व ही सलीमशाह सूर ने स्वयं लालकिला बनवाया था जो उस वर्णन को चरितार्थ करता है कि 'मानो एक ही पत्थर से काटा गया हो', जैसा हम आज भी देखते हैं ? आज भी किला अर्धवर्तुलाकार है। यह इस बात का द्योतक है कि मुस्लिम दरबारी चाटुकार एक ही—उसी लालकिले को सन् १५४६ ई० में सलीमशाह द्वारा और सन् १६४८ ई० शाहजहाँ द्वारा निर्मित कह रहे हैं। स्पष्ट है कि वे सब विवरण काल्पनिक हैं जिनमें इसकी निर्माण-लागत चार लाख रुपये और कुल निर्माण-अवधि पाँच वर्ष बताई गई है। अन्य बेहूदगियाँ और परस्पर विरोधी बातें भी हैं। उदाहरण के लिए, हमें बताया जाता है कि सलीमशाह ने १९ स्तम्भोंवाला एक महान् किला बनवाया था। फिर, अकस्मात् ही कह दिया जाता है कि जब सलीमशाह मरा, तब किले की बाहरी दीवार ही खड़ी की गई थी।

ऊपर दिये गए अवतरण में समाविष्ट एक अन्य विवरण भी प्रमाणित करता है कि सम्पूर्ण लालकिला ही शाहजहाँ से पूर्व सलीमगढ़ के नाम से पुकारा जाता था क्योंकि हमें बताया जाता है कि फ़रीदखान ने इसके अन्दर मकान बनाए थे। सभी मुस्लिम दावों के समान यह कहना भी प्रवंचना है कि फ़रीदखान ने इसके अन्दर मकान बनाए थे, क्योंकि जिस भी हिन्दू-सम्राट् ने चिर-अतीत में यह किला बनवाया था, उसने अपनी रक्षक-सेना के लिए मकान भी अवश्य बनवाए होंगे। स्वयं लालकिले के अन्दर भी मकान हैं। नदी-मुख की ओर निकले हुए बाहरी भाग में, अन्दर कोई मकान नहीं है। सभी अन्य लोगों में से एक अत्यन्त छोटा सरदार फ़रीद-

खान ही किले के अन्दर मकान बनाने की तकलीफ़ क्यों करे जब उससे पूर्व हुए अनेकों महान् मुस्लिम शासकों ने किले के भीतर मकान बनाने की तकलीफ नहीं की थी ? इस सबसे पाठकों को यह सिद्ध हो जाना चाहिए कि यह लालकिला अपने मकानों, नदी की ओर बाहर निकले हुए भाग-सहित—जिसे आजकल सलीमगढ़ कहते हैं, सब-का-सब 'लालकोट' (अर्थात् लालकिला)नामक प्राचीन हिन्दू-दुर्ग का ही एक अंश है। मुस्लिमों ने इसपर विजय करने के बाद नूरगढ़ या सलीमगढ़ जैसे अपने इस्लामी शब्दों से इसे सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया था। यदि फ़रीदखान से पहले किले के भीतर कोई मकान नहीं थे, तो उसे इस किले को अपनी जागीर के रूप में रखने का कोई अर्थ ही नहीं था। एक बात और भी है—यदि इस किले में फ़रीदखान से पूर्व कोई मकान नहीं थे तो इसकी रक्षा करने वाली सेना के लोगों को रहने के लिए कौन-सी जगह उपलब्ध थी ?

हम अब एक पुस्तक का उल्लेख करेंगे। इसमें कहा गया है : "लाल-किले की उत्तर दिशा में स्थित सलीमगढ़ किले का भ्रमण करने के लिए विशेष अनुमति की आवश्यकता है(स्टेशन स्टाफ़ अधिकारी के पास आवेदन दें) जिसपर पहले एक पुल के द्वारा पहुँचा जा सकता था जिसको बादशाह जहाँगीर द्वारा निर्मित कहा जाता है—यदि यह वास्तव में उसका काम हो, तो दिल्ली में यह उसका एकमेव निर्माण है, किन्तु यह कार्य फ़रीदखान का किया हुआ होने की अधिक संभावना है, जिसे जागीर में सलीमगढ़ मिला हुआ था।"[1]

उपर्युक्त अवतरण के लेखक को इस बात का निश्चय नहीं है कि पुल को जहाँगीर ने बनवाया था अथवा फ़रीदखान ने। सत्यतः, यह दोनों में से एक ने भी नहीं बनवाया था क्योंकि उनका समर्थन करनेवाला कोई शिलालेख या तत्कालीन प्रलेख—दस्तावेज नहीं है। साथ ही, यदि यह माना जाता है कि एक परवर्ती बादशाह शाहजहाँ ने लालकिला बनवाया था, तो यह कैसे संभव है कि बादशाह जहाँगीर और फ़रीदखान नामक

---

१. "दिल्ली—विगत और वर्तमान", पृष्ठ ४०

उसके पूर्ववर्तियों ने किले को जोड़नेवाला ऐसा पुल बनाया था जो उस बाहरी प्रतिरक्षा-निर्माण से जुड़ा हुआ था जिसे अब सलीमगढ़ कहते हैं ? साथ ही, यदि यह माना जाता है कि सलीमशाह सूर ने यमुना नदी के एक द्वीप में सलीमगढ़ नामक सेतु-शिखर बनाया था, तो क्या वह इस तक पहुँचने के लिए एक पुल नहीं बनाता ? यदि वह ऐसा नहीं करता, तो उसकी सेना या दुर्गसेना सलीमगढ़ नाम से पुकारे जानेवाले दुर्भेद्य द्वीप-दुर्ग का बचाव करने की कैसे आशा कर सकती थी ?

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिल्ली में, जो चिर-स्मरणातीत प्राचीन काल का नगर है, नदी-मुख के साथ-साथ, एक महत्त्वपूर्ण किला बना हुआ था। उस किले का दूसरे तट पर एक सेतु-शिखर था। वह सेतु-शिखर एक पुल द्वारा लालकिले से जुड़ा हुआ था। (नदी इस पुल के नीचे से बहा करती थी। आजकल वह सूखा-तल एक सड़क है।) ये तीनों मिलकर एक अकेला एकीकृत प्रतिरक्षा-निर्माण था और यह विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा दिल्ली को डराए-धमकाए जाने से पूर्व किसी समय विद्यमान था।

तथापि, यह स्वीकार करने में संकोच, लज्जा अनुभव करनेवाले घोर मुस्लिमवाद ने, कि मुस्लिम अपहरणकर्ता विजित हिन्दू-भवनों में निवास कर रहे थे, झूठी कथाएँ प्रचारित कर दीं, जिनमें किले के मूल निर्माण का श्रेय इस या उस मुस्लिम सुलतान, बादशाह या दरबारी को दिया गया था। परिणाम यह है कि हमें परस्पर-विरोधी वर्णन मिलते हैं जिनमें से कुछ में दावा होता है कि किला या पुल या सेतु-शिखर सलीमशाह सूर, या फ़रीदखान या जहाँगीर या शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था—और उनमें से किसी भी दावे के समर्थन में एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता।

हम यह भी देख चुके हैं कि प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रमणकारियों के समय से ही किले, पुल और सेतु-शिखर के अस्तित्व का साक्ष्य उपलब्ध है।

इस विषय का अन्तिम रूप से निश्चय, निर्णय करने के लिए हम अब एक ऐतिहासिक आकर-ग्रन्थ से अतिमहत्त्वपूर्ण अवतरण उद्धृत करेंगे

जिसमें कहा गया है कि लालकिला एक प्राचीन हिन्दू शासक द्वारा बनवाया गया था, न कि किसी मुस्लिम आक्रमणकारी अथवा अपहरणकर्ता द्वारा। वह पर्यवेक्षण इस प्रकार है : "सन् १०२२ ई० में जब महमूद गज़नवी ने कन्नौज नगर विजय किया, तब (तँवर-वंश का) जयपाल वहाँ का शासक था। दिल्ली पर भी उसी का शासन था··· उसका उत्तराधिकारी कुमारपाल था···जिसका उत्तराधिकारी अनंगपाल-द्वितीय था। उसके (अनंगपाल के) सम्बन्ध में संवत् १११७ (सन् १०६०) का एक शिलालेख है जिसमें कहा गया है कि दिल्ली नगर के चारों ओर विशाल दीवार बनवाकर उसने इसका किला बनवाया और लालकोट (अर्थात् लालकिला) भी बनवाया था।"[1]

देवनागरी लिपि में लिखे हुए हिन्दी शिलालेख की वास्तविक शब्दावली निम्नलिखित प्रकार से है :

"दिल्ली का कोट कराया—
लाल कोट बनाया"

इसकी व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है अर्थात् हम जैसा पहले कह चुके हैं कि (राजा अनंगपाल ने) दिल्ली नगर के चारों ओर विशाल दीवार बनवाकर इसका किला बनवाया (और)···लालकोट (अर्थात् लालकिला) भी बनवाया था।

अन्य व्याख्या यह होगी कि (राजा अनंगपाल ने) लालकिला बनवाकर दिल्ली का दुर्ग बनाया, उसको मजबूत कर दिया।

दोनों प्रकारों में यह पूरी तरह स्पष्ट है कि राजा अनंगपाल ने दिल्ली में लालकिला बनवाया था। यह शिलालेख सन् १०६० ई० का है, जैसा ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है।

इसके विपरीत, हमें लालकिले के भीतर असाधारण स्थानों और

---

१. अनुवादक का पद-टीप क्रमांक ३, पृष्ठ ५२०, खण्ड २, 'रसमाल' 'पुस्तक, १९२७ का संस्करण, लेखक ए० के० फोर्बेस। अंग्रेजी से गुजराती में अनूदित—अनुवादक—सुप्रसिद्ध इतिहासकार दीवान बहादुर रणछोड़भाई उदयराम।

दुर्बोध कोनों पर इस्लामी लिखावटों का वह विचित्र समूह प्राप्त है जिसमें अत्यधिक असंगत और निरर्थक, निष्प्रयोजन शब्द-समष्टि भरी पड़ी है। ऐसे उत्तरदायित्वहीन शिलालेख किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति का दुरुपयोग करनेवाले अपहरणकर्ताओं और अन्तःप्रवेष्टाओं द्वारा ही उत्कीर्ण किये जाते हैं।

स्पष्ट है कि पराधीन भारत के ब्रिटिश प्रशासन के हेतु भारत का पुरातत्त्व-सर्वेक्षण-विभाग सर्वप्रथम स्थापित करनेवाले जनरल कनिंघम को उपर्युक्त शिलालेख की जानकारी अवश्य थी। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि उसने अपने मूल-प्रतिवेदन में अनंगपाल के लालकोट को स्वीकार किया ही है, किन्तु, दुर्भाग्यवश चूँकि वह एक अन्यदेशीय व्यक्ति था, इसलिए उसकी कुछ अपनी ही विचित्र, अज्ञानभरी धारणाएँ, कल्पनाएँ और भ्रांतियाँ भी थीं।

उग्रवादी मुस्लिम असत्य कथाओं ने यह विश्वास दिलाकर, कि लाल किला सन् १६४८ ई० में शाहजहाँ बादशाह द्वारा बनवाया गया था, उसका मस्तिष्क दिग्भ्रमित कर दिया था। अतः भोले, अज्ञानी, प्रवंच्य कनिंघम ने वर्तमान लालकिले को ही प्राचीन हिन्दू राजा अनंगपाल द्वारा निर्मित प्रत्यक्ष लालकोट पहचानने में विफल होने पर, अपने प्रतिवेदन में कहा था कि अनंगपाल का लालकोट तथाकथित कुतुबमीनार के आसपास ही कहीं होना चाहिए था किन्तु खेद है कि वह किला जिस-तिस प्रकार अब दिखाई नहीं दे सकता। किसी इतिहासकार द्वारा ऐसा वक्तव्य दिया जाना एक अति विचित्र बात है। एक किला कोई सुई तो नहीं है जो किसी भू-प्रदेश में सदा के लिए खो जाय, लुप्त हो जाय।

इस प्रकार, कनिंघम की प्रारम्भिक भयंकर भूल ने भारतीय पुरातत्त्व के सम्पूर्ण अध्ययन को ही भ्रष्ट, दूषित कर दिया है। चूँकि कनिंघम पुरातत्त्व-विभाग का अध्यक्ष था, अतः उसका प्रारम्भिक प्रतिवेदन भारतीय पुरातत्त्व का सम्पूर्ण वाङ्मय ही समझा जाने लगा है। किन्तु जैसाकि हम एतत्पूर्व स्पष्टीकरण दे चुके हैं, उसे उतना ही मान दिया जाना चाहिए जिसके योग्य वह है—अर्थात् भारतीय पुरातत्त्व का मिथ्या पैग़म्बर। उसके प्रतिवेदन में कही गई सभी बातों को अन्धाधुन्ध, ज्यों-का-त्यों,

पूर्ण सत्य मानकर अंगीकार कर लेने की वर्तमान वृत्ति ने भारत के ऐतिहासिक स्थलों और भवनों के बारे में सम्पूर्ण विश्व को दिग्भ्रमित किया है।

जैसा इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में स्पष्ट किया गया है, कनिंघम ने अनंगपाल द्वारा निर्मित लालकिले की स्वयं ही चर्चा की है। वह यह भी जानता था कि दिल्ली में केवल एक ही लालकिला है जो दिल्ली में सर्वाधिक लोकप्रिय ऐसा ऐतिहासिक भवन है जिसे प्रतिदिन हज़ारों दर्शक देखते हैं, और फिर भी विचित्रता यह है कि उसने इस तथ्य की अनदेखी कर दी कि हम आज जिसे लालकिला कहते हैं वह वही लालकोट (लालकिला) है जिसे सब इतिहासकार सन् १०६० ई० में हिन्दू सम्राट् अनंगपाल द्वारा निर्मित मानते हैं, न कि विदेशी मुस्लिम बादशाह शाहजहाँ द्वारा सन् १६४८ ई० में निर्मित।

अध्याय १०

राजवंशी हिन्दू राजचिह्न

दिल्ली का लालकिला हिन्दू-मूलक मूलतः होने का एक अत्यन्त सशक्त, सुस्पष्ट एवं सजीव प्रमाण वह प्राचीन हिन्दू राजवंशी राजचिह्न है जो किले के केन्द्रीय, मुख्य भाग में भलीभाँति दिखाया गया है।

हिन्दू-युग में सम्राट् के अपने विशेष कक्ष का ही परवर्ती मुस्लिम-युग में भी उसी पदनाम से सम्बोधित होते रहना किले के साथ जुड़ी सुदृढ़ हिन्दू परम्परा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी के साथ-साथ यह और भी महत्त्व की बात है कि जिसको सम्राट् का विशेष कक्ष कहते हों, उसी में यह हिन्दू-अधिकार-चिह्न प्रदर्शित किया गया है। एक अन्य ध्यान देने योग्य बात यह है कि सम्राट् का यह विशेष कक्ष नदी-तट की ओर बने हुए राजवंशी कक्षों की पूरी पंक्ति के बीच में—मध्य में ही बना हुआ है। सम्राट् का विशेष कक्ष मध्य में होना हिन्दू-परम्परा से मेल खाता है—उसके अनुरूप है। आगे बढ़ती हुई सेनाओं में भी हाथी पर बैठा हुआ हिन्दू सम्राट् सेना के मध्य भाग में ही हुआ करता था।

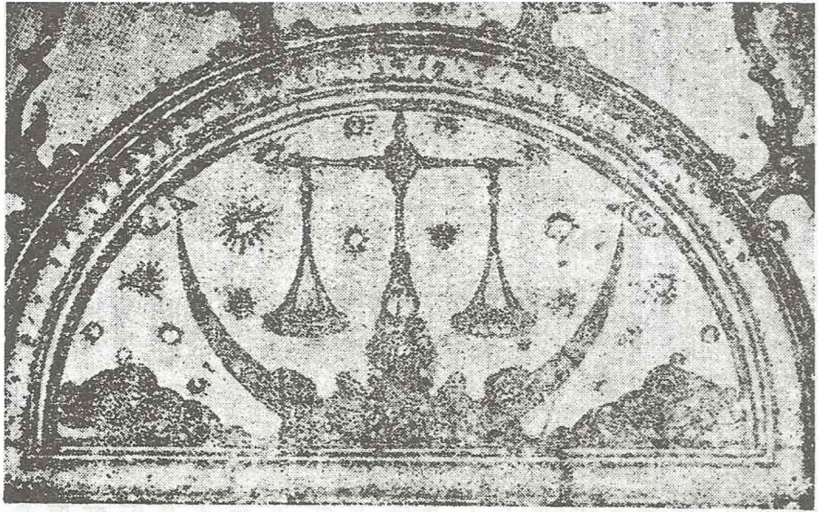
यह बात ध्यान रखने की है कि आगरा-स्थित लालकिले में बाहरी दीवारें पवित्र हिन्दू गैरिक रंग की हैं, और राजवंशी भागों की पंक्तियाँ किले के नदी-पार्श्व की ओर हैं। इसी प्रकार, दिल्ली में लालकिले की बाहरी दीवार का रंग भी गैरिक है, जो हिन्दू राजवंशी और धार्मिक परम्परा में अत्यन्त प्रिय और पवित्र है। इसी प्रकार राजवंशी भागों की

पंक्ति भी नदी-तट की ओर ही है। यह इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि दिल्ली और आगरा में बने हुए दोनों लालकिले एक ही नमूने पर निर्मित हैं, तथा वह नमूना हिन्दू नमूना ही है। जहाँ यह पुस्तक दिल्ली का लालकिला हिन्दू-मूलक होना सिद्ध करती है, वहाँ 'आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है' शीर्षक अन्य पुस्तक ने आगरा-स्थित लालकिले का प्राचीन इतिहास ईसा-पूर्व युग से और कम-से-कम इस्लाम की स्थापना से नौ सौ वर्ष पूर्व का खोज निकाला है।

दिल्ली के लालकिले में बने ख़ास महल का एक अन्य लक्षण विशिष्ट रूप में हिन्दू मर्मबिन्दु और इस्लामी चिड़चिड़ेपन का द्योतक है—अर्थात् इसके दरवाज़ों के कुंडे गज-मस्तकों के बने हैं जिनपर हिन्दू महावत शोभायमान हैं। जबकि इस प्रकार के मूर्ति-पूजा सम्बन्धित प्रतीक हिन्दू-परम्परा में अतिप्रिय और रुचिकर हैं, अन्यदेशीय इस्लामी रीति-रिवाज के अनुसार वे तिरस्कार, घृणा की त्याज्य वस्तुएँ हैं। यदि शाहजहाँ ने दिल्ली के लालकिले का निर्माणादेश दिया होता, तो उसने अपने खास शाहीमहल में इस प्रकार की मूर्ति-पूजा-सम्बन्धी आकृतियों के निर्माण की कभी अनुमति न दी होती। किन्तु एक विजेता के नाते उसे उन्हीं वस्तुओं से काम चलाना था। यदि उसने उन्हें निकालने का यत्न किया होता, तो उनके निकल जाने से द्वारों में बड़े-बड़े छिद्र हो गए होते, और एक सुन्दर नमूने में भद्दापन, विद्रूपता स्पष्ट झलकने लगती। थेगड़ी लगाने जैसे कुछ मरम्मत-कार्य ने शाही भागों के दरवाज़ों को भोंड़ा-रूप दे दिया होता। हम इस किले के भीतर बनी इन तथा अन्य गज-प्रतिमाओं के बारे में एक अलग अध्याय में चर्चा करेंगे। यहाँ तो हमने उनका उल्लेख, राजवंशी हिन्दू राजचिह्न—अधिकार चिह्न के अतिरिक्त, सम्राट् के अपने 'ख़ास महल' में एक विशिष्ट हिन्दू-लक्षण के रूप में ही किया है।

यह राजवंशी हिन्दू अधिकार-चिह्न फ़र्श के धरातल से लगभग दस फ़ीट की ऊँचाई पर है, और अपने ही आधार पर लगभग पाँच फ़ीट चौड़ा होना चाहिए—इसकी अपनी ऊँचाई लगभग तीन फ़ीट है। यह जालीदार संगमरमरी विभाजन-दीवार के सबसे ऊपरी भाग में रेखा-चित्रण है।

आधार के बाएँ और दाएँ छोरों पर दो बड़े-बड़े शंख बने हुए हैं।



मध्य में दो तलवारों के फल हैं जिनकी मूठें एक-दूसरे के बीच में जुड़ी हुई हैं—फल ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कोष्ठकों का एक जोड़ा हो। इस पट्टी के मध्य में ही, मूठों के ठीक ऊपर पवित्र हिन्दू कलश है—उस कलश के ऊपर कमल की कली है, उस पर एक कमल-डण्डी है जिसपर न्याय-तुला टिकी हुई है। ऊपर की ओर मुड़ते हुए तलवार-फलों से एक कोष्ठक बनता जान पड़ता है जिसके मध्य में न्याय-तुला (तराजू) समाती दीख पड़ती है। दोनों तलवारों के फलों की नोकों के समाप्त होने के स्थान पर ही दो छोटे शंख बने हुए हैं। इस संगमरमरी पीठ पर, तुला के निकट खाली जगह पर सूर्य के छोटे-छोटे प्रतिबिम्ब बने हुए हैं। मध्याह्न के तेजस्वी, देदीप्यमान सूर्य का एक बृहदाकार प्रतिबिम्ब भी बना हुआ है, जो ऊपर बनी हुई मेहराब से उस संगमरमरी पीठ पर चमक रहा है।

यह हिन्दू राजवंशी अधिकार-चिह्न संगमरमरी विभाजन-पीठिका के दोनों ओर बना हुआ है। एक ओर, इस पीठिका पर मेहराब-युक्त सूर्य-प्रतिबिम्ब छाया हुआ है। इसी ओर, सूर्य के छोटे-छोटे रूप मात्र बिम्ब गोल पात्र ही प्रतीत होते हैं। इन बिम्बों में से किरणों-जैसी प्रस्फुटित होती हुई अत्यन्त कोमल रेखाएँ यहाँ के परवर्ती मुस्लिम आधिपत्य-कर्ताओं ने मिटा दी हैं, बिल्कुल निर्मूल कर दी हैं। किन्तु उसी पीठिका की दूसरी ओर बने अधिकार-चिह्न में अभी भी सूर्य-किरणें स्पष्ट दिखायी देती हैं जिनसे हमें ज्ञात हो जाता है कि दूसरी ओर बने बिम्ब भी सूर्य-बिम्ब ही हैं। उस पीठिका का चित्र पिछले पृष्ठ पर दिया गया है।

ऊपर लिखे सभी विवरण पाठक को प्रस्तुत चित्र में स्पष्ट दीख सकते हैं।

और फिर भी लालकिले की शाहजहानी कथा के प्रचारक तलवारों के फलकों को अर्ध-चन्द्र और सूर्य-प्रतीकों को तारों के रूप में ग़लत प्रचार करते रहे हैं। शंखों, कमल-कलिका और हिन्दुओं के पवित्र कलश के बारे में उन्होंने एक अत्यन्त रहस्यमयी चुप्पी साध रखी है। तराजू को, वे बड़ी मौज-मस्ती में उन क्रूर, नृशंस मुग़लों की न्याय-तुला वर्णित करते रहे जिन्होंने अपनी निन्यानवे प्रतिशत हिन्दू जनता को घृणित, तिरस्कृत नराधम समझकर लूटने और मार डालने योग्य ही समझा था।

यह विशद रूप में भारतीय इतिहास की खेदजनक, शोचनीय स्थिति का-स्पष्ट दृष्टान्त है। उग्रवादी इस्लामी स्पष्टीकरणों को इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों द्वारा अन्धाधुंध स्वीकार, हृदयंगम किया गया था, और बिना किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल के ही प्रवंच्य विश्व में प्रचारित कर दिया गया था।

हम अब राजवंशी अधिकार-चिह्न में समाविष्ट भिन्न-भिन्न वस्तुओं का हिन्दू-माहात्म्य स्पष्ट करेंगे। आधार में रखी हुई तलवारों का जोड़ा राजकीय शक्ति का प्रतीक है जो सम्पूर्ण प्रशासन का आधार अथवा नींव है। कलश अर्थात् पवित्र हिन्दू जल-पात्र, जो मूंठों के ऊपर स्थापित है, पवित्र साम्राज्य की संस्थापना, नींव का प्रतीक है। कलश के ऊपर रखी कमल-कलिका धन, समृद्धि और संस्कृति की द्योतक है। हिन्दू परम्परा में, धन की देवी लक्ष्मी कमल पर खड़ी हैं, कमलासना, पद्मासना हैं। न्याय-तुला हिन्दू-राज्य के प्रधान द्वारा प्राथमिक कर्तव्य के रूप में सभी को समान न्याय प्रदान करने का भाव प्रकट करती है। ऊपरवाली मेहराब छत्र के समान है। इसी से, राजवंशी प्रताप. का द्योतक मध्याह्न-सूर्य उस पीठिका पर प्रकाशित होता है। इसी प्रकार, ठोस स्वर्ण का एक सूर्य-चिह्न जयपुर के शासक के महल में एक मंच पर अभी भी रखा हुआ देखा जा सकता है। इस पीठिका के ऊपर मेहराब में सूर्य की आकृति और स्वयं पीठिका में स्थान-स्थान पर बने हुए छोटे-छोटे सूर्य—भारतीय शासक-वर्ग—क्षत्रियों का सूर्यवंशी होना प्रमाणित करता है—उनके सूर्यवंशी होने का स्पष्ट द्योतक है। अधिकांश भारतीय, हिन्दू शासक-वंश अपने-आपको सूर्य से उत्पन्न—सूर्यवंशी ही होने का दावा करते हैं। शंख भगवान् विष्णु का, विश्व के संरक्षक का अनिवार्य साहचर्य-अंश है। हिन्दू-परम्परा में, राजा, भगवान् विष्णु का अवतार विश्वास किया जाता है क्योंकि राजा अपने शासन के अन्तर्गत सारी प्रजा का संरक्षण वैसे ही करता है जैसे विष्णु विश्व के प्राणियों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार पीठिका में बने शंख राजा द्वारा अपनी प्रजा के सुरक्षात्मक, दैवी संरक्षण के प्रतीक हैं।

पूर्वोक्त पीठिका, दिल्ली में लालकिले का असंदिग्ध हिन्दू-मूल सिद्ध



करने के अतिरिक्त एक विरली, अद्वितीय खोज भी प्रस्तुत करती है क्योंकि प्राचीन हिन्दू राजवंशों के ऐसे कुल-चिह्न अनेकों अन्य स्थानों पर भी ढूंढे जाने चाहिएं। इस राजचिह्न का यह उदाहरण, जिसे अभी तक मुस्लिमों से जोड़ा जाता था, इतिहासकारों के मस्तिष्कों से, उस प्रवृत्ति को बाहर निकलवाने के लिए पर्याप्त प्रेरक होना चाहिए जिसमें भारत में बने प्रत्येक ऐतिहासिक भवन को आक्रमणकारी अन्यदेशीय मुस्लिमों द्वारा निर्मित होने का श्रेय दिया जाता है।

दिल्ली के लालकिले में विद्यमान राजवंशी अधिकार-चिह्न के संगठक विभिन्न प्रतीकों के कृत्रिम महत्त्व और हमारे द्वारा बताए गये उनके वास्तविक माहात्म्य का विशाल अन्तर स्पष्ट दर्शाता है कि एक बार दिग्भ्रमित हो जाने पर लोग किस प्रकार सम्मोहित हो जाते हैं कि वे हिन्दू प्रतीकों, चिह्नों को मुस्लिम चिह्न मानकर ग़लती करते रहते हैं। इस प्रकार, सूर्य के अनेक प्रतीकों को बड़ी मस्ती में इस्लामी सितारे और तलवारों के जोड़े को इस्लामी अर्धचन्द्र माना जाता था। यह इतिहास के निपट और परिपूर्ण विपरीत रूप को सुस्पष्ट, जीता-जागता उदाहरण है। लोगों की असंख्य पीढ़ियों के कानों में इस प्रकार की विकृति के अनवरत प्रवेश ने, विश्वभर में, उनकी तार्किक मेधा-शक्तियों को अवाक्, विकलांग कर दिया है। उनको अंधा भी कर दिया गया है, जिनके परिणामस्वरूप वे दृश्यमान प्रतीकों को भी उनके सत्य परिप्रेक्ष्य में देख नहीं पाते। इस प्रकार, भ्रष्ट अर्थात् उलटे भारतीय इतिहास के शिक्षण ने न केवल ऐतिहासिक अप-सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया है, अपितु विश्व भर के लोगों की तार्किक और वैकल्पिक-विधाओं को, शताब्दियों तक सामान्य रूप में, स्थायी क्षति पहुँचाई है।

सामने का चित्र हिन्दू राजवंशी अधिकार-चिह्न का एक अन्य दृश्य है। सूर्य का एक विशाल चित्र तुला-चिह्न पर प्रखर-रूप में चमचमा रहा है। उदयपुर के महाराणाओं के राज-घराने में विद्यमान भवन में इसी प्रकार का एक सूर्य ठोस स्वर्ण का बना हुआ देखा जा सकता है। महाराणाओं का यह उदयपुरी कुल मध्यकालीन हिन्दू शासक-परिवारों में सर्वाधिक यशस्वी कुल माना जाता है। उदयपुर के राजप्रासाद में और दिल्ली में

लालकिले के रूप में विख्यात राजमहल में सूर्य के समान-प्रतीकों का विद्यमान होना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि लालकिले का निर्माणादेश एक हिन्दू सम्राट् द्वारा ही दिया गया था।

पूर्वांकित चित्र में सूर्य के दोनों पार्श्व में पवित्र हिन्दू अक्षर 'ओ३म्' भी बना हुआ देखा जा सकता है। हिन्दू-पीठिका में ऊपर बाईं ओर बाद में ठूंसी गई फ़ारसी-लिखावट इस तथ्य का परिचायक है कि विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और अन्तःप्रवेष्टाओं ने हथियाए और अपने अधिकार-आधिपत्य में लिये गए भवनों पर किस प्रकार असंगत बातें अंकित कर दी हैं। इससे हमें मध्यकालीन इतिहास को समझने में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त उपलब्ध हो जाता है। जब कभी किसी भवन में ऊबड़-खाबड़ जगहों पर तथा दुर्लभ कोनों पर ऐसी असंगत इस्लामी लिखावटें हों जिनका भवन के मूल तथा स्वामित्व से कोई सम्बन्ध न हो, तो उस भवन को तुरन्त हिन्दू भवन के रूप में पहचान लेना चाहिए, जिसे विदेशियों ने हथिया लिया है। किसी भी शिलालेख को संगत होने के लिए उसमें भवन को प्रारम्भ करने या पूरो निर्मित होने की तारीख, उसको बनवाने वाले का नाम तथा बनवाने का प्रयोजन अंकित होना चाहिए। यह स्मरण रखना चाहिए कि वास्तविक स्वामी 'नींव के पत्थर' पर ऐसे ही विवरण अंकित करता है। वह असंगत बातें लिखने-लिखाने की अनुमति देकर कभी भी अपना भवन विद्रूप नहीं कराना चाहता, परन्तु किसी बलात्— अन्तःप्रवेष्टा को, अपहरणकर्ता को और हथियानेवाले को विजित भवनों पर असंगत बातें लिखने, थोपने, उत्कीर्ण करने में अपना कोई आत्मिक-अनुताप नहीं करना पड़ता। अतः, भारत के मध्यकालीन भवनों को, जिनमें असंगत मुस्लिम शिलालेख दिखाई पड़ते हों, वे भवन माने जाने चाहिएँ जो हिन्दुओं की पराजय के कारण विजेता मुस्लिमों के हाथों में, अधिकार में जा पड़े थे। ऐसा ही एक भवन दिल्ली का लालकिला है।

राजचिह्न में समाविष्ट प्रतीकों का प्राचीन, रूढ़िवादी हिन्दू परम्परा में अत्यन्त पुनीत माहात्म्य है। सर मोनियर विलियम्स के संस्कृत-अंग्रेजी, शब्दकोश और मराठी के 'भारतीय संस्कृति कोश' से हमें ज्ञात होता है कि राज्याभिषेक अथवा विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण, पुनीत अवसरों पर रूढ़िवादी

हिन्दू-पद्धति में आठ पवित्र हिन्दू अंगीभूत लक्षणों की पूजा की जाती थी अथवा उन स्थलों पर उनको प्रमुख रूप में प्रदर्शित किया जाता था। ये 'अष्ट-मंगल' कहलाते थे।

इन आठ-पदार्थों को निम्नलिखित वस्तुओं में से चुना जाता था—मीन-युगल, देव-विमान-गृह (अर्थात् वैसा छत्र जैसा हम राजा के बैठने के लिए दिल्ली के लालकिले के तथाकथित दीवाने-आम में देखते हैं), श्रीवत्सम वर्द्धमान, त्रि-रत्न, पुष्पदान, इन्द्र-यष्टि या वैजयन्ती, पूर्ण कलश, सूर्य, सिंह, वृषभ, गज, पंखा, ध्वज, तूर्य, प्रकाश-पुंज, ॐ (ओ३म्) शब्द, ब्राह्मण, गौ, अग्नि, स्वर्ण, घृत, जल, राजा, कमल, मयूर, स्वस्तिक, परस्पर गुंफित त्रिकोण आदि…।

भारत में साँची-स्थित बौद्ध-स्तूप में आठ पवित्र हिन्दू अंगीभूत लक्षणों का समुच्चय मुख्य रूप में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार, नेपाल में प्रसिद्ध प्राचीन हिन्दू मंदिरों के एक नगर—भाटगाँव—के कम-से-कम एक मंदिर में तो आठों पवित्र हिन्दू अंगीभूत लक्षणों को स्पष्ट, विशद रूप में प्रदर्शित किया गया है। दिल्ली के लालकिले में राजवंशी हिन्दू अधिकार-चिह्न के साथ-साथ हाथीपोल और ख़ासमहल के दरवाज़ों पर बने हुए हाथियों की मूर्तियाँ तथा रंगमहल में कमल-चित्र पर बने फ़व्वारे के जल पात्र आठ पवित्र प्राचीन हिन्दू-लक्षणों का समूह बनाते हैं जो स्पष्टतः दिल्ली के लालकिले का हिन्दू-मूलक होना सिद्ध करते हैं।

प्रसंगवश यह भी कह दिया जाय कि उपर्युक्त लक्षणों को भारत में बहुत सारी अनेक इमारतों के हिन्दू-मूल को खोज निकालने में सहायक होना चाहिए, जिनको अपहारक विदेशी इस्लामी परम्परा ने विदेशी मुस्लिम विजेताओं के नाम से निर्मित घोषित कर दिया है।

उदाहरण के लिए बीदर का किला लीजिए। इसमें 'गगन महल' और 'सिंहासन महल' नामक राजमहल हैं। ये दोनों हिन्दू शब्द हैं। उन भवनों में हिन्दू अंगीभूत लक्षण भी हैं। उनमें से कुछ को इस्लामी सफ़ेदी की गहरी परतों के नीचे विलुप्त करने का यत्न किया गया है। बीदर के किले के सुप्रसिद्ध हिन्दू 'सिंहासन महल' के प्रवेश-द्वार पर दो भव्य मृगराजों का एक जोड़ा—द्वार के दोनों पार्श्वों में—सुन्दर रंगीन चीनी-मिट्टी की

पच्चीकारी में चित्रित है।

इसी प्रकार, गुलबर्गा नगर में जेसुदारा बंदानवाज के नाम से पुकारे जाने वाले एक मुस्लिम फ़क़ीर के तथाकथित मक़बरे उपनाम तथाकथित 'दरगाह बंदानवाज' के दरवाजों पर भी अत्यन्त सुस्पष्ट सिंहों के जोड़े, मोर, मछलियाँ और हाथी उत्कीर्ण हैं। उस भवन को अब, गुलबर्गा से प्रकाशित एक अनुसंधान-पत्रिका में प्राचीन हिन्दू शिवमंदिर प्रमाणित कर दिया गया है।

कुछ तांत्रिक हिन्दू माहात्म्य वाला एक कल्पित पक्षी, जो मोर और तोते का संकर-पक्षी जैसा लगता है, दक्षिण में वरंगल से लेकर उत्तर में आगरा के प्राचीन हिन्दू किलों तक में देखा जा सकता है। कई मध्यकालीन भवनों में एक विचित्र आकृति दीवारों पर उत्कीर्ण मिलती है। यह कल्पित पक्षी घड़े-जैसा लगता है जिसकी लम्बी गर्दन तिर्यक् कोण पर उठी हुई है।

तथ्य तो यह है कि यदि कोई व्यक्ति भारत में उन ऐतिहासिक भवनों का सर्वेक्षण करे जिनको मुस्लिम शहजादे से लेकर मुस्लिम भिखमंगे तक के मक़बरों और मस्जिदों के रूप में वर्णित किया जाता है तो उसको उन भवनों में लाल और सफ़ेद बिन्दुएँ, रेखाएँ बिन्दु-युक्त अलंकृत नमूने, कमल, सूर्यमुखी पुष्प, समानान्तर चतुर्भुज, दोनों ओर दाएँ-बाएँ मुड़े हुए स्वस्तिक तथा परस्पर- गुम्फित त्रिकोण-जैसे अनेक हिन्दू तांत्रिक अंगीभूत लक्षण दिखाई दे जाएँगे। किसी भी भवन पर ऐसे अंगीभूत लक्षणों का मिलना तुरन्त ही उस भवन को मूलरूप में हिन्दू-निर्माण सिद्ध करनेवाले प्रमाणों की सूची में सम्मिलित कर लिया जाना चाहिए। क्योंकि ऐसे लक्षण इस्लामी परम्परा में अवांछनीय, तिरस्कृत, अरुचिकर हैं। दिल्ली के लाल-किले में इन अंगीभूत हिन्दू लक्षणों में से अनेक लक्षण विद्यमान हैं, और इसीलिए ये हिन्दू-मूलक हैं।

अध्याय ११

मिथ्या निर्माण-लेखा-वर्णन

मध्यकालीन लेखकों द्वारा शाहजहाँ के शासन के सम्बन्ध में लिखे गए वर्णन सैकड़ों पृष्ठों में हैं। भारत में शाहजहाँ अथवा अन्य किसी मुस्लिम शासक ने यदि भवनों का निर्माण कराया होता, तो उनकी संरचनाओं के विशद लेखाओं को मध्यकालीन तिथिवृत्तों के साथ ही लगा दिया गया होता। इन लेखाओं में बताया गया होता कि एक नये भवन की आवश्यकता क्यों हुई थी, भूमि किससे ली गई थी, यह भूमि कहाँ पर स्थित थी, इसकी लम्बाई-चौड़ाई आदि कितनी थी, कितनी क़ीमत दी गयी थी, वास्तु-कलाकार कौन थे, सामग्री कहाँ से मंगायी गई थी और भवन कब पूरा हुआ था।

सम्बन्धित मुस्लिम बादशाह के दरबारी अभिलेखों में इन लेखा-विवरणों के समर्थनकारी प्रलेख भी होने चाहिए थे। ऐसे प्रलेखों-अभिलेखों से हमारा तात्पर्य निर्माण-सम्बन्धी आदेशों, दैनंदिन व्यय-लेखा-पत्रकों, श्रमिक-नामावली और मंगायी गई सामग्री के लिए विपत्र तथा रसीदों से है।

हम भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को सूचित करना चाहते हैं कि न तो इस्लामी तिथिवृत्तों में निर्माण-सम्बन्धी विशद लेखा वर्णन हैं और न ही मुस्लिम शासक के दरबारों के आवश्यक आधिकारिक प्रलेख ही हैं जो उनके द्वारा निर्मित कहे जानेवाले असंख्य भवनों की पुष्टि करते हों। इस

सम्बन्ध में जो कुछ हमारे युग तक प्राप्य हुआ है, वह कुछ मोटे-मोटे दावे हैं जो कुछ मुस्लिम उग्रवादियों और चाटुकारों ने १५ से २० पंक्तियों में प्रस्तुत किये हैं। वे अपने मिथ्या दावों को साधारणतः अस्पष्ट शब्दावली से भर लेते हैं जिनमें कहा जाता है कि अमुक विशेष बादशाह ने किसी नगर या भवन की नींव रखी, या जो पहले एक गाँव मात्र था, वह विकसित होकर एक नगर में बदल गया, या पहले समय में (अर्थात् जब देश पर हिन्दुओं का शासन था) नगर अथवा राजमहल की मात्र पंकिल दीवारें थीं और आक्रमणकारी बर्बरों, विदेशी मुस्लिम बादशाहों आदि ने उनको पत्थर की बनवाया (चाहे उसका जो भी अर्थ हो)। भारत अथवा किसी अन्य देश के सम्बन्ध में मुस्लिम तिथिवृत्तों को इतिहास की आकर-पुस्तकें समझनेवाले सभी व्यक्तियों को कपटपूर्ण शब्दावली के ऐसे जंजालों से सावधान रहना चाहिए। उन तिथिवृत्तों में असंदिग्ध आस्था ने पीढ़ियों तक संपूर्ण विश्व को भ्रमित करके पर्याप्त हानि पहुँचाई है उस विषय के बारे में जिसे वे सविस्तार वर्णन करके स्पष्ट कर देना अपना मंतव्य बताते हैं। पहले ही पर्याप्त विलम्ब हो चुका है, किन्तु इस विलम्ब की घड़ी में भी इतिहास के विश्व को मेरी चेतावनी ध्यान में रखनी चाहिए और मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों की विषय-सामग्री के सम्बन्ध में पुनः अति सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण करना चाहिए और उनका पुनः मनन करना चाहिए।

जल्दबाज़ी में प्रायः पूछा जाता है कि यदि हम मुस्लिम शासकों से आशा करते हैं कि वे अपनी ओर से किये जानेवाले निर्माणों के समर्थन में व्यय-लेखाओं और दरबार-अभिलेखों को प्रस्तुत करें, तो इस बात को प्रमाणित करने वाले प्रलेख और दरबारी-अभिलेख कहाँ हैं कि मन्दिर, भवन, राजप्रासाद, पुल, नहर और प्राचीन भारत के नगर हिन्दू शासकों द्वारा बनवाए गए थे ? इस प्रश्न के उत्तर अनेक और सीधे-सादे हैं। सर्वप्रथम, चूंकि भारत स्मरणातीत प्राचीन युग का हिन्दू अंश है, अतः हम जब यह सिद्ध कर देते हैं कि यहाँ के भवन विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा नहीं बनाये गए थे, तब सहज रूप में उसका अर्थ यह निकलता है कि इन भवनों का निर्माण यहाँ के हिन्दू शासकों अथवा अन्य प्रतिभावान् गण्य-

मान्य व्यक्तियों द्वारा किया गया था। दूसरी बात, हमारी निश्चित धारणा है कि तथाकथित मक़बरों और मस्जिदों में, जिनको विदेशी मुस्लिम आक्रामकों द्वारा निर्मित माना जाता है, हिन्दू-निर्माणकारों के सुस्पष्ट वास्तुकलात्मक चिह्न और अंगीभूत लक्षण विद्यमान हैं जिनको किसी भी प्रकार की कल्पना कर ली जाय, मध्यकालीन युग के धर्नांध और हठवादी मुस्लिमों द्वारा बनवाया नहीं जा सकता था क्योंकि वे अपने समस्त जीवन ऐसे काफ़िराना, मूर्तिपूजा-सम्बन्धी निर्माणों के कट्टर दुश्मन रहे हैं। तीसरी बात यह है कि हमारी निश्चित धारणा है कि हिन्दू दरबारों के पास ऐसे विशद अभिलेख अवश्य थे, और हिन्दू-भवनों में उन भवनों को हिन्दूमूलक सिद्ध करने वाले शिलालेख भी अवश्य थे, किन्तु मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अपने सैनिकों के लिए भोजन पकाने और जल गर्म करने के लिए हिन्दू धर्म-ग्रंथों, लेख-पुस्तकों और दरबारी-अभिलेखों को जलाकर अपनी कट्टर विध्वंसात्मक रंगरेलियों के १२०० वर्षों में उस साक्ष्य को पूर्णतः नष्ट कर दिया। यदि कोई जागीरी मकान किन्हीं डाकुओं के दल के आधिपत्य में १२०० वर्षों की दीर्घावधि तक रहे, तो उस सम्पत्ति का पुनः स्वामित्व पानेवाले अपने पूर्वजों के वंशज को कौन-से आनुवंशिक अभिलेख प्राप्त हो जाएँगे ! हिन्दुस्थान के हिन्दू स्वयं को उसी दुःखद परिस्थिति में पाते हैं। उनकी भी वही दशा हुई है। उनका देश भी हज़ार वर्ष से अधिक तक विदेशी आधिपत्य में रहा है, गुलामी की लम्बी अवधि व्यतीत की है। जबकि, उस अनवरत दासता की घड़ी में वे प्रति-दिन सामूहिक विध्वंस, अपवित्रीकरण और लूट के शिकार रहे हैं, उनका देश क्षण-प्रतिक्षण नष्ट-भ्रष्ट किया गया, तब क्या उनसे यह पूछा जा सकता है और उनसे आशा की जा सकती है कि वे अपने स्वामित्व-अधिकार-अभिलेख प्रस्तुत करें ? अतः, जबकि मुस्लिमों से यह पूछना बिल्कुल उप-युक्त है कि हिन्दुस्तान में ऐतिहासिक भवनों के सम्बन्ध में वे अपने स्वामित्व अभिलेख प्रस्तुत करें, हिन्दुओं को भी अपने प्रलेख-अभिलेख प्रस्तुत करने को कहना बिल्कुल अनुपयुक्त, अनुचित अशोभनीय बात है। हिन्दुओं से इस प्रकार की मांग करना जले पर नमक छिड़कना होगा और यह तो न्यायिक और ऐतिहासिक शास्त्र-सम्मत प्रणालियों के प्रति अपना अज्ञान प्रकट

करना होगा। हत्या तो हत्यारे के कर्म-कुकर्मों से सिद्ध हो जाती है। हत्या के शिकार व्यक्ति से, हत्या कर दिये जाने का शपथ-पत्र मांगना तो एक बेहूदगी, बेवकूफ़ी होगी।

उपर्युक्त विचार-मंथन के बाद, आइए, हम दिल्ली में शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने के कल्पित वर्णनों से सम्बंधित उन लेखाओं की जाँच-पड़ताल करें जो हमें अभी तक उपलब्ध हुए हैं।

श्री गोर्डन सैण्डर्सन, अधीक्षक, मुहम्मदी और ब्रिटिश स्मारक, उत्तरी मंडल, भारत के पुरातत्त्व-सर्वेक्षण, ने शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने के सम्बंध में पर्यवेक्षण किया है: 'स्वर्गीय मौलवी शुऐब ने भारतीय इतिहासकारों से सारी जानकारी एकत्र की है। वह मेरे कर्मचारी-वर्ग में से एक थे।"[1]

सैण्डर्सन ने भी वही ग़लती की है जो सर एच० एम० इलियट ने की थी, अर्थात् मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखकों को 'भारतीय इतिहासकार' की संज्ञा दे दी। मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखकों ने तो स्वयं ही अपने को भारतीय कहलवाने से, अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक इन्कार कर दिया होता। उन्होंने स्वयं को भारतीय कहलाने से न केवल विकर्षण किया, अपितु स्वयं को अरब, तुर्क, पठान, अबीसीनियन, कज़ाक या उज़बेक कहने में उनको गौरव अनुभव होता था।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि जब शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा, तब लालकिले और अन्य भवनों सहित पुरानी दिल्ली का नगर विद्यमान था। इसी प्रकार हम यह भी स्पष्ट कर चुके हैं कि शाहजहाँ ने कभी भी दिल्ली को अपनी स्थायी राजधानी नहीं बनाया। उसने दिल्ली, आगरा, बुरहानपुर या लाहौर तथा अन्य किसी भी उस नगरी को अपना दरबार-स्थान बना लिया, उस विशेष यात्रा के समय, वह जहाँ भी होता था। उसकी स्थायी राजधानी सदैव आगरा में ही रही। इस झूठी कथा को न्यायोचित ठहराने के लिए कि शाहजहाँ ने स्वयं पुरानी दिल्ली नगर सहित लाल-

१. दिल्ली का किला—"भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका" की भूमिका।

किला और जामा-मस्जिद बनवाए थे, इतिहासकारों को यह विश्वास दिलाकर धोखा दिया गया है कि शाहजहाँ ने अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदल ली थी।

आगरा को राजधानी के रूप में त्याग देने के लिए दिये गए अनेक परस्पर विरोधी कारणों से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा एक धोखामात्र है। एक सरकारी मार्गदर्शक-पुस्तिका में लिखा है : आगरा में ग्यारह वर्ष राज्य करने के बाद शाहजहाँ ने अपनी राजधानी दिल्ली बदल लेने की इच्छा व्यक्त की थी, क्योंकि बर्नियर के अनुसार, "ग्रीष्म-ऋतु में आगरा में होनेवाली अत्यधिक गर्मी ने आगरा को एक बादशाह के निवास योग्य स्थान नहीं रहने दिया था।"[1]

आइए, हम उपर्युक्त अवतरण की तनिक सूक्ष्म जाँच-पड़ताल करें। यदि, जैसा कहा जाता है, शाहजहाँ ने ग्यारह वर्ष शासन करने के बाद अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित करने की इच्छा व्यक्त की थी, तो स्पष्ट है कि उसे प्रसन्नतापूर्वक आगरा छोड़कर दिल्ली आना पड़ा—बस, और कुछ नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि दिल्ली में पर्याप्त शाही निवास-योग्य स्थान था। एक नगरी की स्थापना करना और उसे सम्पूर्ण शाही साज-सामग्री से सुसज्जित करना कोई हँसी-खेल नहीं है। शाहजहाँ के युग में तो इस कार्य में एक बादशाह का सम्पूर्ण जीवन ही व्यतीत हो गया होता। चूँकि शाहजहाँ सन् १६२८ ई० में ही राजगद्दी पर बैठा था, इसलिए बर्नियर की टिप्पणी को सही मान लेने पर भी, शाहजहाँ द्वारा ग्यारह वर्ष के बाद राजधानी दिल्ली स्थानान्तरित कर देने का निश्चय करने का स्पष्ट मतलब यह हुआ कि सन् १६३९ ई० से आगे ही दिल्ली उसकी राजधानी बनी थी। तब स्पष्ट है कि शाहजहाँ ने इसका निर्माण नहीं किया था।

हमारा दूसरा, सीधा प्रश्न यह है कि बर्नियर तो संयोगत: विदेशी था जो उस समय भारत-भ्रमण हेतु आया हुआ था। मुग़ल राजधानी

१. दिल्ली का किला—"भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका", पृष्ठ १

स्थानान्तरित करने जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुआमले में हमें इकल्ले-दुकल्ले विदेशी की आकस्मिक टिप्पणियों पर क्यों निर्भर रहना पड़ता है? उस समय मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखक क्या कर रहे थे? उनके उद्धरण क्यों नहीं प्रस्तुत किये जाते? स्पष्ट है कि शाहजहाँ ने आगरा से दिल्ली कभी अपनी राजधानी बदली ही नहीं थी। यह कहना बेहूदा बात है कि शाहजहाँ ने दिल्ली को आगरा से अधिक ठंडा समझा था। इन सब बातों पर विचारोपरान्त यह स्पष्ट है कि बर्नियर की टिप्पणी किसी लापरवाह पर्यवेक्षक द्वारा संगृहीत आधी समझी गई किंवदन्ती पर आधारित है।

उसी मार्गदर्शिका में आगे पृष्ठ १ पर लिखा है: "स्थानान्तरण के अन्य कारणों में ये कारण कहे जाते हैं—'परवर्ती (आगरा) नगर की सारी गहरी पतली घाटियों का टूट जाना, किले में स्थान की कमी, गलियों का संकरापन, बादशाहों और उसके उमरावों के परिचरों, सैनिकों व हाथियों की भारी भीड़ से वहाँ के नगर-निवासियों को असुविधा';[1] मानुषी ने दिल्ली का अच्छा वातावरण और एक नई राजधानी बनाकर अपनी स्मृति को चिरस्थायी रखने की शाहजहाँ की इच्छा को ऐसा कारण बताया है।"

उपर्युक्त अवतरण में शाहजहाँ द्वारा अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली लाने के कारण बताए हैं वे बर्नियर द्वारा वर्णित कारण से बिल्कुल भिन्न हैं। बर्नियर ने जलवायु को ही मुख्य कारण बताया है। किन्तु उपर्युक्त अवतरण में अन्य कारण बताये गए हैं जिनमें आगरे की टूटी-फूटी गहरी-पतली घाटियाँ, संकरी गलियाँ, नगर-निवासियों-सैनिकों-हाथियों और परिचरों की भीड़ सम्मिलित है। ये सभी कारण स्पष्टतः बेहूदा हैं क्योंकि जिस पुरानी दिल्ली को शाहजहाँ द्वारा स्थापित माना जाता है, वहाँ की गलियाँ भी उतनी ही संकरी, तंग हैं जितनी आगरा की। दिल्ली

१. शाहजहाँ द्वारा आगरा से दिल्ली अपनी राजधानी बदल लेने के दावे के बारे में प्राधिकरण के रूप में यहाँ पुस्तक के पद-टीप में अमले-सलीह पृ० ५७५-७६, स्टोरिया डो मोगोर, भाग १, पृ० १८३, माथीर-उल-उमारा, फ़ारसी-पाठ, भाग तृतीय, पृ० ४६४ जैसे कुछ मध्यकालीन तिथिवृत्तों का उल्लेख किया गया है।

में भी, मुगलकाल में,खुली नालियाँ थीं। जहाँ तक बादशाह के अपने परिचरों का सम्बन्ध है, राजधानी के परिवर्तन से उनको कोई अन्तर नहीं पड़ता था क्योंकि उनको तो बादशाह के पीछे-पीछे ही जाना था, चाहे वह टिम्बक्टू ही चला जाता। फिर हमें मानुषी मिलता है, जो शाहजहाँ के शासनकाल में दिल्ली आनेवाला एक अन्य यूरोपीय प्रवासी था, और वह बिल्कुल भिन्न कारण ही प्रस्तुत करता है। तथ्यतः तो मानुषी दो कारण बताता है अर्थात् दिल्ली की जलवायु अच्छा होना और एक नई राजधानी स्थापित करके अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की शाहजहाँ की इच्छा।

शाहजहाँ द्वारा अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली कर लेने के कल्पित स्थानान्तरण का स्पष्टीकरण देने का यत्न करने में अजनबियों के विचित्र घालमेल द्वारा प्रस्तुत कारणों की विभ्रमकारी विभिन्नता स्वयं ही इस बात का प्रमाण है कि वे सभी व्यक्ति अपने-अपने अनुमान प्रस्तुत कर रहे हैं। ऊपर उल्लेख किये गये पद-टीप द्वारा स्पष्ट है कि सरकारी मार्ग-दर्शिका-पुस्तक कुछ मध्यकालीन तिथिवृत्तों का उल्लेख करती है जो गौण ग्रन्थ हैं। शाहजहाँ के युग के, उसके अपने दरबार के तिथिवृत्त—'बादशाह-नामा'—का कोई उद्धरण प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह इस बात का द्योतक है कि शाहजहाँ के अपने दरबारी-तिथिवृत्त में राजधानी के कल्पित परिवर्तन के औचित्य के बारे में कोई पुष्टि नहीं है। उस मार्ग-दर्शिका-पुस्तक द्वारा उद्धृत उन तिथिवृत्तों के बारे में भी यह ध्यान रखने की बात है कि उन तथाकथित तिथिवृत्तों में,इस विषय को एक पृष्ठ में अथवा उससे भी कम भाग में निबटा दिया गया है। यदि शाहजहाँ ने वास्तव में अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदली होती, तो उस स्थानान्तरण का लेखा कई पृष्ठों में ही पूरा हुआ होता। साथ ही, दिल्ली के एक पूरे नये नगर के निर्माण, स्थापना का वर्णन तो सैकड़ों पृष्ठों में ही समा पाता।

हम यह जानना चाहते हैं कि एक दिल्ली का नगर स्थापित करके ही शाहजहाँ क्यों 'अपनी स्मृति सजग, स्थायी रखना' चाहता था ? वह इसके लिए चिन्तित क्यों था ? बादशाह के रूप में उसका शासन अनेकानेक घट-

नाग्रों से भरा-पड़ा विचार किया जाता है। उसे अतिव्ययी मक़बरे के रूप में ताजमहल बनाने का निर्माण-श्रेय भी दिया जाता है (यद्यपि यह एक झूठी बात सिद्ध हो चुकी है)। साथ ही, जैसा प्रोफ़ेसर बी० पी० सक्सेना ने दावा किया है (जिसका हम उल्लेख पहले ही कर चुके हैं) उसे लगभग उन सभी स्थानों पर अन्य भवन और झीलें बनवाने का यश भी दिया जाता है, जहाँ कहीं वह गया था। इतना सब-कुछ होने पर भी अपनी स्मृति सजग बनाए रखने के लिए यदि शाहजहाँ चिन्तित है,तो निष्कर्ष यह है कि उसके नाम कहे जाने वाले सभी भवन पूर्वकालिक हिन्दू-निर्माण हैं। उसी पद्धति पर, पुरानी दिल्ली का नगर, लालकिला और तथाकथित जामा-मस्जिद भी शाहजहाँ के काल से पूर्व भी विद्यमान थे।

एक अन्य उचित प्रश्न यह है कि क्या शाहजहाँ कोई छोटा-मोटा सैलानी था जो प्रत्येक स्थान पर जनता से वाहवाही को आकुल था ? जब उसे आगरा में ताजमहल बनवाने का श्रेय दिया जाता है, तब हमें धोखा देकर बताया जाता है कि उसने यह कार्य इतिहास में यशस्वी,अमर हो जाने के लिए किया था। पुरानी दिल्ली नामक नगर की स्थापना का श्रेय शाहजहाँ को देते समय भी हमें यही कहा जाता है कि वह अभी भी लोक-वाहवाही के लिए तरस रहा था। इस सबका मिलकर यह कहने का भाव है कि शाहजहाँ को प्रचार की, यशस्वी होनी की इतनी असाधारण, राक्षसी लिप्सा थी कि वह सम्पूर्ण राज्यशासन को निर्धन-अकिंचन और अपने कोषागार को तलछट तक रिक्त कर देने को तैयार था। स्पष्ट है कि अन्य सभी दावों की भांति यह दावा भी, कि शाहजहाँ ने दिल्ली की स्थापना की थी, और इस नगर के लालकिले व तथाकथित जामा-मस्जिद को बनवाया था, झूठा—जाली ही सिद्ध होता है।

हम अब यह देखना चाहते हैं कि इस सम्बन्ध में अन्य लेखकों के क्या क्या विचार हैं। उसी मार्गदर्शिका-पुस्तक में लिखा है : "समकालीन इतिहासकारों के अनुसार किले की नींव १२वीं जिलहिज १०४८ हिजरी (सन् १६३८ ई०) को रखी गई थी, और इस तारीख की पुष्टि ख्वाबगाह पर लिखे शिलालेख से होती है। शाहनवाज खान ६वीं मुहर्रम १०४६ बताता है और अथारुस सामदीद का लेखक सैयद अहमद खान कहता है

कि कुछ पुराने कागज़ात में किले की एक जन्मपत्री उसके हाथ लगी थी और इसमें नींव-स्थापना की तारीख हिजरी सन् १०४६ की नवीं मुहर्रम (तदनुसार १२ मई, १६३९ ई०) दी हुई थी। उस दिन शुक्रवार रात्रि थी। माथीर-उल-उमारा के लेखक शाहनवाज़ खान के अनुसार यह किला ९ वर्ष, ३ मास और कुछ दिनों में निर्माण हुआ था, तथा बादशाह के शासन के २०वें वर्ष में तब पूरा हुआ था जब वह काबुल में था। तत्कालीन निर्माण अधीक्षक मकरततखान ने बादशाह को आने और इसे देखने के लिए कहा, तथा सन् १०५८ हिजरी की २४वीं रबी (सन् १६४८ ई०) के दिन शाहजहाँ नदी की ओर बने पिछले दरवाज़े से किले में प्रविष्ट हुआ तथा उसने दीवाने-आम में अपना पहला दरबार किया। किले के निर्माण से सम्बन्धित मकरमतखान के अतिरिक्त, व्यक्तियों के नाम हैं—ग़ैरतखान, दिल्ली का राज्यपाल (बाद में थत्ता का राज्यपाल नियुक्त हो गया जहाँ वह सन् १६४० ई०में मर गया), इज़्ज़तखान जो बाद में सिन्ध का राज्यपाल हुआ अलीवर्दीखान भी बाद में राज्यपाल बनाया गया था और दो महान् निर्माता हामिद और अहमद। कहा जाता है कि बादशाह भी समय-समय पर रूप-रेखांकन में कुछ-कुछ विशेष सुधार करता रहता था। सैयद अहमदखान ने, दीवाने-आम की पच्चीकारी में ओरफ़ियस का चित्र देखकर निस्संदेह कल्पना कर ली थी कि किसी इतालवी वास्तुकलाविद् को भी नियुक्त किया गया था। किले के निर्माण में एक सौ लाख रुपये खर्च हुए थे, जिनमें से आधी राशि दीवारों पर खर्च की गई थी और शेष आधी राशि अन्दर के भवनों पर।"[1]

उपर्युक्त अवतरण में सर्वप्रथम ध्यान रखने की बात यह है कि शाहजहाँ का अपना दरबारी-तिथिवृत्त—बादशाहनामा—उद्धृत नहीं किया गया है। दूसरी बात यह है कि उद्धृत किये गए अन्य दो प्राधिकारी भी उस वर्ष के बारे में भिन्न-भिन्न मत रखते हैं जबकि यह किला बनाना प्रारम्भ हुआ बताया जाता है। एक व्यक्ति सन् १६३८ ई० बताता है,

१. "दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका," पृष्ठ १ से ३

दूसरा कहता है कि यह वर्ष सन् १६३९ ई० है। तीसरी बात यह है कि उल्लेख किए गए नामों में अधिकांश व्यक्ति प्रशासक हैं, रूपरेखांकनकार और शिल्पज्ञ नहीं। चौथी बात यह कि "पुराने काग़ज़ात में किले की एक जन्म-पत्री मिलना" इस कल्पना को जन्म देता है कि जब शाहजहाँ ने किले को पुनः आधिपत्य में लाने का निश्चय किया, तब उसके लिए किले पर प्रभुत्व करनेवालों को किले की एक जन्म-पत्री मिल गई होगी जो उसके प्राचीन निर्माताओं द्वारा छोड़ दी गई होगी, क्योंकि मात्र हिन्दू लोगों को जन्म-पत्रियों के बनवाने के प्रति रुचि, रुझान है। यदि मुस्लिम लेखक को शाहजहाँ के युग के किले की कोई जन्म-पत्री मिली होती, तो उसने अत्यन्त गर्व-पूर्वक उसको अपनी पुस्तक में पुनः प्रकाशित किया होता, न कि उसका उल्लेखमात्र किया होता। चौथी बात यह है कि संदर्भित अनेक मुस्लिम लेखकों ने प्रवंचनापूर्ण मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखन की परम्परा में ही नींव रखने का उल्लेख कर दिया है। साथ ही, यदि बादशाह उस समय क़ाबुल में था, जब किला पूरा हुआ था, तब मकरमतखान ने बादशाह को आने और किला देखने के लिए कैसे कहा? यह तथ्य भी कि शाहजहाँ ने किले में नदी की ओर वाले पिछले द्वार से प्रवेश किया था, इस बात का स्पष्ट इंगित है कि शाहजहाँ ने जिस किले में प्रवेश किया वह पुराना हिन्दू किला था। यदि सचमुच शाहजहाँ ने ही किला बनवाया होता, तो उसे तो बिल्कुल अभिनव, नये किले में बहुत अधिक सज-धज के साथ, राजकीय समारोहपूर्वक प्रवेश करना चाहिए था, ऐसा ही उसने किया भी होता। किसी व्यक्ति को इस कथन से भ्रमित नहीं होना चाहिए कि किले में प्रवेश करने के बाद शाहजहाँ ने अपना पहला दरबार किया था। मुस्लिम लेखक के कहने का जो कुछ भाव है वह यह है कि जब शाहजहाँ क़ाबुल से वापिस आया, तब उसने बहुत लम्बी अवधि के बाद लालकिले में अपना दरबार किया था। मुस्लिम तिथिवृत्तों से निबटते समय आनेवाली कठिनाइयों का एक ही उदाहरण ऊपर उल्लेख किया गया है। अनुवादक के लिए यह भीषण समस्या है। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि किले का अतिशय आत्म-श्लाघायुक्त निर्माण इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है कि जब शाहजहाँ अनेक वर्षों बाद दिल्ली आया तब

उसके लिए इसे ले लिया गया और उसके निवास के उपयुक्त बना दिया गया।

पाठकों ने इस ओर भी ध्यान दिया होगा कि सभी लेखक हर समय केवल किले-भर की बात करते हैं। उनमें से कोई भी शाहजहाँ द्वारा पुरानी दिल्ली की स्थापना करने की बात नहीं करता है। यदि केवल किले के निर्माण में ही नौ से दस वर्ष तक लगे कहे जाते हैं, तब तथाकथित जामा मस्जिद के बनने में कितने वर्ष में लगने चाहिएँ? क्या शाहजहाँ का शासन-काल इतना लम्बा था और क्या उसका कोषागार इतना अनन्त, अथाह, असीम था कि वह हमारे सारे भारत में, सब समय, निरन्तर निर्माण-कार्य चालू रख सकता था?

मुगल-युग के भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को मुस्लिम-तिथिवृत्तों के ऐसे ही विश्लेषणात्मक एवं समालोचनात्मक अध्ययन के लिए तत्पर रहना चाहिए। कपटपूर्ण मुस्लिम तिथिवृत्तों में से सत्य खोज निकालने के हेतु उनका गूढ़ार्थ समझने की कला में निपुणता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए।

ऊपर संदर्भित वर्णन में किले पर खर्ची गई धन-राशि एक सौ लाख रुपये कही गई है। इसको भी बाहरी दीवार और अन्दर बने भवनों पर समान भागों में व्यय किया गया बताते हैं। किले के निर्माण पर किये गए व्यय को साक्ष्यांकित करनेवाले दरबारी प्रलेखों के अभाव में यह फिर एक मिथ्या कथन है। इसमें बताई गई सौ लाख रुपये की धनराशि अन्य लोगों द्वारा उल्लेख की गई व्यय-राशियों से भिन्न है।

यह कथन कि शाहजहाँ स्वयं ही, समय-समय पर, रूपरेखांकन में सुधार किया करता था, किले के निर्माण के बारे में कपटपूर्ण दावों को पूर्व-उत्थान के प्रतिकूल पतन उचित रूप में प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम, यदि शाहजहाँ ५,००० महिलाओं के हरम की व्यवस्था करने में, विद्रोहियों को दबाने में, आक्रामक और प्रतिरक्षात्मक युद्ध लड़ने में, तथा बचे-खुचे समय में उदारतापूर्वक शराब और पोस्त के प्याले चढ़ाने में मस्त रहने-वाला अति व्यस्त बादशाह था, तो क्या उसके पास समय अथवा रुचि तथा शक्ति-शेष अथवा सूक्ष्म-दृष्टि थी जो वह महान् निर्माताओं द्वारा

तैयार किये गए अति जटिल रूपरेखांकन में छोटे-मोटे सुधार करसके—उनके लिए उपस्थित हो सके ? क्या इतिहास के विद्यार्थियों को बताया गया है कि शाहजहाँ ने वास्तुकला का ज्ञान कहाँ अर्जित किया था ? इसके विपरीत, शाहजहाँ द्वारा किले के रूपरेखांकन में सुधार किये जाने के बारे में यह सूत्र ही, तथ्यतः, हमारी उस उपलब्धि को पुष्ट करता है कि शाहजहाँ केवल एक प्राचीन हिन्दू किले में ही रहा था। एक धर्मान्ध मुस्लिम निरंकुश शासक होने के कारण, जो अपने राज्य-शासन के अन्तर्गत एक भी मन्दिर को सिर ऊँचा किये हुए खड़ा नहीं सहन कर सकता था और जिसको बन्दी बनाये गए ईसाई व्यक्तियों के एक विशाल वर्ग को, उसके मुहम्मदी-धर्म में परिवर्तित होने से इन्कार कर देने पर, भीषण यातनाओं से परिपूर्ण मृत्यु-दण्ड देने पर भी मनस्ताप नहीं किया था, शाहजहाँ के लिए तो यह सहज, स्वाभाविक ही था कि वह लालकिले के उन हिन्दू-अंगीभूत लक्षणों को हटवादे जिनको हटादिये जाने पर भी लालकिले को कोई खतरा न हो अथवा निवास-योग्य बना ही रहे, भद्दा न लगे। यही वह गूढ़ार्थ है जब मुस्लिम लेखक कहते हैं कि शाहजहाँ किले में सुधारों के सुझाव दिया करता था।

ओरफ़ियस के तथाकथित चित्र की, जो अब इंग्लैंड ले-जाया गया कहा जाता है, अति सूक्ष्म-अध्ययन करने की आवश्यकता है। अब अपनी बुद्धि को इस प्रवंचना से ग्रस्त नहीं होने देना चाहिए कि यह किसी इतावली व्यक्ति का ही कार्य होगा। "फ़तहपुर-सीकरी में भी एक बाँसुरी वाले का चित्र था जो अब बहुत फीका पड़ चुका है। फ़तहपुर सीकरी एक प्राचीन हिन्दू-नगर सिद्ध किया जा चुका है(फ़तहपुर सीकरी प्राचीन हिन्दू-नगर—शीर्षक पुस्तक पढ़ें)। अतः यह प्रतीत होता है कि दिल्ली के लालकिले में विद्यमान उसी प्रकार का एक चित्र इस का एक अन्य प्रमाण है कि किला हिन्दू-मूलक था।

किले पर व्यय किया गया सौ लाख रुपया नितान्त झूठ प्रतीत होता है जो इस तथ्य से परखा जा सकता है कि किसी भी तत्कालीन आधिकारिक प्राधिकरण का उल्लेख नहीं किया जाता है, और न ही किसी दरबारी-अभिलेख का उद्धरण दिया जाता है।

कहा जाता है कि "औरंगज़ेब के शासनकाल में,बख्तावरखान नामक एक अन्य इतिहास-लेखक ने विभिन्न भवनों की लागत इस प्रकार बताई है।

किला और अन्दर के भवन	६०	लाख रुपये
शाही भवन	२८	"
शाह महल (दीवाने-खास) चाँदी के कटघरे एवं सज्जा-सामग्रीसहित)	१४	"
इम्तियाज़ महल (रंगमहल)—शयन-कक्ष एवं परिवेश	५.५	"
दौलतखाना ए-खास-ओ-आम अर्थात् दीवाने-आम,	२	"
हमाम सहित हयातबख्श बाग	६	"
(सबसे बड़ी पुत्री जहांआरा) बेगम साहिबा और अन्य शाही महिलाओं का महल	७	"
शाही दुकानों आदि के लिए बाज़ार तथा वर्गाकार	४	"
किले की दीवारें और खाई	२१	"
जोड़	१४७.५	"

कारीगरों की मजदूरी सौ लाख रुपये थी।"[1]

पाठक ऊपर दिये गए अवतरण में अनेक विसंगतियाँ देख सकते हैं। पहली विसंगति यह है कि लेखक बख्तावरखान ने शाहजहाँ की एक पीढ़ी बाद लिखा है। साथ ही, उसने खर्चे के लिए प्रस्तुत किये गए आँकड़ों के बारे में कोई प्राधिकरण उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकार के लेखा-वर्णन को झूठा, जाली घोषित कर तुरन्त अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए। उसने जो व्यय की गई कुल धनराशि बताई है, वह अन्य लेखकों द्वारा सूचित की गई धनराशि से भिन्न है। जबकि पूर्वकालिक आँकड़ों में कुल धनराशि सौ लाख रुपये कही गई है। बख्तावरखान के अनुसार कारीगरों की मजदूरी ही सौ लाख रुपये थी। साथ ही, अन्य खर्चा भी अतिरिक्त लगभग १५० लाख रुपये का था। बख्तावरखान द्वारा दिये गए आँकड़े भी असंदिग्ध नहीं हैं। सबसे पहले उसने ६० लाख रुपये की राशि किले और

१. "दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका", पृ० ४

उसके अन्दर के भवनों पर व्यय की गई बताई है, और फिर भी, आगे जाकर उसने अन्य-भवनों की व्यय-राशि दुबारा कह दी है। सबसे अन्त में, उसने पृथक् रूप में मजदूरी का उल्लेख कर दिया है। तभी तो महान् इतिहासकार सर एच० एम० इल्लियट का यह संदेह ठीक था कि मुस्लिम तिथिवृत्तकार अपने उग्रवाद में काल्पनिक आँकड़े प्रस्तुत किया करते थे।

मुस्लिम गप-शप पर आधारित, एक ब्रिटिश विद्वान् द्वारा लिखित एक अन्य पुस्तक में लिखा है : "जहाँगीर की मृत्यु पर उसका बेटा शाहजहाँ हिन्दुस्थान की गद्दी पर बैठा…ग्यारह वर्ष तक आगरा में राज्य करने के बाद शाहजहाँ ने अपनी राजधानी दिल्ली में स्थानान्तरित करने का निश्चय किया। वह अनेक बार दीन-पनाह शहर की यात्रा पर गया, और उसने हिन्दू ज्योतिषियों और मुहम्मदी हाकिमों की सहायता से वर्तमान किले की भूमि को ही अपने दुर्ग का स्थल निश्चित कर दिया, बाद में जिसके आस-पास उसने शाहजहानाबाद बनाया-बसाया, जो उसके साम्राज्य की राजधानी थी। १२वें जिलहिज १०४८ हिजरी (सन् १६३८ ई०) के दिन कारीगर जमा हुए और इज्जतखान के अधीक्षण में, जो बाद में (१०५७ हिजरी—१६४७ ई०) सिन्ध का राज्यपाल हो गया, किले की नींव का पत्थर रखा गया। इसमें कारीगरों के मुखिया उस्ताद अहमद और हीरा ने सहायता की। दिल्ली से इज्जतखान की बदली हो जाने पर किले का निर्माण-कार्य अल्लाहवर्दीखान को सौंप दिया गया जिसने २ वर्ष, १ मास और ११ दिन में चारों तरफ की दीवारें १२ गज ऊँची उठा दीं। अल्लाह-वर्दीख़ान को, फिर, एक राज्यपाल-पद दिया गया और किले का काम मक्रमतख़ान को सौंपा गया जिसने नौ वर्ष के परिश्रम के बाद इस कार्य को शाहजहाँ के शासन के २० वें वर्ष में समाप्त कर दिया—पूर्ण कर दिया १०५८हिजरी (सन् १६४८ ई०) की रबी—२ की २४वीं तारीख को शाहजहाँ किले में, नदी की ओरवाले द्वार से प्रविष्ट हुआ और उसने अपना पहला दरबार दीवाने-आम में किया। विश्वास किया जाता है कि किले पर १०० लाख रुपये ख़र्च हुए थे, जिसमें से आधी-राशि इसकी दीवारों पर और शेष आधी राशि इसके अन्दरवाले भवनों पर खर्च हुई कही

जाती है।"[1]

लेखक ने पूर्वोक्त जानकारी जहाँ से भी संग्रह की हो, यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण वर्णन मनघड़न्त है क्योंकि इसमें न किसी प्राधिकरण का उल्लेख किया गया है, और न ही किसी दरबारी-प्रलेख को प्रस्तुत किया गया है। यही तथ्य कि उतनी लम्बी-चौड़ी बातें करने के बाद भी सम्पूर्ण परियोजना की लागत मात्र/१०० लाख रुपया कह दी गई है, स्पष्ट दर्शाता है कि कोई खर्चा नहीं किया गया था और न ही कोई किला बनाया गया था। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि यद्यपि वर्णन इस उल्लेख से प्रारम्भ होता है कि शाहजहाँ ने किले के लिए एक स्थान चुना था, तथापि दबे स्वर से इतना और जोड़ दिया गया है कि इसके आसपास ही एक शहर भी बनाया-बसाया गया था। किन्तु विचित्रता यह है कि केवल किले की लागत ही १०० लाख रुपये उल्लेख की गई है जबकि शहर पर व्यय किये गए धन की चर्चा ही नहीं की गई। नगर पर तो और भी अधिक लागत आई होगी। अतः, नगर पर किया गया खर्चा अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक अन्य सन्तापकारी विवरण यह है कि यदि नये नगर का नाम शाहजहानाबाद रखा गया था, तो वह नाम आज भी चलता क्यों नहीं है? इसका नाम बदलकर पुरानी दिल्ली कैसे हो गया? अन्य विस्मयकारी बात यह है कि ऐसा माना जाता है कि शाहजहाँ अनेक बार दीन-पनाह शहर गया था और वहाँ काफी समय तक ठहरा था, उस स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है जहाँ शाहजहाँ, अपने पूरे फौज-फाटे के साथ, पूर्ण राजकीय सुविधाओं में ठहरा था। कुछ कपटपूर्ण मुस्लिम-वर्णनों के अनुसार, दीन-पनाह की स्थापना शाहजहाँ से तीन पीढ़ियों पूर्व हुमायूं द्वारा की गई थी। किन्तु अन्य कपटपूर्ण मुस्लिम-वर्णनों का दावा है कि हुमायूँ द्वारा स्थापित नगर शेरशाह द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। फिर, शेरशाह के चाटुकारों का कहना है कि शेरशाह ने भी शेरगढ़ नामक एक शहर बसाया था, जो दीन-पनाहवाले स्थल पर ही था। मजा यह है कि कोई भी व्यक्ति न तो किसी

---

१. कार स्टीफन कृत "दिल्ली के पुरातत्त्व और स्मारक-अवशेष", पृष्ठ २१६ से २१८

प्राधिकरण का उल्लेख करता है, और न ही किसी दरबारी-प्रलेख को प्रस्तुत करता है। प्रत्येक परवर्ती बादशाह द्वारा एक पूर्वकालिक नगर को ध्वस्त करके एक नया नगर उसी स्थान पर बनाने-बसाने की बात ऐसी ऐतिहासिक बेहूदगी है जो मध्यकालीन इतिहास के विद्वानों की पीढ़ियों द्वारा अशंकित रूप में ही अंगीकार की जाती रही है। इस प्रकार का, इतिहास का अंधा-शिक्षण अथवा अवबोधन के आगे चलते रहने की अनुमति बिल्कुल नहीं होनी चाहिए।

एक अन्य प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि हुमायूँ और शेरशाह ने दिल्ली को अत्यधिक महत्त्व दिया, तो क्या कारण है कि अकबर और जहाँगीर दिल्ली में नहीं रहे? उन दोनों बादशाहों के बाद ही, अचानक शाहजहाँ के शासनकाल में हमें इतिहास-लेखक मिल जाते हैं जिन्होंने एक नये शहर का झूठा शोर-शराबा मचाया है। स्पष्टतः, मुगलवंशी शासन के अन्तर्गत, लगातार, दिल्ली भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण बनी रही जितना महत्त्वपूर्ण आगरा नगर। यही कारण है कि हम किले के उस सेतु-शिखर-भाग को, जो नदी की ओर निकला हुआ है, सलीमगढ़ के नाम से पुकारा जाता पाते हैं। चूँकि शहजादे के रूप में जहाँगीर का नाम सलीम था, इसलिए संभव है कि अकबर ने प्राचीन हिन्दू किले के उस भाग को अपने बेटे जहाँगीर के नाम से पुकारना शुरू कर दिया हो। यह भी सम्भव है कि जहाँगीर उपनाम सलीम द्वारा अपने पिता अकबर को जहर देने का यत्न किये जाने के बाद विद्रोही सलीम को दिल्ली के प्राचीन हिन्दू लालकिले के उस भाग में कारावास में रखा गया हो।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दू दिल्ली और इसके किले को अनुवर्ती मुस्लिम शासकों ने भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया था। हुमायूँ के समय में पुरानी दिल्ली को—पाण्डवों की नगरी को—दीनपनाह नाम से पुकारा जाने लगा था, शेरशाह ने इसका नाम शेरगढ़ में परिवर्तित करना चाहा था, शाहजहाँ ने इसका नाम शाहजहानाबाद रखना चाहा था, और ऐसे बारम्बार मुस्लिम प्रयत्नों के बावजूद दिल्ली की पुरानी नगरी दृढ़-स्थायी रूप से अपना अस्तित्व बनाए हुए है और पुरानी दिल्ली के रूप में ही वर्णित होती जा रही है। यह पुरानी दिल्ली उतनी ही

पुरानी है जितना पुराना वह पुराना किला है। दोनों का सम्बन्ध महाभारत महाकाव्य से है।

बाहरी दीवारें २ वर्ष, १ मास और ११ दिनों में बनने का सूक्ष्म विवरण भी संदेहास्पद है जबकि किले के अन्य भागों तथा पुरानी दिल्ली के नगर के बारे में ऐसे ही विवरण प्रस्तुत नहीं किये गए हैं। केवल दीवारें खड़ी कर देने में लगे समय का ही वर्णन, पृथक् रूप से क्यों उल्लेख किया जाय ? इसीलिए, सर एच० एम० इल्लियट का यह पर्यवेक्षण ठीक था कि मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखक अपने जाली, मनघड़न्त वर्णनों में ऐसे विवरण ठूंस दिया करते थे जिनसे उनमें आधिकारिकता की झलक आने लगे। साथ ही, मुस्लिम तिथिवृत्तों में, जो अतिवृहदाकार हैं, विशालाकार किलों और बड़े-बड़े नगरों के निर्माण कराने का विषय कुछ पंक्तियों में ही नहीं निपटाया जाना चाहिये था। यदि इन परियोजनाओं को वास्तव में ही मुस्लिमों द्वारा प्रारम्भ किया गया था, तो उनके तिथिवृत्तों में रूपरेखांकन-चित्र प्रस्तुत किये गए होते, निर्माण-आदेशों को उद्धृत किया गया होता, भूमि-अधिग्रहण-सम्बन्धी कार्यवाही, सर्वेक्षण, कर्मचारियों की नाम-सूची विपत्र और रसीदें तथा दैनन्दिन खर्चों की पर्चियां अवश्य सम्मिलित की गई होतीं। इनके अभाव में, किसी-न-किसी के द्वारा, किसी-न-किसी प्रकार कुछ-न-कुछ बनवाने के बारे में, मात्र संक्षिप्त इकल्ले-दुकल्ले वर्णनों को नितान्त कपटपूर्ण, जाली रचनाएं घोषित करके अस्वीकृत, अमान्य कर दिया जाना चाहिए।

एक अन्य ब्रिटिश लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक में भी उतनी ही लापरवाही और बिना किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल किये हुए ही, लिखा गया है कि "किले का निर्माण, दिल्ली के तत्कालीन सूबेदार ग़ैरतखान के अधीक्षण में १९ अप्रैल, सन् १६३९ को प्रारम्भ हुआ था, और जल्दी ही दो वर्ष या उसके लगभग कालावधि के लिए अल्लाहवर्दीखान को सौंप दिया गया था, और फिर मक्रतमखान मीर समानी को दे दिया गया था। यह नौ वर्ष और तीन महीने अथवा उसी के लगभग अवधि में पूरा हुआ था, तथा इसका उद्घाटन-समारोह सन् १६४८ में हुआ था, जब सादुल्ला

खान प्रधानमन्त्री था।"[१]

जबकि अन्य ग्रन्थों के अनुसार किले का निर्माण प्रारम्भ होने का वर्ष सन् १६३८ ई० उल्लेख किया गया है, उपर्युक्त अवतरण ने सन् १६३६ ई० निर्माण प्रारम्भ करने का वर्ष घोषित किया है। साथ ही, आश्चर्य की बात यह है कि इनमें से एक भी ग्रन्थ 'बादशाहनामा' का उल्लेख नहीं करता है जबकि यही ग्रन्थ स्वयं शाहजहाँ के आदेशानुसार उसके शासनकाल का सरकारी तिथिवृत्त है। उपर्युक्त अवतरण में कथनों के साथ अनुमान भी —"या उसके लगभग"—जुड़े हुए हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि लेखक अपने मूलाधार के बारे में सुनिश्चित नहीं है।

इस अध्याय को पूर्ण समाप्त करने से पूर्व हम पश्चिमी विद्वानों प्रवासियों और लेखकों के सम्बन्ध में एक उपयुक्त पर्यवेक्षण करना चाहते हैं। ऐतिहासिक स्थिर सिद्धान्त के रूप में यह मान लेना चाहिए कि किसी भी शासनकाल में शासक-समुदाय या उनके समप्रभाव से सम्बन्धि लेखकों की टिप्पणियाँ अत्यन्त आधिकारिक और उच्चतम सम्मान की पात्र समझी जाती हैं।

अतः ब्रिटिश शासन में, भारत में तथा सामान्य पश्चिमी वर्चस्व के कारण विश्व के अन्य भागों में, पश्चिमी लेखकों की टिप्पणियाँ देव-वचन-तुल्य माहात्म्य, महत्त्व की समझी जाती रही हैं। किन्तु, हम यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पश्चिमी प्रवासियों की टिप्पणियाँ, यूरोपीय कर्मचारियों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और पश्चिमी लेखकों द्वारा दिये गए वक्तव्य सर्वाधिक नितांत अज्ञानता की विशिष्टता लिये हुए हैं। हम इन बातों के कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों से जनता को परिचित कराना चाहते हैं। इस पुस्तक के प्रारंभिक अध्याय में ही हम बता चुके हैं कि किस प्रकार जनरल कनिंघम ने, जिसने भारत का 'भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग' स्थापित किया था, अपनी मूलभूत सदोष धारणाओं और मान्यताओं के कारण इसको भ्रष्ट कर दिया था। उसे स्वयं लालकिले के बारे में यही मालूम था कि लालकिले के नाम से पुकारी जानेवाली एकमात्र इमारत

१. गोर्डन हर्न विरचित : "दिल्ली की सात नगरियाँ", पृष्ठ ८८

यमुना नदी-तट के पास पुरानी दिल्ली नामक नगर में थी, और फिर भी वह इसे कुतुबमीनार के आसपास ही खोजता रहा। साथ ही, जब वह उसे वहाँ नहीं ढूंढ पाया तब भी वह मूर्खता में लिख गया कि लालकिला कुतुब मीनार के पास ही कहीं रहा होगा।

भारतीय इतिहास तथा अध्ययन के अनेक अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी पश्चिमी लेखकों की टिप्पणियों में ऐसी अगणित मूर्खताएँ समाविष्ट हैं। उदाहरणार्थ, कर्नल टाड ने लिखा है कि "अकबर ने अपने दिल्ली के राजमहल (जिसका अर्थ लालकिला है) के द्वार को हाथियों पर सवार दो हिन्दू-शत्रुओं की प्रतिमाओं से सुशोभित किया था। ये शत्रु हिन्दू राजकुमार थे जो चित्तौड़-दुर्ग को घेरे हुए अकबर की सेना से युद्ध में मारे गए थे।"[1] टाड ने उस आक्रमण को निरंकुश बताकर निन्दा की है और अकबर को भयंकरतम अत्याचार करने के लिए दोषी ठहराया है। इस प्रकार पर्यवेक्षण करने के बाद भी कर्नल टाड जैसे विद्वान् के मन में यह विचार आना बेहूदा बात है कि अकबर अचानक अति दयालु, शिष्ट और शूरवीर हो जायेगा तथा अपने राजमहल की शोभा बढ़ाने के वास्ते उन्हीं घृणित शत्रुओं की प्रतिमाएँ बनाएगा जिन्हें उसने स्वयं ही मार डाला था। किन्तु कर्नल टाड इस मन्तव्य में बिल्कुल सही है कि अकबर के समय में अर्थात् शाहजहाँ से दो पीढ़ियाँ पूर्व भी दिल्ली में लालकिला विद्यमान था और इसीलिए स्वतः सिद्ध है कि शाहजहाँ द्वारा लालकिला नहीं बनाया गया था। इसीलिए भारतीय ऐतिहासिक विद्वत्ता की दिशा में कर्नल टाड द्वारा किये गए महान योगदान को अत्यन्त आभारपूर्वक स्वीकार करते हुए भी हमें उसके दोषों के प्रति आँखें नहीं मूंद लेनी चाहिएँ।

जनरल कनिंघम ने मध्यकालीन भारत के एक ब्रिटिश प्रवासी की मूर्खता का उल्लेख किया है। कनिंघम लिखता है : "टाम कोर्यट ने एल० ह्विटटेकर को एक पत्र में कहा है : 'मैं इस देश के दिल्ली नामक नगर में रहा हूँ जहाँ सिकन्दर महान् ने भारत के राजा पोरस के साथ युद्ध किया था

---

१. कर्नल टाड का 'राजस्थान का इतिहास' (अंग्रेज़ी संस्करण)—खण्ड १, पृष्ठ ३२८

और उसको हराया था, तथा जहाँ उसने अपनी विजय के उपलक्ष्य में पीतल का एक स्तम्भ बनवाया था जो आज भी खड़ा हुआ है।'...कोर्यट का यह दोषपूर्ण मत प्रारम्भिक अंग्रेजी प्रवासियों में से अधिकांश लोगों द्वारा मान्य किया गया था।"[1]

कोर्यट द्वारा की गई सर्वप्रथम भयंकर भूल यह है कि उसने कहा है कि सिकन्दर और पोरस दिल्ली में युद्ध-रत रहे थे; दूसरी भूल पोरस को भारत का सम्राट् कहना है, और तीसरी भूल अशोक की लाट को पीतल का स्तम्भ कहना है। कनिंघम हमको यह भी सूचित करता है कि भारत में आनेवाले प्रारम्भिक ब्रिटिश प्रवासियों ने कोर्यट के भयंकर भूलों वाले पर्यवेक्षणों को अन्धाधुंध दुहराया है। विश्वभर में मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों और विद्वानों को मध्यकालीन रचनाओं के ऐसे दोषों का सामान्यत: ज्ञान नहीं है। इससे सब लोगों को जो सीख लेनी चाहिए वह यह है कि विदेशी मध्यकालीन प्रवासियों की किसी भी टिप्पणी को अतिपवित्र देव-तुल्य नहीं मानना चाहिए।

कनिंघम भारत आए एक अन्य पश्चिमी प्रवासी की मूर्खता का भी वर्णन करता है। ग्वालियर के किले की पर्वतीय-दिशा में उत्कीर्ण मानव-प्रतिमाओं के सम्बन्ध में ईसाई पादरी मनसरेंट के इस पर्यवेक्षण को उद्धृत करते हुए कि "इस समूह में हमारे रक्षक (अर्थात् ईसा) तथा उनके १२ अनुयायी हैं"[2] कनिंघम यह कहे बिना नहीं रह सका कि ग्वालियर में (महावीर जैन की) पूर्णत: नग्न प्रतिमाओं के बारे में जब महान् और शिक्षित ईसाई धर्म-प्रचारक इस प्रकार लिख सकते हैं, तब तो हमें उन विचित्र प्रवासी-कथाओं के बारे में बिल्कुल भी चकित होने की आवश्यकता नहीं है जो अशिक्षित खोजियों द्वारा यूरोप में लाई गई थीं।"

यद्यपि जनरल कनिंघम ने भारत में आये पश्चिमी प्रवासियों की सामान्य प्रतिभा का अत्यन्त सुबुद्धिपूर्ण मूल्यांकन ऊपर प्रस्तुत किया है, तथापि वह स्वयं अपनी मूर्खता और विफलता के प्रति पूरी तरह असाव-

---

१. कनिंघम का प्रतिवेदन, खण्ड-१, पृष्ठ १६२-१६३

२. कनिंघम का प्रतिवेदन, खण्ड-२, पृष्ठ-३६८-३६९

भाव था जिसके कारण उसने भारतीय पुरातत्त्वीय अध्ययन की स्वयं नींव को ही दूषित कर दिया था। इस सम्बन्ध में हम पहले ही लिख चुके हैं कि किस प्रकार वह लालकिले को कुतुब के पास ही खोजता रहा यद्यपि स्वयं दिल्ली में ठहरा और काम करता रहा तथा दिल्ली के लालकिले में बहुधा गया। जब वह पुरातत्त्व-विभाग की नींव डालने के कार्य में जुट गया, तब उसने यह भी धारणा बना ली कि भारत में तथाकथित मस्जिद और मक़बरे मूलतः मस्जिद और मक़बरे ही बने थे, अथवा किसी मुस्लिम सुलतान के नाम से बने हुए किसी किले या नहर के बारे में उस किंवदन्ती का समर्थन करने के लिए अन्य किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी।

एक अन्य मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखक फ़राहबख्श, बादशाह शाहजहाँ द्वारा "शाहजहानाबाद के भवनों, किले और नहर-निर्माण का खर्चा पचास लाख रुपया तथा जामा-मस्जिद का खर्चा दस लाख रुपया बताता है।"[1]

इसने फिर खर्चे के बारे में अपने कथन के समर्थन, आधार-हेतु किसी प्राधिकरण का उल्लेख नहीं किया है। तथ्य तो यह है कि तिथिवृत्त-लेखक द्वारा उल्लेख किए गए आँकड़े तभी आधिकारिक माने जाते जबकि इनके लेखक ने शाहजहाँ के दरबारी-अभिलेखों का सन्दर्भ प्रस्तुत किया होता। चूँकि ऐसा कोई शाही व्यय-लेखा उपलब्ध नहीं है, अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त आँकड़े काल्पनिक और स्वयं इस लेखक की अपनी ही ईजाद (आविष्कार) हैं। साथ ही, शाहजहानाबाद की सम्पूर्ण बस्ती और असत्य दावाग्रस्त लालकिले, और स्वयं नहर पर भी व्यय की गई कुल धन-राशि को पचास लाख रुपये कहकर प्रस्तुत करना भी सन्देह उत्पन्न करता है। उन सर्वथा असदृश्य, भिन्न-भिन्न तीन वस्तुओं को एक ही स्थान पर क्यों एकत्र कर दिया गया है ? यदि शाहजहाँ ने उन अतिव्यय-विस्मयकारी परियोजनाओं पर अपने शासनकाल के पृथक्-पृथक् वर्षों में कुछ खर्चा किया

१. दिल्ली और फ़ैज़ाबाद के संस्मरण, मुहम्मद फ़ैज बख्श के (मनमोहक इतिहास) तारीख फ़राहबख्श का अनुवाद (मूल फ़ारसी से विलियम होइ द्वारा अनुवाद)—दिल्ली, इलाहाबाद के संस्मरण, १८८८

होता, तो उनका पृथक्-पृथक् उल्लेख उपलब्ध होता। उनको एकसाथ मिलानेवाली बात से ही द्योतन होता है कि शाहजहाँ को निर्माण-श्रेय दिये गए ये तीनों कार्य ही उग्रवादी मुस्लिम आविष्कार हैं—वास्तविकता नहीं, मात्र उसके नाम लिख दिये गए हैं।

इस पुस्तक में अन्यत्र कहीं यह भी लिखा गया है कि शाहजहाँ ने, यदि कुछ किया ही था, तो वह यह कि एक पुरानी नहर की मरम्मत कराई थी (चाहे उसका जो भी अर्थ हो)। उसने कोई नई नहर नहीं बनाई थी और फिर भी फ़राहबख्श उपर्युक्त अवतरण में दावा करता है कि शाहजहाँ ने एक नई नहर बनाई थी। वह अपने दावे का समर्थन करने में विफल रहता है क्योंकि उसने यह उल्लेख नहीं किया कि इस नहर की आवश्यकता क्यों हुई थी, नहर का रूपरेखांकन किसने बनाया था, कब और कैसे नहर बनाई गई थी तथा कितनी लागत इसपर आई थी।

भारतीय ऐतिहासिक और पुरातत्त्वीय अध्ययन को विदेशी विद्वत्ता-द्वारा पहुँचाई गई घोर क्षति, विनाश का सहज, अनायास दृष्टान्त ऊपर प्रस्तुत किया गया है। सत्य के अन्वेषण में दत्तचित्त होकर कार्य में लगे हुए व्यक्तियों को इतिहास के इन जंजालों से सावधान रहना चाहिए और मध्यकालीन लेखकों की, उनमें भी विशेष करके मुस्मिल उग्रवादियों, जालसाजियों, पश्चिमी अज्ञानी व्यक्तियों और बुद्धुओं की तथा उनके अनेक देशी और विदेशी अनुयायियों की बुद्धिमत्ता को चुनौती देनी चाहिए।

इतिहास के सम्पूर्ण क्षेत्र की पुन: समीक्षा होनी चाहिए और सभी नक्क़ाशी, कथनों और शिलालेखों के अनुवादों की सूक्ष्मतम जाँच-परख की जानी चाहिए। आंग्ल-मुस्लिम रचनाओं में जमा हुआ अन्धविश्वास त्याग दिया जाना चाहिए और सभी व्यक्तियों में, लिखित सामग्री के बीच का, विशेषकर मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों का गूढ़ार्थ, परोक्ष अर्थ समझ सकने का सामर्थ्य उत्पन्न होना चाहिए। मुस्लिम तिथिवृत्तों के अंग्रेजी-अनुवादों को भी पूरी तरह, अत्यन्त सतर्कतापूर्वक दुहराने की आवश्यकता है। विदेशियों के एक प्रकार द्वारा (अर्थात् मध्यकालीन मुस्लिमों द्वारा) लिखित तिथिवृत्तों के विदेशियों के एक अन्य प्रकार (अर्थात् अंग्रेजों) द्वारा

किए गए अनुवादों ने, भारतीय इतिहास के अध्ययन के प्रति घोर अन्याय किया है। उदाहरण के लिए जब अंग्रेज़ी-अनुवाद का भाव यह है कि किसी सुलतान-विशेष ने "मन्दिर गिराए और मस्जिदें बनाईं", तो यह धारणा बना लेना निश्चित रूप में गलत है कि भारत के मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मन्दिरों को पूरी तरह भूमिसात् कर दिया था, और वहाँ की सामग्री (पत्थर आदि) को अन्यत्र ले जाकर, मस्जिद बनाने में उनका उपयोग किया था। मुस्लिम तिथिवृत्तकारों द्वारा प्रयुक्त प्राच्य शब्दावली का सही रूपान्तर यह होगा कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र किया और उन्हीं भवनों को मस्जिद के रूप में उपयोग में लाने लगे। मात्र इसी से पक्का होगा कि प्रत्येक ध्वस्त किये गए मन्दिर का अर्थ एक अभीष्ट मस्जिद होता था। मध्यकालीन इतिहास के अध्ययन में किसी को भी सूक्ष्म जाँच-पड़ताल से नहीं छोड़ा जाना चाहिए, चाहे वह मुस्लिम तिथिवृत्त लेखक हो, या, एक ब्रिटिश सरकारी अधिकारी-कर्मचारी हो, एक पश्चिमी प्रवासी, एक अंग्रेज-अनुवादक एक हिन्दू पुरातत्त्व-वेता अथवा ईसाई प्रोफ़ेसर हो।

निम्नलिखित उद्धरण से इस बात का स्पष्ट द्योतन होता है कि मुस्लिम आक्रमणकारी किस प्रकार मन्दिरों को अपने अधीन कर लेते थे और उनको मस्जिदों के नाम से पुकारने लगते थे।

"(गुजरात के मुहम्मद बघर्रा) सुलतान ने मन्दिर गिराने और जगत की मूर्ति तोड़ने के समय शुक्रिया अदा करने के लिए नतीज-हेतु दो बार घुटने टेके। मुस्लिमों ने मन्दिरों की छत से नमाज़ के लिए अज़ान लगाई (आवाज़ दी)।"[1]

उपर्युक्त अवतरण हमारी इस धारणा का, कि सभी मध्यकालीन मस्जिदें और मक़बरे विजित और दुरुपयोग में लाये गए रूप-परिवर्तित हिन्दू-मन्दिर और भवन हैं, एक मध्यकालीन मुस्लिम तिथिवृत्त-लेखक द्वारा प्रस्तुत एक अत्यन्त,प्रबल प्रमाण है। उपर्युक्त सारांश हमारे शिक्षा-

१. अली मुहम्मद खान की रचना "मीरत-ए-अहमदी" का एम० एफ० लोखण्डवाला द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४८

विदों के इस कल्पित विश्वास को भी समूल नष्ट कर देता है कि मुस्लिम लोग हिन्दू भवनों को एक स्थान से समूल उखाड़ दिया करते थे और फिर उसी सामग्री को दूसरे स्थान पर ले-जाकर मस्जिदें और मक़बरे बनाया करते थे।

यही तिथिवृत्त ('मीरत-ए-अहमदी') हमारी इस धारणा का भी स्पष्ट समर्थन, प्रमाण प्रस्तुत करता है कि पुरानी दिल्ली एक प्राचीन नगर है जो शाहजहाँ से शताब्दियों वर्ष पूर्व भी विद्यमान था।

तुगलकों के शासनकाल की चर्चा करते हुए, जो शाहजहाँ से कई पीढ़ियों पूर्व था, 'मीरत-ए-अहमदी' का लेखक पर्यवेक्षण करता है कि एक खास" खान (अर्थात् दरबारी) दिल्ली से चला और उसने हौजखास के प्रवेशद्वार पर अपना खेमा गाड़ दिया।"[1] स्वयं अपने ही समय में हम जानते हैं कि मुस्लिमों की प्रिय, मधुर भाषा में हौज-खास पुकारा जाने-वाला प्राचीन हिन्दू राजमहल पुरानी दिल्ली से लगभग दस मील दूरी पर ही है। अतः, उपर्युक्त खान के लिए यह सहज स्वाभाविक ही था कि उसने एक दिन चलने के बाद, पुरानी दिल्ली से दस मील की दूरी पर हौज-खास के प्रवेश-द्वार पर खेमा गाड़ दिया। अतः ऐतिहासिक स्मारकों के दर्शकों और मध्यकालीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों को, इसके बाद, मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा पुरानी दिल्ली स्थापित करने के बारे में परम्परागत आंग्ल-मुस्लिम धोखेमें लेशमात्र भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

---

१. अली मुहम्मद खान की रचना "मीरत-ए-अहमदी" का एम० एफ० लोखण्डवाला द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ४८

अध्याय १२

शाहजहाँ का अत्याचारी शासन

पाँचवीं पीढ़ी का मुग़ल बादशाह शाहजहाँ घोर जालसाज था। उसने कामगारखान नामक एक चापलूस को अपने पिता के सम्पूर्ण तिथिवृत्त 'जहाँगीरनामा' का जाली प्रतिरूप तैयार करने के लिए नियुक्त किया था, क्योंकि मूलग्रन्थ में शाहज़ादे के रूप में शाहजहाँ को लुच्चा-गुण्डा और नीच पुरुष कहा गया था।

दूसरी सुप्रसिद्ध जालसाजी वह दस्तावेज है जो 'तारीखे-ताजमहल' कहलाता है और ताजमहल की देखभाल करनेवालों के पास है।

शाहजहाँ, उपनाम शाहज़ादा खुर्रम ५ जनवरी, सन् १५९२ ई० को लाहौर में पैदा हुआ था। उसकी माँ एक हिन्दू राजकन्या थी जिसको, अपहरण करने के बाद, सन् १५८६ ई० में मुग़ल हरम में ठूंस दिया गया था।

शाहजहाँ ने शाहज़ादा खुर्रम के रूप में अपने सत्तासीन पिता जहाँगीर के विरुद्ध अनेक बार बग़ावतें की थीं। उससे तंग आ जाने के बाद ही जहाँगीर ने शाहज़ादा खुर्रम अर्थात् शाहजहाँ को लुच्चा-गुण्डा और नीच पुरुष के नाम से कलंकित किया था। स्वयं उसके पिता द्वारा बेटे का इस प्रकार मूल्यांकन हो जाने के बाद भी, आश्चर्य इस बात का होता है कि इतिहासकार, न जाने कैसे शाहजहाँ के शासनकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग घोषित करने का औचित्य सिद्ध करते हैं!

कीन नामक एक ब्रिटिश इतिहासकार ने लिखा है कि शाहजहाँ पहला मुगल बादशाह था जिसने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों की हत्या कर डाली थी। उसने अपने बड़े, अंधे कर दिये गए बड़े भाई खुसरू को उस समय आधी रात को मार डाला था जबकि वह शाहजहाँ की सुरक्षा अभिरक्षा में माना जाता था।

शाहजहाँ अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध तीन वर्ष तक लगातार लड़ाई की स्थिति में रहा था, और यदि शाहजहाँ राजगद्दी हड़प पाता तो उसने पिता जहाँगीर को भी मार डाला होता।

शाहजहाँ कामुकता के लिए इतना कुख्यात था कि कई इतिहासकारों ने उसे, उसकी अपनी अविवाहिता-बेटी जहाँआरा के साथ स्वयं सम्भोग करने का दोषी कहा है।

शाहजहाँ का राजगद्दी पर बैठना भी सामान्य, सदा की भांति हत्या के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में हुआ था। चूंकि शाहजहाँ उस समय राजधानी से दूर था, जब उसका पिता जहाँगीर मरा, इसलिए उसके ससुर आसफ़-खान ने खुसरू के बेटे और शाहजहाँ के भतीजे देवरबख्श को, उसकी अनुपस्थिति में, नाममात्र का बादशाह घोषित कर दिया। लाहौर में, विधवा नूरजहाँ ने अपने चापलूस शहरियार को बादशाह घोषित किया। दोनों प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारों की सेनाएँ लाहौर से छः मील दूर एक स्थान पर भिड गईं। पराजित शहरियार को हरम से घसीटकर लाया गया और तीन दिन बाद उसकी आँखें फोड़ दी गईं। शाहज़ादा दानियाल के दो छोटे बच्चे तहिमुरास और होशंग को भी कालकोठरियों में धकेल दिया गया था। शाहजहाँ ने अपने ससुर को आदेश दिया कि कठपुतली बादशाह देवरबख्श सहित उसके सभी प्रतिद्वन्द्वियों को जान से मार डाला जाय। इस प्रकार की हत्याओं के मदोन्मत्त वातावरण में शाहजहाँ, आगरा में, ६ फ़रवरी, सन् १६२८ ई० को राजगद्दी पर बैठा था।

अपने चेचक के दागोंवाले मुख के समान ही शाहजहाँ के लगभग ३० वर्षीय शासन में ४८ लड़ाइयाँ हुई थीं। इसका अर्थ प्रतिवर्ष १½ लड़ाई से अधिक है। अनवरत युद्ध-कार्य से ग्रस्त ऐसे शासनकाल को किसी भी प्रकार शांतिपूर्ण और स्वर्णिम नहीं कहा जा सकता है। इसे, इस प्रकार

का वर्णित करने में मुग़ल इतिहास के अध्यापकों व प्राध्यापकों और लेखकों को या तो अपने व्यावसायिक कर्तव्यों की घोर अपेक्षा करने का अथवा जान-बूझकर शैक्षिक वाग्छल करने का अपराधी पाया जाना चाहिए।

शैक्षिक उपेक्षा और हास्यास्पद का एक ऐसा उदाहरण, हम 'लन्दन-विश्वविद्यालय' द्वारा स्वीकृत, शाहजहाँ के सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर सक्सेना के शोध-प्रबंध में प्रस्तुत कर चुके हैं जहाँ दोनों ने ही विश्वास कर लिया है कि शाहजहां द्वारा निर्मित भवनों के विशाल समूह की संख्या करना, उनकी सूची बनाना भी असंभव है। शाहजहाँ की शक्ति और डॉक्टरेट की उपाधि के लिए 'लंदन विश्वविद्यालय' के मार्गदर्शकों की शक्ति के बीच निहित, अगाह अन्तर की तो मात्र कल्पना ही की जा सकती है। यह माना जाता है कि शाहजहाँ ने तो अरबों-खरबों रुपयों की लागत पर सैकड़ों भवनादि बनवाए थे, तथापि 'लन्दन विश्वविद्यालय' ने डॉक्टरेट के अभिलाषी प्रोफ़ेसर सक्सेना से उन भवनों की एक विशद कच्ची सूची माँगने में ही नैराश्य प्रकट कर दिया।

'स्वर्णिम शासन' का दावा प्रचुरता और समृद्धि के विचार से भी उचित नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि शाहजहाँ का शासनकाल भयंकर दुर्भिक्षों से भी भरा पड़ा था। दक्खन और गुजरात में पड़े ऐसे ही एक दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए शाहजहाँ के अपने दरबारी तिथिवृत्तकार मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने लिखा है : "एक टुकड़े रोटी के बदले में ज़िन्दगी बेची जाती थी, लेकिन कोई खरीदता नहीं था। बकरे के मांस के नाम से कुत्ते का मांस बेचा जाता था, और मरे हुओं की पिसी हुई हड्डियाँ आटे में मिलाई जाती थीं और बेची जाती थीं। कंगालावस्था इस सीमा तक पहुँच गई कि आदमी आदमी को खाने, निगलने लगा और अपने बेटे के प्यार के बदले में उसका मांस ही ज्यादा अच्छा लगने लगा। मरनेवालों की अनंत संख्या ने सड़कों के बीच में रुकावट डाल दी।"

यदि शाहजहाँ के शासनकाल को स्वर्णिम-काल कहने का कारण यह कि शाहजहाँ ने अपनी सन्तानों में पितृवात्सल्य-सम्मान को प्रेरित किया था और उसने उनको अत्यन्त समृद्धिपूर्ण और शान्तिपूर्ण साम्राज्य स्वयं

उत्तराधिकार में दे दिया था, तो भी यह दावा असत्य सिद्ध हो जाता है। शाहजहाँ तो इतिहास के सर्वाधिक घृणित बादशाहों में से एक था। लोग असन्तोष के कारण उत्तेजित रहते थे, और निर्धनता व विपन्नावस्था को प्राप्त हो चुके थे। उनके ऊपर भयंकर अत्याचार व नृशंसताएँ होती थीं। अतः, जैसे ही वृद्धावस्था को प्राप्त होते जा रहे शाहजहाँ के भयंकर रूप में बीमार हो जाने का समाचार फैला, उसके अपने बेटों सहित सम्पूर्ण साम्राज्य में बगावत खड़ा हो गया। मुहम्मद काज़िम ने 'आलमगीरनामा' अपने तिथिवृत्त में लिखा है : "८ सितम्बर, सन् १६५७ ई० को शाहजहाँ बीमार हो गया। प्रशासन में सभी प्रकार की अनियमितताएँ हुईं और हिन्दुस्थान के विशाल इलाकों में झगड़े हो उठे। हर तरफ़ असन्तुष्ट और विद्रोही लोगों ने विद्रोह और झगड़े के रूप में अपने-अपने सिर ऊपर कर लिए। विक्षुब्ध प्रजा ने राजस्व देने से इन्कार कर दिया। सभी दिशाओं में विद्रोह का बीज बोया जा चुका था, और आहिस्ता-आहिस्ता यह बुराई इस सीमा तक पहुँच गई कि गुजरात में मुरादबख्श ने अपनी गद्दी जमा ली, खुतबा पढ़वा लिया, अपने नाम के सिक्के घड़वा लिए और बादशाह की पदवी धारण कर ली। शुजा ने भी बंगाल में यही मार्ग अपनाया, पटना के विरुद्ध सेना का नेतृत्व किया और वहाँ से बनारस चल पड़ा…।"

कुछ महीनों के भीतर ही, समस्त सत्ता शाहजहाँ के तीसरे बेटे औरंगज़ेब के हाथ में आ गई, और शाहजहाँ अपने ही बेटे के हाथों असहाय बन्दी बन गया। शाहजहाँ ने अपने साहसोन्नत, बदमिज़ाज और आकांक्षी बेटे का बंदी रहकर क़ैद और तिरस्कार के आठ वर्ष तब तक भोगे जब तक कि सन् १६६६ ई० में स्वयं मृत्यु ने ही उसके अधोगत जीवन को समाप्त नहीं कर दिया।

इस प्रकार, शाहजहाँ का शासनकाल युद्धों, विद्रोहों और अकालों से, प्रारम्भ से अंत तक परिपूर्ण ही रहा था। इसके कारण उसे प्रायः धना-भाव रहता था। अतः, इन कथनों का इतिहास में कोई आधार नहीं है कि उसने आगरा में कल्पनातीत ताजमहल नामक मक़बरा, आगरे के ही लाल-किले में पहले बने हुए ५०० भवनों को गिरवाकर अपनी इच्छा के, उसी

स्थल पर अन्य ५०० भवन बनाने, दिल्ली में जामा-मस्जिद और लालकिला बनाने, शाहजहानाबाद उपनाम पुरानी दिल्ली नामक पूरा नगर बसाने, अजमेर में अन्नासागर नामक झील का निर्माणादेश देने अरबों-खरबों रुपये खर्च किये थे। इतिहासकारों को चाहिए कि वे लगभग तीन शताब्दियों से सम्पूर्ण विश्व को वितरित, प्रचारित-प्रसारित की जा चुकी परम्परागत किंवदन्तियों पर अन्धविश्वास रखने के स्थान पर प्रत्येक पृथक्-पृथक् दावे के बारे में स्पष्ट, सुनिश्चित प्रमाण माँगें।

अध्याय १३

गज-प्रतिमा-सम्बन्धी घोटाला

भूले से, या जान-बूझकर, जिन ऐतिहासिक भवनों का निर्माण-श्रेय विदेशी मुस्लिमों को दिया जाता है, उनके हिन्दू-मूलक होने का एक सुस्पष्ट और सहज ही पहचाना जा सके, ऐसा प्रभाव इन भवनों की दीवारों पर बने पक्षी या पशु-चित्रों में, अथवा इन भवनों की प्रसीमा में इनकी प्रतिमाओं के अस्तित्व में है।

यदि व्यक्ति इस बात को ध्यान में रखते हुए इन ऐतिहासिक स्थलों पर पुनः दृष्टिपात करे, तो उसे गुलबर्गा नगर में तथाकथित दरगाह बन्दा-नवाज़ (अर्थात् फ़क़ीर बन्दानवाज़ के मक़बरे) से लेकर लखनऊ के तथाकथित इमामबाड़ों तक के अनेक प्राचीन भवनों पर मछलियाँ उत्कीर्ण मिल जाएँगीं। अतः वे विजित हिन्दू-भवन हैं जिनको मुस्लिम उपयोग में लाया गया है। इसी प्रकार एक विशिष्ट पक्षी, जो तोते और मोर का वर्णसंकर प्रतीत होता है, बहुत बड़ी संख्या में दक्षिण में वरंगल से लेकर उत्तर में आगरा तक के कई भारतीय किलों में चित्रित किया गया है। अतः, वे सब हिन्दू किले हैं। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति को किलों की दीवारों पर पच्चीकारी में मानव-आकृति अथवा पक्षी-चित्रण मिले, तो वे सब हिन्दू-भवन हैं। दिल्ली के लालकिले में एक बाँसुरीवादक का चित्र था जो भारत के किसी विदेशी शासक द्वारा यहाँ से हटाकर अन्यत्र ले जाया गया है। उस चित्र को, ग़लती से, ओरफ़ियस का चित्र मान

लिया गया है। दिल्ली के लालकिले की पच्चीकारी में अभी तक पक्षियों के चित्र बने हुए हैं। चूँकि मुस्लिम लोग क्रूर मूर्तिभंजक थे जिनको किसी भी प्रकार का आकृति-निर्माण सहन नहीं था और चूँकि आकृतियों के प्रतीकों में मूर्ति उपासना की गन्ध के कारण कुरान में इस प्रकार के निर्माण का सर्वथा निषेध था, अतः किला मुस्लिम-मूलोद्भव और रचित नहीं है।

किन्तु किले के हिन्दू-मूलक होने के सुस्पष्ट प्रमाण एवं अकाट्य रूप में विद्यमान, वे अनेकों गज-प्रतिमायें हैं जो दिल्ली के लालकिले में विद्यमान हैं।

हम उन गज-मस्तकों के सम्बन्ध में पहले ही कह चुके हैं जो किले के खासमहल के द्वारों पर कुंडों के रूप में काम आते हैं। उन गज-मस्तकों पर हिन्दू वेश-भूषाधारी महावत सुशोभित हैं। ये वहाँ नहीं होते अथवा नहीं होने चाहिए थे, यदि शाहजहाँ ने,जो एक अति धर्मान्ध मुस्लिम था, दिल्ली में किले का निर्माणादेश दिया था।

धातुओं के इन छोटे-छोटे हाथियों और मानव-रूपों के अतिरिक्त दीवाने-आमवाले भाग को जानेवाले, किले के हाथीपोल दरवाज़े पर उसके दोनों पार्श्वों में दो जीवित-आकार के हाथियों की पत्थर की प्रतिमायें बनी हुई थीं। इस दरवाज़े का नाम भी स्वयं उन गज-प्रतिमाओं से ही व्युत्पन्न था क्योंकि संस्कृत भाषा में गज को हस्ति कहते हैं और हिन्दी में हाथी कहते हैं। कदाचित् उन हाथियों की उठी हुई सूँडें मिलकर उस प्रवेशद्वार के ऊपर एक अतिभव्य तोरण, मेहराब बनाती थीं। हिन्दू-तोरणद्वारों पर आच्छादित,मुड़ी हुई सूँडों सहित इस प्रकार के हाथियों को अभी भी कोटा नगर के राजमहल के प्रवेशद्वार पर देखा जा सकता है। फतहपुर सीकरी में, जिसे एक प्राचीन हिन्दू राजधानी सिद्ध किया जा चुका है, दो मस्तक-विहीन गज-प्रतिमायें झील की ओर बने हुए द्वार पर आच्छादित अभी भी देखी जा सकती हैं। उनकी सूँडें द्वार पर अति भव्य रूप में शोभित होती थीं। उन प्रस्तर-हाथियों के शिरोच्छेदन स्वयं ही इस बात के प्रमाण हैं कि मूर्तिभंजक मुस्लिम आक्रमणकारियों को उस प्राचीन नगर के मूर्तिभंजक मुस्लिम आक्रमणकारियों को उस प्राचीन नगर के मूर्तिपूजक हिन्दू

संस्थापकों द्वारा निर्मित प्रतिमाओं की उपस्थिति सहन न हुई, इसीलिए वे तोड़-फोड़ की गईं। इस प्रकार, यह मात्र तोड़-फोड़ ही हिन्दू-भवनों को हथिया लिये जाने और मुस्लिमों द्वारा जीत लिये जाने की असंदिग्ध साक्षी प्रस्तुत करती है।

गज प्रतिमाएँ सदैव हिन्दू राजवंशी शक्ति, सम्पन्नता एवं यश से सम्बन्धित रही हैं। हिन्दू परम्परा में, हाथी को देवताओं के राजा इन्द्रदेव का वाहन माना जाता है। इस प्रकार, यह लौकिक हिन्दू राजशक्ति का उपयुक्त प्रतीक भी है। अतः, हिन्दू-मन्दिरों, राजभवनों और किलों में अथवा उनकी प्रसीमा में गज-प्रतिमायें बनवाना एक सामान्य व्यवहार था। हिन्दुओं की इस नित्य की प्रथा के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। भरतपुर के हिन्दू रजवाड़े से सम्बन्धित किले के प्रवेशद्वार की दीवारों पर दो जीविताकार हाथियों के आकार उत्कीर्ण देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार की गज-प्रतिमायें ग्वालियर के किले के ग्वालियर दरवाज़े पर भी देखी जा सकती हैं। 'सहेलियों-की-बाड़ी' के नाम के प्रसिद्ध उदयपुर के हिन्दू राजमहल में अनेक गज-प्रतिमायें निर्मित दिखाई देती हैं। आगरे के लालकिले में भी (जिसे एक हिन्दू किला सिद्ध किया जा चुका है)[1] गज-प्रतिमाएँ थीं जैसा कि अनेक तिथिवृत्तकारों ने उल्लेख किया है। किले के भीतर पाद-पीठ में वे दरांचे अब भी देखे जा सकते हैं जिनमें हाथियों के पैर रखे हुए थे। अब वे प्रतिमायें वहाँ नहीं हैं, मात्र इसी कारण से कि किले के मूर्तिभंजक मुस्लिम आधिपत्यकर्ता लोग किले के प्राचीन हिन्दू-स्वामी निर्माताओं द्वारा वहाँ स्थापित की गई उन प्रतिमाओं को फूटी आँखों सहन नहीं कर सके।

गज-प्रतिमाओं सहित सारे भारत के ऐसे हिन्दू भवनों, राजप्रासादों और किलों के ऐसे अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। यदि फिर हम यह पाते हैं कि किले के भीतर राजा के अपने निजी कक्ष के द्वारों के कुंडे गज-मस्तकयुक्त हैं, और इस किले के मुख्य द्वार के दोनों पार्श्वों में जीवित-आकार गजों की प्रतिमायें थीं, तो यह तथ्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है

१. "आगरे का लालकिला हिन्दू भवन है"—शीर्षक पुस्तक के अनुसार।

कि किले का मूलतः निर्माण दिल्ली के प्राचीन हिन्दू शासकों के निर्माणादेश के अनुसार ही किया गया था। इतना ही नहीं, स्वयं उस स्थान से उन गज-प्रतिमाओं की अनुपस्थिति इस बात का और भी प्रमाण है कि किले के परवर्ती मुस्लिम ग्रहीताओं ने उन हाथियों को देखना सहन न कर पाने के कारण उन्हें विनष्ट कर दिया था।

अतः, जिस भी किसी भवन में गज-प्रतिमा दिखाई पड़ती हो, वह भवन हिन्दू-मूलक है। यदि भारतीय इतिहास के विद्यार्थी तथा विद्वान् इस सामान्य सिद्धान्त से भी भिज्ञ होते तो उन्होंने दिल्ली के लालकिले, आगरे के किले और फ़तहपुर सीकरी को तुरन्त हिन्दूमूलक होने की पहचान कर ली होती।

इसके स्थान पर, ऐसे साधारण सूत्रों से अनभिज्ञ होने के कारण परम्परागत मुस्लिम धोखेबाजों से दिग्भ्रमित हो जाने पर, पश्चिमी विद्वान् सभी प्रकार की काल्पनिक और अनुचित, अनभीष्ट धारणाओं से ग्रस्त होकर गलत तर्कों को जन्म दे बैठे और बेहूदा निष्कर्षों पर पहुँच गये। ऐतिहासिक साक्ष्य के प्रति उनके भ्रष्ट तर्क और पूर्ण अन्धविश्वास का एक ज्वलन्त दृष्टान्त, उस पद्धति से मिल जाता है जिसके अनुसार उन्होंने पहले यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का यत्न किया है कि दिल्ली के लाल-किले में हाथीपोल दरवाज़े के बाहर गज-प्रतिमाएँ क्यों थीं, और कि अब वे वहाँ किन कारणों से नहीं हैं। ऐसा करने में वे कुछ ऐसी असामंजस्यताओं के सम्मुख सहज रूप में लड़खड़ा गए कि उनको पूरी तरह हतप्रभ हो जाने पर, उन्होंने उन विसंगतियों को अस्पष्ट ही छोड़ दिया।

हम सर्वप्रथम समस्या का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करेंगे, फिर समस्या के तथ्यों के सम्बन्ध में साक्ष्य उद्धृत करेंगे और तब इस बात का विवेचन करेंगे कि किस प्रकार अभी तक के सभी विद्वानों ने सम्पूर्ण विषय का गड़बड़-घोटाला कर दिया है।

मध्यकालीन मुस्लिम दरबारों में पधारे कुछ पश्चिमी प्रवासियों ने अपनी टिप्पणियों में लिखा है कि उन्होंने लालकिले के हाथीपोल के दोनों पार्श्वों में बने हुए दो हाथियों की प्रतिमाएँ देखी थीं।

पश्चिमी विद्वानों और उनके अंधे प्राच्य-अनुयायियों ने किसी प्रकार

के साक्ष्य को देखे-पूछे बिना ही यह धारणा बना लेने के कारण कि दिल्ली में लालकिले का निर्माण पाँचवीं पीढ़ी के मुग़ल शासक शाहजहाँ ने करवाया था, सहज रूप में यह उपदेश भी दे दिया कि उस हाथीपोल के दरवाज़े पर गज-प्रतिमाएँ बनवाने वाला व्यक्ति भी शाहजहाँ ही रहा होगा।

उस धारणा को संजोने में, विद्वान् लोग घोर व्यावसायिक अनुपयुक्तता के दोषी रहे हैं। सर्वप्रथम वे लोग इस तथ्य को भूल गए हैं अथवा उपेक्षा कर गए हैं कि मध्यकालीन फ्रांसीसी प्रवासी बर्नियर ने उन प्रतिमाओं का निर्माण-श्रेय अकबर को दिया है, जो शाहजहाँ से दो पीढ़ियों पूर्व शासनासीन रहा था। दूसरी बात यह है कि विद्वानों ने इस तथ्य की भी उपेक्षा कर दी है कि सलीमगढ़ नाम से पुकारे जाने वाले इस किले के एक भाग का नाम शाहजहाँ के अपने पिता सलीम उपनाम बादशाह जहाँगीर के नाम पर ही है। उसका अर्थ यह है कि किला और प्रतिमाएँ शाहजहाँ के पिता और प्रपिता, दोनों के ही काल में भी विद्यमान थे। तीसरी बात यह है कि इतिहास लेखकों ने इस तथ्य को भी अपनी दृष्टि से ओझल कर दिया है कि शाहजहाँ एक धर्मान्ध, मूर्तिभंजक था जो हिन्दू और ईसाई मूर्तियों को ध्वस्त कर देता था, हिन्दुओं और ईसाइयों को क्रूर यातनाएँ देकर मार दिया करता था। यदि वे मुस्लिम धर्म अंगीकार करने से इन्कार कर देते थे, तब मन्दिरों व गिरजाघरों को नष्ट कर दिया करता था। औरंगज़ेब ने प्रत्येक गैर-मुस्लिम बात के लिए धर्मान्ध घृणा-भाव अपने पिता शाहजहाँ से ही विरासत में पाया था। औरंगज़ेब की इस्लामी असहनशीलता, हठवादिता, और धर्मान्धता कोई असाधारण विकास नहीं थे। ये सारे पारंपरिक लक्षण कुख्यात हत्यारे पूर्वज तैमूरलंग और मुग़ल-वंश के संस्थापक स्वयं बाबर से लेकर—पिता से पुत्र को—वंशानुवंश प्राप्त होते रहे हैं।

भारत में लगभग दो शताब्दियों तक राज्य-शासन करने के बावजूद ब्रिटिश लोग हिन्दू-मुस्लिम इतिहास में अन्तर्जटिल विभिन्न उलझनों को समझने में पूर्णत: विफल रहे हैं—हमें इस बात का अत्यन्त सजीव, सुस्पष्ट उदाहरण उनके उस प्रयत्न से प्राप्त हुआ है जिसके अनुसार उन्होंने दिल्ली

के लालकिले में हाथियों की समस्या सुलझानी चाही है।

चूंकि उनकी कल्पना थी कि दिल्ली का किला शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था जबकि बर्नियर ने लिखा है कि किले में गज-प्रतिमाएँ थीं जिनका निर्माण अकबर ने करवाया था, इसलिए पश्चिमी विद्वानों ने स्पष्टीकरण देना प्रारम्भ कर दिया कि शाहजहाँ ने इन प्रतिमाओं को आगरे के किले से उखड़वाकर ही दिल्ली के लालकिले के हाथीपोल के दरवाजे पर लगवा दिया होगा।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण की बेहूदगी स्पष्ट करने के लिए थोड़ा-सा प्रकाश डालना ही पर्याप्त होगा। दिल्ली में और उसके आसपास भी पत्थर की कोई कमी नही है। आगरे के किले से हाथियों की भीमकाय प्रतिमाएँ उखड़वाना, उनको दिल्ली तक अतिकष्ट-साध्य परिस्थितियों में ढोकर लाना और फिर दिल्ली के किले में लगवाने की अपेक्षा स्वयं दिल्ली में इनका निर्माणादि करा लेना सस्ता होता। लगभग १४० मील दूर तक उनकी ढुलाई करवाने का खर्चा ही बहुत अधिक हो जाता। इसके अतिरिक्त, उनको आगरा के मूल पाद-स्थान से हटाने, और दिल्ली तक ढोकर लाने एवं दिल्ली के किले में हाथीपोल के बाहर अन्य पाद स्थानों पर रखने में तो उन प्रतिमाओं के खण्डित हो जाने या इधर-उधर चटक जाने की भी आशंका थी। एक अन्य विचारणीय बात यह है कि चूंकि शाहजहाँ आगरा और दिल्ली दोनों ही स्थानों पर रहा करता था, इसलिए इसमें कोई तुक नहीं थी कि आगरे के किले से हाथियों को हटाकर वहाँ की शोभा का अपहरण करके दिल्ली के किले में उनको लगाकर यहाँ की शोभा बढ़ाई जाय। तथ्यतः, हम जैसा पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं, आगरा तो शाहजहाँ की राजधानी उसके शासनकाल के अन्त तक बनी रही। अतः, उन्हीं हाथियों को दिल्ली में लगाने के लिए वह आगरे के किले को कभी भी विद्रूप न करता। साथ ही, इस बात पर जोर देना, कि शाहजहाँ ने उन हाथियों को आगरा से दिल्ली लाना अत्यन्त आवश्यक समझा था, तो यह मान लेना है कि शाहजहाँ कोई समृद्ध, सम्पन्न बादशाह न होकर ऐसा निर्धन व्यक्ति था जो छोटी-मोटी हेरा-फेरी भी करता रहता था। यदि वह दिल्ली के किले के लिए दो नई गज-प्रतिमाएँ बनवाने का आदेश

भी नहीं दे सकता था, उनका निर्माण नहीं करवा सकता था, तो यह कैसे विश्वास किया जाता है कि शाहजहाँ ने सम्पूर्ण किला, तथाकथित जामा-मस्जिद और स्वयं पुरानी दिल्ली की सम्पूर्ण नगरी बनवाई-बसाई थी ?

एक अतिरिक्त प्रश्न यह होगा कि यदि शाहजहाँ ने दिल्ली के लाल-किले में दो गज-प्रतिमाएँ स्थापित करवाई थीं, तो उसके बेटे औरंगजेब अथवा अन्य परवर्ती मुगल उनको क्यों हटवाते ? क्या उनको कुछ महत्त्वहीन प्रतिमाओं के साथ थोड़ी-बहुत, निरुपयोगी हेर-फेर करने-कराने के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य शेष नहीं था ? और अन्तिम बात यह है कि क्या शाहजहाँ के और औरंगजेब के इस्लामी लालन-पालन में इतना अधिक अन्तर था कि शाहजहाँ जिन गज-प्रतिमाओं को स्थापित करना चाहे, स्थापित कर दे, उसका बेटा औरंगजेब उन्हीं प्रतिमाओं को हटा दे? यदि सचमुच उनके धार्मिक विचारों, दृष्टिकोणों में कुछ अन्तर होना ही था, तो यह तो उल्टा होना चाहिए था अर्थात् परवर्ती पीढ़ी के औरंगजेब को अपने पिता शाहजहाँ से अधिक उदार होना चाहिए था। प्रसंगवश, यह तथ्य इस बात का एक स्पष्ट संकेतक होना चाहिए कि आंग्ल-मुस्लिम विदेशियों द्वारा तोड़-मरोड़ और हेर-फेर के कारण भारतीय इतिहास की धारणाएँ किस सीमा तक उल्टी-पुल्टी हो गई हैं। यह कहना बेहूदगी है कि औरंगज़ेब के पूर्ववर्ती अकबर और शाहजहाँ औरंगज़ेब से अधिक उदार-हृदय हुए थे। यह तथ्य मानव-अनुभव के बिल्कुल विपरीत है क्योंकि हम जानते हैं कि धार्मिक विश्वासों में, आस्थाओं में परवर्ती-पीढ़ियाँ पूर्ववर्ती पीढ़ियों से अधिक उदार होती हैं।

शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम वर्षों और औरंगजेबी शासन के प्रारम्भिक वर्षों में भारत-प्रवास पर आए बर्नियर ने यह ग़लत धारणा बना ली थी कि दिल्ली और आगरा के किलों में गजारोही दो पराजित हिन्दू शत्रुओं, जयमल और पत्ता की मूर्तियाँ अकबर बादशाह ने बनवाई थीं। मध्यकालीन भारत में एक विदेशी प्रवासी के नाते बर्नियर का सम्पर्क केवल विदेशी, इस्लामी दरबार के कट्टरपंथी लोगों मात्र से ही था। दिल्ली और आगरा में विजित हिन्दू किलों से ही मुगल बादशाह का

राज्य-शासन चल रहा था—यह तथ्य स्वीकार करने में संकोच के कारण उग्रवादी इस्लामी दरबार के चापलूसों ने बर्नियर जैसे विदेशी प्रवासियों को यह बताकर बहका दिया था कि ये तो मुगल लोग ही थे जिन्होंने भारत के सभी नगरों की स्थापना की थी और सभी भवनों का निर्माण किया था। प्रवंच्य, असंशयात्मा पश्चिमी लोगों ने, बिना किसी जांच-पड़ताल के ही, जो कुछ उनको विदेशी मुस्लिम कट्टरपंथियों द्वारा सुनाई पड़ा, उसी को ज्यों-का त्यों अपनी दैनंदिनी में अंकित कर लिया। भारत में ब्रिटिश शासन की नींव पक्की तरह से जम जाने पर भी ब्रिटिश लोग उस घोर क्षति के प्रति अनभिज्ञ रहे जो मुस्लिम मिथ्यावाद ने भारतीय इतिहास को पहुंचाई थी। मध्यकालीन मुस्लिम-तिथिवृत्तों के अपने परिश्रमी और अध्यवसायी अध्ययन के उपरान्त भी पश्चिमी विद्वान् भारतीय इतिहास को संभ्रमित विचारों की ऐसी विचित्र खिचड़ी बना गए हैं जिसमें मुस्लिम असत्यताओं का ऐसा घाल-मेल समाविष्ट है जिसे पश्चिमी विद्वान् भली-भांति समझ नहीं सके।

एक विशिष्ट उदाहरण गोर्डन हर्न का है जो गज-प्रतिमाओं के घोटाले के सम्बन्ध में अपने पूर्व के विभिन्न पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत भयंकर भूलोंवाले विचारों का एक सारांश प्रस्तुत करते हुए उनका हल ढूंढने का यत्न करता है, किन्तु फिर भी स्वयं सही निष्कर्ष तक पहुंचने में विफल हो जाता है।

हर्न लिखता है: "नक्क़ारख़ाना हाथी पोल (हथिया) के नाम से भी पुकारा जाता था। यह एक वह बात है जिसको मैं राजमहल के द्वार पर हाथियों के उस विवरण से मिल नहीं पाया जिसे बर्नियर ने प्रस्तुत किया है, और जिसके बारे में आगे भी बहुत बार विचार-मंथन हो चुका है। जनरल कनिंघम के अनुसार, ये गज-प्रतिमाएँ किले के दिल्ली-दरवाज़े के बाहर स्थापित थीं, और उसने यह बात बर्नियर के कथन पर विश्वास करके ही कही है। श्री कीन का, जिसने इस विषय का अत्यन्त गहनता से अध्ययन किया है, मत यह है कि ये गज-प्रतिमाएँ लाहौरी-दरवाज़े पर थीं न की दिल्ली दरवाज़े पर—जैसाकि बर्नियर के वर्णन से ज्ञात होता है। जनरल कनिंघम और श्री कीन, दोनों ही किसी भ्रान्त-धारणा के

अन्तर्गत कार्यरत प्रतीत होते हैं। श्री कीन के अपने कथन के समर्थन में कोई प्राधिकारी नहीं है, और बर्नियर का विवरण जनरल कनिंघम के विवरण से नहीं मेल खा पाता। बर्नियर लिखता है : "राजमहल के द्वार पर पत्थर के दो विशाल हाथियों की उपस्थिति के अतिरिक्त अन्य कुछ उल्लेखनीय वस्तु मुझे दिखाई नहीं पड़ी; ये प्रतिमाएँ एक दरवाज़े के दोनों पार्श्वों में हैं। एक हाथी पर चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध राजा जमेल की मूर्ति है, और दूसरे पर उसके भाई पत्ता की मूर्ति है। ये दो विशाल हाथी, जिनपर दो अटल व्यक्ति बैठे हैं, किले में प्रथम बार प्रवेश करने पर विशालता का प्रभाव और भयमिश्रित सम्मान का हृदय में संचार कर देते हैं।" बर्नियर दरवाज़े का नामोल्लेख नहीं करता, और राजमहल का प्रवेशद्वार उल्लेख करता है—न कि किले का। उसका दिया हुआ वर्णन नक्कारखाना अथवा हाथीपोल पर सटीक, सही बैठता है, न कि किले के दिल्ली या लाहौरी दरवाज़े पर। साथ ही, बर्नियर द्वारा दोनों मुख्य प्रवेशद्वारों का वर्णन इतने सदोष रूप में किया गया है कि उसमें दोनों के लक्षण विद्यमान हो गए हैं और इसलिए उनमें से एक का भी वर्णन सही नहीं है। बस्ती के नाम से समर्थित, अबाधित परम्परा के अनुसार गज-प्रतिमाएँ उस दरवाज़े के सामने थीं जो हाथीपोल कहलाता था क्योंकि वहाँ पर हाथी थे। उनके ही नाम पर इस द्वार का नाम हाथीपोल पड़ा था। फ्रैंकलिन को, जिसने सन् १७९३ ई० में दिल्ली यात्रा की थी और प्रतिमाओं के सम्बन्ध में पूछ-ताछ की थी, बताया गया था कि 'उनको औरंगज़ेब के आदेश पर हटा दिया गया था क्योंकि उससे मूर्ति-पूजा की गंध आती थी, और उसने उन दोनों हाथियोंवाले स्थान को लाल पत्थर की जाली में परिवेष्टित कर दिया है जिससे प्रवेशद्वार विद्रूप हो गया है।' मुझे किसी विश्वस्त सूत्र से यह जानकारी नहीं मिल पाई है, और न ही मैं यह विश्वास करता हूँ कि ये प्रतिमाएँ किले के लाहौर-दरवाजे अथवा दिल्ली-दरवाज़े के बाहरी भाग के भीतर कहीं खड़ी थीं। देशी वर्णनों के अनुसार, औरंगज़ेब ने न केवल उन हाथियों को हटवा दिया था अपितु उनको तुड़वा भी दिया था, और उस हालत का अनुमान करते हुए कि जिसमें एक हाथी वर्षों के मलबे के नीचे दबा

हुआ मिला था, ये वर्णन मुझे विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। मुझे बर्नियर के इस कथन के प्रति कोई अविश्वास, शंका नहीं है कि ये गज-प्रतिमाएँ अकबर द्वारा बनाई गई थीं, और यह भी असंभव नहीं था कि शाहजहाँ उनको आगरा से ले आया था, जहाँ वे किले के नदी-द्वार के सामने मूलत: खड़े थे। मानव-आकृतियाँ जयमल और पत्ता की थीं, जो अकबर के विरुद्ध लड़नेवाले चित्तौड़ के स्वामी दो राजपूत योद्धा थे। हाथी और उनके सवार अर्ध-पर्वताकार थे; प्रत्येक हाथी पर दो सवार थे। जिनमें प्रथम व्यक्ति कदाचित् महावत था और दूसरा राजपूत-नरेश ; किन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि क्या इसमें दो से अधिक व्यक्ति थे ; दिल्ली-संग्रहालय में रखे हुए अवशेषों से हम केवल दो व्यक्तियों के बारे में तो आश्वस्त हैं। एक हाथी के ध्वस्त टुकड़े किले में ही मिल गए थे, और श्री कैम्पबैल द्वारा दिल्ली के क्वीन्स बाग में, अत्यन्त सफलतापूर्वक जोड़ देने के बाद रख दिये गए थे।[1]"

उपर्युक्त अवतरण से देखा जा सकता है कि किस प्रकार वहाँ उल्लेख किये गए प्रत्येक पश्चिमी विद्वान् ने कितनी भारी ग़लती की है। बर्नियर ने जयमल को जमेल कहकर ग़लती की है। मध्यकालीन भारत आने वाले बर्नियर जैसे प्रवासियों ने मात्र असत्यापित बातें ही लिखी थीं—यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि न तो जयमल ही चित्तौड़ का राजा था, और न ही पत्ता उसका भाई। चूंकि वे अकबर के शत्रु थे इसलिए बर्नियर का यह विश्वास करना बेहूदी थी कि अकबर ने उनकी पूर्ण राजचिह्नों सहित मूर्तियाँ बनाई थीं। अकबर एक धर्मान्ध मुस्लिम था जो मूर्तियाँ नष्ट करता था। ऐसा अकबर किस प्रकार गज-प्रतिमाएँ बनाता और उनपर किस प्रकार अपने ही कट्टर शत्रुओं को शान से बैठा दिखाता? साथ ही, अकबर ने अपने पचास-वर्षीय शासन में न जाने कितने हिन्दू और मुस्लिम शासन-प्रधानों को गाजर-मूली की तरह काट गिराया था। उसकी अभिरुचि जयमल और पत्ता तक ही विशेष रूप में क्यों हो, और वह उनको आरोही प्रतिमाओं में सुशोभित क्यों निर्मित कराए? इस

१. "दिल्ली की सात नगरियाँ', पृष्ठ २२१-२२२

प्रकार के विचारों से, इतिहास के विद्यार्थियों को, मध्यकालीन भारत के यूरोपीय प्रवासियों द्वारा लिखी गई टिप्पणियों के बारे में अति सावधान रहना चाहिए। उनकी टिप्पणियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेने और उनमें अनन्य आस्था रखने से भयंकर और भ्रामक निष्कर्ष निकलते हैं। ये सभी पश्चिमी व्यक्ति घोर अनभिज्ञ-जन सिद्ध हुए हैं।

दूसरे, यह स्वतः स्पष्ट है कि पश्चिमी विद्वान् सब-के-सब भ्रमित हैं और उन्हें इस बात का भी पूर्ण निश्चय नहीं है कि वह दरवाज़ा कौन-सा है जिसके सामने बर्नियर ने उन प्रतिमाओं को देखा था। भयंकर भूलोंवाले पश्चिमी विद्वानों ने, अनावश्यक रूप में यह कल्पना करके इस विषय को और भी उलझा दिया है कि अकबर ने इन प्रतिमाओं को आगरा में बनवाया था तथा शाहजहाँ ने उन्हीं प्रतिमाओं को वहाँ से उखाड़कर, दिल्ली लाकर, लालकिले में स्थापित करवा लिया था। अतः भारतीय इतिहास के छात्रों को पश्चिमी विद्वानों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में, इसी बात से, विश्वास करने से दूर रहना चाहिए।

प्रसंगवश, यही तथ्य, कि एक हाथी के टुकड़े लालकिले के मैदान में मलबे के नीचे दबे हुए पाये गये थे, सिद्ध करता है कि मुगल लोग अति सुस्त, गन्दे और कंजूस थे। उन्होंने किले की परिसीमा को मलबे से ढका रहने दिया—बजाय इसके कि मलबे को हटवा देते। इससे प्रदर्शित होता है कि काल्पनिक मुगल ऐश्वर्य और सम्पन्नता के बारे में अखिल विश्व को अपने विचारों में कितना आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। अन्य हाथी के टुकड़ों का न पाना भी पुरातत्त्व-विभाग द्वारा दिल्ली के लालकिले में भीतरी भागों की खुदाई के महत्त्व पर स्पष्ट प्रकाश डालता है।

हर्न ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २२२ पर एक पद-टीप में गज-प्रतिमाओं के मूल के सम्बन्ध में व्याप्त सामान्य विभ्रम का कुछ और विवरण प्रस्तुत किया है। इन विवरणों से मात्र इतना तो ज्ञात हो ही जाता है कि पश्चिमी इतिहासकारों के सम्मुख न तो समस्त साक्ष्य ही था और न ही इस विषय को पूरी तरह परखने की प्रतिभा थी। फिर भी, उन्होंने अत्यन्त ऊलजलूल कल्पनाएँ कर ली हैं। हर्न का पर्यवेक्षण है: "जिस गज-आधार पर हाथी की प्रतिमा खड़ी है, उसपर लगा हुआ निम्नलिखित शिलालेख

आंशिक रूप में ही सत्य है : 'यह हाथी जो पर्याप्त, विचारणीय तथापि अज्ञात प्राचीनता का कलात्मक रूप है, ग्वालियर से लाया गया था और सन् १६४५ ई० में बादशाह शाहजहाँ द्वारा अपने नये राजमहल के दक्षिणी द्वार के बाहर स्थापित करवाया गया था। वहाँ हटाए जाने और बादशाह औरंगज़ेब द्वारा हज़ार टुकड़ों में तोड़ दिये जाने के बाद यह भूला हुआ और जमीन में डेढ़ शताब्दी से अधिक समय तक दबा रहने के बाद पुन: मिल जाने पर, यह यहाँ सन् १८६६ ई० में स्थापित किया गया था।' "

उपर्युक्त अवतरण में हमें एक अन्य अटकलबाज़ी बताई जाती है की वह गज-मूर्ति आगरा-स्थित किले से नहीं लाई गई थी, अपितु ग्वालियर के किले से लाई गई थी। यह सब इस बात का द्योतक है कि सभी इतिहासकार बिना किसी प्रकार के साक्ष्य के ही अपने-अपने अंदाज़े लगाते रहे हैं। उनके अपने अनुमानों की पुष्टि के हेतु भी कोई तर्क नहीं है। किन्तु किसी भी व्यक्ति ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात पर विचार किया प्रतीत नहीं हुआ, अर्थात् दिल्ली में एक पूर्णतया नया किला बनाने और दिल्ली का एक पूरा नया नगर बसाने की घोषणा करने वाला भारत का बादशाह शाहजहाँ इतना गिरा हुआ, पतित और भूल-चूक करने वाला नहीं होगा जो मात्र यह चाहे कि किसी अन्य किले की पुरानी दो गज-प्रतिमाएँ चोरी-चुपके ले आई जायँ। साथ ही, एक कट्टर मुस्लिम होने के कारण वह कभी यह सोचता ही नहीं कि किसी भी प्रकार की मूर्तियाँ स्थापित की जायँ। अन्य विचारणीय बात यह भी है कि किसी एक किले का साज-श्रृंगार करने के लिए वह दूसरे किले को शोभा-विहीन नहीं करेगा। एक अन्य तर्क यह भी होगा कि आर्थिक-दृष्टि से यह कार्य मूर्खता-पूर्ण होता कि एक किले के हाथियों को वहाँ से उखड़वाया जाता, सैंकड़ों मील तक उनको ढोकर लाया जाता और दूसरे स्थान पर पुन:स्थापित किया जाता — इसमें कितना कष्ट और जोखिम था, इसकी भी कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार की परियोजना को किसी भी युग में मूर्खता-पूर्ण ही कहा जाएगा।

विंसेन्ट स्मिथ नामक एक अन्य यूरोपीय विद्वान् इतिहासकार ने भी

इन गज-प्रतिमाओं के मूल-सम्बन्धी रहस्य को खोज निकालने का यत्न किया है, और उसमें विफल होने पर स्पष्ट रूप में अपनी विफलता स्वीकार कर ली है। स्मिथ ने लिखा है "दिल्ली और आगरा की मार्ग-दर्शिका पुस्तकों तथा प्रचलित इतिहास-ग्रन्थों में दिल्ली के हाथियों के गलत वर्णन दिये हुए हैं। उनकी सच्ची कहानी, जहाँ तक सन् १९११ में मालूम हुई है, एच० एफ० ए०, पृष्ठ ४२६ पर दी हुई है। किन्तु उस समय मुझे प्रेजिडेण्ट वान डेन ब्रोके के अवतरण की जानकारी नहीं थी जो इस प्रकार है: 'वह एक महान् विजय की थी जिसकी स्मृतिस्वरूप बादशाह ने दो हाथियों के निर्माण की व्यवस्था की थी, जिनमें से एक पर जयमल बैठाया गया था और दूसरे पर उसकी अपनी सेना के अनेक नायकों में से एक नायक को बैठाया गया था। उन दोनों हाथियों को आगरे के किले के दरवाज़े के दोनों ओर स्थापित किया गया था।' मूल पुस्तक में सन् १६२८ ई० तक का उल्लेख है। इसका अर्थ है कि यह सन् १६२९ ई० में ही लिखी गई थी, उससे पूर्व नहीं। यहाँ यह तो स्पष्ट हो गया होगा कि लेखक ने जयमल और पत्ता के नामों को एक कर दिया और उन्हें नाम-भ्रष्ट कर दिया है। यद्यपि उसका विश्वास था कि हाथियों और उनके सवारों का प्रस्तर-निर्माण इकट्ठा, साथ-साथ ही किया गया था, तथापि विवरण के बारे में उसे सूचना देनेवालों को भ्रम हो गया होगा। तथ्यों से स्पष्ट है कि हाथियों का निर्माण तो प्राचीन हिन्दू कलाकृति थी, जबकि उनके सवारों को जो भिन्न सामग्री और शैली में थे, अकबर के आदेश पर उन हाथियों पर बिठाया गया था। किन्तु बर्नियर द्वारा देखे गए और आगरा में अकबर द्वारा स्थापित हाथियों के जोड़े के दिल्ली के हाथी होने के बारे में मेरी मान्यता में एक समस्या और उत्पन्न हो गई है कि आगरा में अभी हाल ही में मिले गज-आधार दिल्ली के हाथियों के अवशेषों में समरूप, ठीक-ठीक नहीं बैठते। पादरी एच० होस्टन, एस० जे० ने इस विषय पर आगे भी खोजबीन की है।"[1]

उपर्युक्त अवतरण हमें इस बात का अच्छा, विविध दृष्टान्त प्रस्तुत

१. विन्सेंट कृत "अकबर: महान् मुगल"—पृ० ६८-६९ पर पद-टीप

करता है कि किस प्रकार भयंकर भूलोंवाले तर्क-जाल की सर्वाधिक जटिल गाँठों से स्वयं को बाँध रखनेवाले, और भारतीय इतिहास से निबटने में उनकी अभिरुचि के पर्याप्त अभाववाले पश्चिमी लेखकों ने अपने बालसुलभ अज्ञान और निरंकुश उद्दण्डतावाद में इस इतिहास को मरणासन्न और हक्का-बक्का छोड़ दिया है।

वान डेन ओके तो नाम की वर्तनी तक ठीक नहीं करता। वह जयमल और पत्ता नाम के दो हिन्दू व्यक्तियों के नामों को मिलाकर एक 'जयमल पठान' नाम बना देता है जो द्वि-जातीय मिश्रित नाम है, जिसमें अन्त में मुस्लिम नाम की छाया स्पष्ट है। अन्य पश्चिमी विद्वानों ने ऐसे बालोचित घालमेल को भी विश्वसनीय और आगे कार्यवाही के लिए आधार-सामग्री माना है। विन्सेंट स्मिथ को सत्य का तनिक आभास होता है जब वह यह लिखता है कि दिल्ली-स्थित लालकिले के हाथी तो प्राचीन हिन्दू हाथी हैं। परन्तु, उस क्षणिक अस्थिर टिप्पणी के बाद वह पुन: उसी भावशून्यता और मूर्खता में फँस जाता है जो सभी पश्चिमी विद्वानों की भारतीय इतिहास में अन्वेषण-पद्धति की विशिष्टता बन चुकी है। वह मूर्खता में ही कल्पना कर लेता है कि यद्यपि वे हाथी तो प्राचीन हिन्दू कला-कृतियाँ थीं, तथापि उनपर विराजमान आरोही अवश्य ही अकबर द्वारा निर्मित कराये गए थे। किन्तु हम स्मिथ की बौद्धिक ईमानदारी की सराहना अवश्य करते हैं कि उसने निश्शंक और खेदपूर्वक स्वीकार कर लिया है कि आगरा में मिले गजारोही दिल्ली के हाथियों में समरूप, ठीक-ठीक नहीं बैठ पाते। इस प्रकार, वह स्वयं अपनी पराजय स्वीकार कर लेता है और अपने अन्वेषण-विषय का कोई ओर-छोर नहीं प्राप्त कर पाता है।

स्मिथ ने इस समस्या को चकाचौंध करनेवाला, सिर चकरानेवाला न पाया होता यदि उसने दिल्ली के हाथियों को प्राचीन हिन्दूमूलक सिद्ध करने वाली अपनी उपलब्धि को उसके तर्कयुक्त निष्कर्ष तक पहुंचने दिया होता, उसका अनुसरण किया होता। स्मिथ को यह अनुभव करना चाहिए था कि विद्रोहों को दबाने में और आक्रामक चढ़ाइयाँ करने में ही सतत व्यस्त रहनेवाले अकबर ने अपने-आपको ऐसे छोटे-मोटे अनुपयोगी कार्यों में

नहीं लगाया होगा कि प्राचीन हिन्दू गज-प्रतिमाओं पर पत्थर के मानव-रूप बिठाने का ही आदेश देता रहे। दूसरे, स्मिथ को यह भी अनुभव कर लेना चाहिए था कि धर्मान्ध मूर्तिभंजक के रूप में अकबर कभी भी किसी प्रतिमा-निर्माण का आदेश न देता। तीसरी बात यह है कि अकबर ने राणा प्रताप और रानी दुर्गावती-जैसे असंख्य हिन्दू शासकवर्ग के विरुद्ध अनेकों युद्ध लड़े थे। तब अकबर केवल चित्तौड़ की रक्षक-सेना के दो हिन्दू नायकों की ही प्रतिमाएँ क्यों बनवाता ? चौथी बात यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपने किसी शत्रु का वृत्त बनवाता ही है, तो वह उसका पूर्ण तिरस्कार और अपमान करने के लिए ही किया जाता है, न कि उसका सम्मान करने हेतु, अथवा उसके प्रति आदर-भाव प्रकट करने के लिए। इस प्रकार के समझदारी-भरे, सहज और युक्त-युक्त विचार भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान में घालमोल करने वाले पश्चिमी विद्वानों की भारी भूलोंवाली तर्क-शक्ति में बिलकुल भी नहीं आए। इस प्रकार, प्रतीत होता है कि पश्चिमी विद्वानों में, भारत के इतिहास में किसी भी प्रकार का अनुसंधान करने की रुचि और योग्यता का सहज, जन्मजात अभाव है।

अज्ञानतावश जयमल और पत्ता बताए जानेवाले गजारोहियों की प्रतिमाएँ लालकिले के अन्दर बने संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। अन्य दो मनुष्यों की मूर्तियों में खण्डित रुण्ड महावतों के विश्वास किये जाते हैं।

दिल्ली के लालकिले को देखनेवाले अधिकांश दर्शकों को आज भी मालूम नहीं है कि लालकिले के दिल्ली-दरवाज़े के दोनों पार्श्वों में अभी भी दो भव्य जीविताकार, काले हाथितों की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। पश्चिमी विद्वान् द्वारा लिखित एक मार्गदर्शिका में हमें सूचित किया गया है कि उन प्रतिमाओं का निर्माण लॉर्ड कर्ज़न द्वारा उन हाथियों के स्थान पर करवाया गया था जिनको औरंगज़ेब ने तुड़वा दिया था।[1]

एक सरकारी पुरातत्त्वीय प्रकाशन में उल्लेख है: "रूपरेखांकन में दिल्ली-दरवाज़ा लाहौर-दरवाज़े के समान है, किन्तु प्रवेशद्वार की मेहराब के दोनों ओर दो पत्थर के हाथियों की उपस्थिति से यह और भी

---

१. "दिल्ली—इसकी कहानी और भवन"—लेखक एच० शार्प, पृष्ठ ६३

आकर्षक, रोचक बन गया है। मूल हाथियों और उनके सवारों के इतिहास के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ प्रस्तुत की जाती है, और जिन धारणाओं में उनको ग्वालियर और आगरा से लाया गया बताया जाता है वे तो निराधार सिद्ध हो चुकी हैं। इनमें से एक धारणा यह है कि उनके सवार तो सुप्रसिद्ध राजपूती योद्धा जयमल और पत्ता थे, किन्तु अधिक संभव यह प्रतीत होता है कि वे आकृतियाँ केवल महावतों की ही थीं, और वे पशु साधारण लड़ाकू हाथी थे। औरंगज़ेब के कट्टर धार्मिक विचार प्रतिमाओं की उपस्थिति को सहन नहीं कर सकते थे और उसने उनके विनाश के आदेश दे दिये। सन् १८६३ ई० तक उनके सम्बन्ध में अन्य कोई बात नहीं सुनी गई थी। उसी वर्ष जब सैनिक प्रयोजनों से कुछ पुराने भवनों को गिराने का कार्य चल रहा था, तब किले में मूल प्रतिमाओं के लगभग १२५ टुकड़े प्राप्त हुए थे। तीन वर्ष बाद, इन टुकड़ों को जोड़कर एक हाथी बनाया गया था और रेलवे स्टेशन के सामने क्वीन्स बाग में रख दिया गया था। सन् १८९२ में, यह प्रतिमा चांदनी चौक में किसी एक स्थान पर रख दी गई थी और उसके दस वर्ष बाद इंस्टीट्यूट के सामने दूसरी स्थिति में रख दी गई थी। सन् १९०३ में लॉर्ड कर्ज़न की इच्छानुसार वर्तमान प्रतिमाओं का निर्माण कराया गया था, किन्तु मूल टुकड़े (जो अब संग्रहालय में रखे हैं) इतनी बुरी हालत में थे कि वे पुन: प्रयोग में नहीं लाये जा सके। यह कार्य भारतीय कला के एक अनुभवी कलाकार श्री आर० डब्ल्यू० मेकैंज़ी को सौंपा गया था और उसके नमूनों से भारतीय कारीगरों ने इस कार्य को किया था। यह समझ में नहीं आ सकता कि इन प्रतिमाओं की मूल स्थिति के सम्बन्ध में किस प्रकार कोई संदेह उत्पन्न हो सकता था। बर्नियर ने स्पष्ट रूप में उनको दिल्ली दरवाज़े पर विद्यमान बताया है, और उसके कथन की पुष्टि द थेवनाट ने की है, जिसने कुछ वर्ष बाद उनको देखा था। प्रतीत होता है कि यह भ्रान्त धारणा 'असार-उस-सनादीद' से प्रारंभ हुई है, जिसके लेखक की मृत्यु के बहुत पीछे प्रकाशित उत्तरकालीन संस्करण में उन हाथियों को नौबतख़ाना में स्थापित बताया गया है। प्रथम संस्करण में उनको दिल्ली दरवाजे के

सामने स्थापित बताया गया है।"[1]

उपर्युक्त अवतरण का लेखक यह ठीक ही कह रहा है कि हाथी-द्वय साधारण लड़ाकू हाथी थे, और उनके सवार साधारण अर्थात् महावत ही थे। कहने का भाव यह है कि वे सवार जयमल और पत्ता नहीं थे।

प्रसंगवश, उपर्युक्त अवतरण पश्चिमी विद्वानों की अयोग्यता का नेत्र-उन्मेषकारी उदाहरण है। वे यही निश्चय नहीं कर पाये हैं कि किले के कौन-से द्वार पर गज-प्रतिमाएँ स्थापित थीं। चूंकि लॉर्ड कर्ज़न ने किले के दिल्ली-दरवाज़े पर गज-प्रतिमाओं को लगवाया है, अतः संभव है कि उसको यही मालूम रहा हो कि पूर्वकालिक हिन्दू गज-प्रतिमाएँ वहीं पर पहले स्थापित थीं। किन्तु यदि नौबतखाना के नीचे मेहराब-द्वार को परम्परागत रूप में हाथीपोल कहा जाता है, तो यह संभव है कि मूल हिन्दू गज-प्रतिमाएँ उस द्वार पर स्थापित रही हों। विद्वानों को इस प्रश्न को अति सूक्ष्म दृष्टि से परखना चाहिए और नौबतखाना के चबूतरे की जाँच इस का पता लगाने के लिए करनी चाहिए कि उन हाथियों को किस स्थान पर स्थापित कर रखा था।

हम ऊपर कई यूरोपीय विद्वानों के उदाहरण दे चुके हैं। पाठक को मात्र यह सूचित करने के लिए कि वह इस मुआमले को ठीक प्रकार से समझ जाय—उसे समझ लेना चाहिए कि 'दिल्ली के किले के नगर की ओर बने तीन दरवाज़ों में से एक के सामने गज-प्रतिमाएँ स्थापित थीं' उनको नष्ट कर दिया गया था और उसमें से कम-से-कम एक के टुकड़े मिल गए हैं। किले के दिल्ली-दरवाज़े पर अभी भी हाथियों का एक जोड़ा स्थापित है, किन्तु एक जोड़ा तो ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड कर्ज़न के आदेश पर उन प्राचीन हिन्दू हाथियों के स्थान पर बनाया गया था जिनको औरंगज़ेब द्वारा नष्ट किया गया विश्वास किया जाता है।

पश्चिमी विद्वान् यह धारणा हृदयंगम करने में पूर्णतः मार्ग से भटक गए हैं कि मुगल सम्राट् अकबर ने आगरा में लालकिला बनवाया था और उसके पौत्र शाहजहाँ ने दिल्ली में लालकिला बनवाया था, तथा

१. "दिल्ली का किला—भवनों और उद्यानों की मार्गदर्शिका"—पृ० ६

शाहजहाँ ने आगरावाले किले से हाथियों और सवारों को उखड़वा लिया था, और फिर उन्हीं को दिल्ली के लालकिले में पुन: स्थापित करवा दिया था। ब्रिटिश विद्वानों को हक्का-बक्का, कम्पित और विभ्रमित करनेवाली इस समस्या का अत्यन्त सरल समाधान यह है कि आगरा और दिल्ली के लालकिले अति प्राचीन हिन्दू राजमहल हैं। हिन्दू राजवंशी परम्परा में हाथी राजवंशी शक्ति और धन-वैभव का प्रतीक है। अतः हिन्दुओं के लिए अपने राजमहलों और किलों में हाथी बनवाना सामान्य व्यवहार था। इसी परम्परा के अनुरूप, दिल्ली और आगरा के किलों का निर्माणदेश देनेवाले हिन्दू सम्राटों ने अपने राजवंशी द्वारों के सम्मुख सवारों-सहित हाथियों की मूर्तियाँ भी स्थापित की थीं। ये तो घोर उग्रवादी मुस्लिम दरबारी चाटुकार थे जिन्होंने पश्चिमी विद्वानों को यह विश्वास दिलाकर पथभ्रष्ट कर दिया है कि दिल्ली का लालकिला शाहजहाँ द्वारा बनाया गया है, और आगरा का किला उसके प्रपिता अकबर ने बनवाया था। यदि पश्चिमी विद्वानों ने इस धूर्तता को समझ लिया होता, तो वे इस समस्या को हल कर सकते थे।

अत:, दिल्ली के लालकिले के एक दरवाज़े पर हाथियों के एक जोड़े का अस्तित्व इस बात का प्रबल प्रमाण है कि किला हिन्दू-मूलक है। इससे भी अधिक महत्त्व की जो बात है वह यह है कि लालकिले के भीतर राजा के विशेष निजी कक्ष (अर्थात् ख़ासमहल) के दरवाज़ों में कुण्डों के रूप में प्रयुक्त धातु के लघु-गज-मस्तक उन जीविताकार गज-प्रतिमाओं के छोटे नमूने हैं जो बर्नियर ने किले के द्वार पर देखे थे। यह इस बात का द्योतक है कि भारत में विदेशी इस्लामी आततायियों के आक्रमणों का ताँता प्रारंभ होने से बहुत समय पूर्व ही दिल्ली के प्राचीन हिन्दुओं ने लाल-किले के भीतर विशेष कक्ष से लेकर बाहरी दरवाज़े तक एक ही अलंकृत गज-प्रतिरूप का उपयोग किया था।

यही निष्कर्ष उस जनरल कनिंघम की टिप्पणी से भी पुष्ट होता है जिसको प्रवंच्य और लाड-प्यार करने वाले विद्वान् भारतीय पुरातत्त्व का अधिष्ठाता मानते हैं, उसके प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते हैं। जनरल कनिंघम लिखता है : "कुमाउँनी और गढ़वाली पाण्डुलिपि में मैंने अनेकपाल के

सामने लिखा हुआ पाया है कि संवत् ११११७ अर्थात् सन् १०६० ई० में मार्गशीर्ष सुदि १०वीं को उसने 'दिल्ली का किला (कोट) बनाया और उसे लालकोट के नाम से पुकारा था' (दिल्ली का कोट कराया, लालकोट बनाया)। यह नाम प्रथम मुसलमान बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक के शासन-काल में भी प्रचलित था क्योंकि मुझे खीची चौहानों के भाट, मुकजी की पाण्डुलिपि में उपलब्ध हुआ है कि कुतुबुद्दीन ने, राजगद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद हिन्दू नरेशों को सात आदेश जारी किये थे जिनमें से पाँचवें में कहा गया है कि 'लालकोट तई नगाड़ो बाजतो ना' (अर्थात् लालकोट में नगाड़े नहीं बजेंगे—उनकी अनुमति नहीं है)। इसलिए, निश्चित है कि कुतुबुद्दीन ने लालकिले में ही अपना निवास रखा होगा। (पदटीप—इसकी पुष्टि मुहम्मदी इतिहास लेखकों द्वारा भी की गई है, जो लिखते हैं कि प्रथम दो बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक और शम्सुद्दीन अल्तमश किला राय-पिथौरा में निवास करते थे।)''[1]

यह अत्यन्त खेद की बात है कि जनरल कनिंघम, जिसको कुमाउँनी और गढ़वाली पाण्डुलिपि के रूप में, तथा मुहम्मदी तिथिवृत्त लेखकों की इन टिप्पणियों में—कि प्रारंभिक १३वीं शताब्दी के कुतुबुद्दीन और अल्तमश-जैसे मुस्लिम शासक सन् १०६० ई० में अनंगपाल उपनाम अनेकपाल) द्वारा निर्मित लालकोट (अर्थात् लालकिले) से ही शासन चलाते थे—प्रचुर मात्रा में अकाट्य साक्ष्य प्राप्त थे, फिर भी लालकिले के नाम से पुकारे जाने वाले दुर्ग की उपेक्षा ही करता रहा और उसे तथा-कथित कुतुबमीनार के आसपास ही कहीं खोज निकालने का निष्फल प्रयत्न करता रहा। वह जब उसे वहाँ कहीं खोज नहीं पाया, तब जनरल कनिंघम ने यह कहकर सफाई प्रस्तुत करनी चाही कि यह किला किसी समय, किसी व्यक्ति द्वारा, किसी प्रकार समाप्त कर दिया गया होगा। वह अपनी उपलब्धि की विश्वसनीयता के बारे में हमको विश्वास दिलाने के लिए एक भी साक्ष्य प्रस्तुत करने का कष्ट नहीं करता। अपने इस विश्वास के पक्ष में, समर्थन में, कि लालकोट उपनाम किला रायपिथौरा

---

१ कनिंघम का प्रतिवेदन, खण्ड-१, पृष्ठ १५१

उपनाम लालकिला तथाकथित कुतुबमीनार के आसपास ही रहा होगा, उसने लाल पत्थर का एक छोटा-सा अवशेष भी अभी तक प्रस्तुत नहीं किया है। कनिंघम के भयंकर के दोषोंवाले तर्क की तुलना में हम यह संकेत कर सकते हैं कि कुतुबमीनार के निकट ही अल्तमश की कब्र का अस्तित्व यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि चूंकि अल्तमश पुरानी दिल्ली के लालकिले में मरा था, इसलिए उसके शव को दस मील दूर ध्वस्त कुतुब-मीनार प्रसीमा में गाड़ने के लिए ले-जाया गया था। एक अन्य महत्त्वपूर्ण संकेतक भी है। अल्तमश की बेटी रज़िया, जिसने अपने पिता के तुरन्त बाद कुछ वर्ष दिल्ली पर शासन किया था, तुर्कमान दरवाज़े के भीतर पुरानी दिल्ली की तंग, बन्द गलियों में से एक में दफनाई पड़ी है। उसकी और उसकी बहन की कब्रें एक बड़े, छत-विहीन प्राचीन हिन्दू-भवन में बनी हुई हैं। वह फिर सिद्ध करता है कि पुरानी दिल्ली अति प्राचीन नगरी है, और रज़िया, उसके पिता अल्तमश तथा उसके पूर्ववर्ती कुतुबुद्दीन ने (जो दिल्ली का प्रथम मुस्लिम शासक था)—सभी ने लालकिले उपनाम लालकोट से शासन किया था, जिसे उनसे २०० वर्ष पूर्व हिन्दू शासक अनेकपाल ने बनाया था। इस निष्कर्ष की पुष्टि पुरातत्त्व और भारतीय विद्याशास्त्री श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के इस पर्यवेक्षण से भी होती है कि दिल्ली के लालकिले के राजवंशी भागों का तालमेल शास्त्रीय संस्कृत-साहित्य में वर्णित हिन्दू राजमहलों के संरचना-सम्बन्धी नमूनों से पूरी तरह समरूप, समान बैठता है।

इस संदर्भ में जनरल कनिंघम का वह विचित्र रूप में अस्पष्ट और असम्बद्ध पर्यवेक्षण बालोचित बेहूदगी प्रतीत होती है जिसमें कहा गया है कि "यदि लालकिले का स्थल अनंगपाल और लौह-स्तम्भ की स्थिति से निश्चित किया जाय, तो अब कुतुबमीनार के चारों ओर बिखरा हुआ महान् प्राचीन किला ही, पूरी संभावना है, वही लालकोट है जो अनंगपाल द्वारा बनाया गया था।"[1]

जनरल कनिंघम के पर्यवेक्षण की बेहूदगी दो अन्य संकेतों से भी

---

१. कनिंघम का प्रतिवेदन, खण्ड-१, पृष्ठ १५२

पूर्णतया स्पष्ट है—अर्थात् कुतुबमीनार का उपक्षेत्र एक प्राचीन हिन्दू वेधशाला का क्षेत्र है, न कि किसी राजप्रासादीय राजमहल का, और निकटवर्ती लोह-स्तंभ पर लगा हुआ शिलालेख उस परिसीमा को ईसापूर्व युग के उस हिन्दू सम्राट् का क्षेत्र घोषित करता है जिसने सिन्धुपार के वाह्लीक क्षेत्र पर विजय प्राप्त की थी। जब वहाँ पहले ही २७ नक्षत्र-मंदिर तथा तारकमंडल-पर्यवेक्षण-स्तंभ (जो आजकल प्रिय भाषा में 'कुतुब-मीनार' कहलाता है) विद्यमान थे, जो ईसा-पूर्व युग से एक विशाल परकोटे की दीवार के अन्दर थे, तब ११वीं शताब्दी का हिन्दू शासक अनंगपाल उसी स्थान पर लालकोट अर्थात् लालकिले का निर्माण कैसे कर सकता था? इस प्रकार, किसी भी दृष्टि से देखा जाय, यह स्पष्ट है कि कनिंघम ने घोर अज्ञानता और ऊलजलूल अनुमानों से समस्त विश्व को बुरी तरह ग़लत रास्ते पर डाल दिया है। अतः, अब से, इतिहास के विद्यार्थियों और अध्यापकों को, तथा लालकिले अर्थात् लालकोट के दर्शनार्थियों को कनिंघम की पुरातत्त्वीय भयंकर भूल से अपने मानस को स्वच्छ कर लेना चाहिए अर्थात् उन्हें धोखे में नहीं रहना चाहिए और यह निश्चित मान्यता बना लेनी चाहिए कि दिल्ली का वर्तमान लालकिला ही वह लालकोट है जिसे अनंगपाल ने सन् १०६० ई० में बनवाया था। यह वही किला था जिसमें हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज उपनाम राय पिथौरा दो सौ वर्ष बाद रहा था। इसी के परिणामस्वरूप, पृथ्वीराज के युग में, वही लालकिला अर्थात् लालकोट किला राय पिथौरा अर्थात् सम्राट् पृथ्वीराज का किला भी पुकारा जाने लगा था।

अध्याय १४

साक्ष्य का सारांश

हम इस अध्याय में, संक्षेप रूप में उन विभिन्न प्रमाणों को पुनः प्रस्तुत करना चाहते हैं जिनको पिछले पृष्ठों में दे चुके हैं ताकि पाठक उनको किसी भी समय तत्परता से प्रस्तुत कर सके, स्मरण रख सके।

पहले अध्याय में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार एक सेवानिवृत्त, वृद्धायु-प्राप्त सेनाधिकारी को, जिसे ऐतिहासिक अध्ययन अथवा पुरातत्त्वीय कार्य का न कोई प्रशिक्षण दिया गया था और न ही किसी प्रकार की सूक्ष्म, कुशाग्र-बुद्धि प्राप्त थी, अकस्मात् ही भारत-जैसे विशाल देश के पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण का महत् कार्य सौंप दिया गया था और भारत में ब्रिटिश सरकार के लिए पुरातत्त्व-विभाग की स्थापना का महान् दायित्व सँभला दिया था। भारत में देशी शासकों को क्रमशः नष्ट कर देनेवाली और विदेशी मुगल शासन को सर्वथा तहस-नहस कर देनेवाली अन्य विदेशी सत्ता के रूप में भारत में ब्रिटिश प्रशासन का यह स्वभाव हो गया था कि वे किसी भी उत्तरदायित्व के कार्य को सैनिक अधिकारियों को सौंप दिया करते थे। प्रसंगवश, इतिहास की अनेक सीखों में से एक यह है कि कोई भी उपनिवेशवादी सत्ता किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपने सैनिक अधिकारियों पर ही निर्भर करती है।

यही वह वृत्ति थी जिसने तत्कालीन गवर्नर-जनरल एवं वायसराय को भारत का पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण करने हेतु जनरल कनिंघम का चुनाव

करने का अवसर दिया। जैसा स्वाभाविक था, जनरल कनिंघम ने जो अन्यदेशीय तो था ही, तथा जिसे बहु-राष्ट्रीय विदेशी इस्लामी नराधमों के विरुद्ध स्वदेशी हिन्दुओं के एक सहस्रवर्षीय संघर्ष की जटिलताओं और अन्यान्य प्रतिक्रियाओं का कोई ज्ञान नहीं था, अपने अक्खड़ सैनिक व्यवहार में ही तथ्यों को वैसा ही संग्रह और अनुशासित करना शुरू कर दिया जैसा स्वयं देखा। यह कार्य उसने ऐसे ही किया जैसे कोई छोटा सैनिक उनको स्वीकार करने से पूर्व परखने की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। उसने दो सहायक चुने और वे तीनों ही ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण करते फिरे।

ये तीनों व्यक्ति इस तथ्य के प्रति पूरी तरह अनभिज्ञ सिद्ध हुए कि एक सहस्रवर्षीय दीर्घावधि में विदेशी मुस्लिमों ने सभी महत्त्वपूर्ण हिन्दू किलों, राजप्रासादों, राजमहलों, भवनों, मंदिरों, पुलों, नहरों और झीलों पर अपना अधिकार जमा लिया था अथवा उनका रूप-परिवर्तित कर दुरुपयोग किया था, तथा उनको मुस्लिम संरचनाओं के रूप में प्रस्तुत करने का स्वभाव बना लिया था। अतः, जहाँ कहीं ये तीनों ब्रिटिश पुरातत्त्वीय नौसिखिये एवं कलाप्रेमी गए, उन्होंने उन तथाकथित मकबरों और मस्जिदों के आसपास चिपटे रहने वाले कुछ नगण्य स्थानीय मुस्लिमों से सम्पर्क किया। इन तीन ब्रिटिश कर्मचारियों ने उन अविश्वसनीय, निकृष्ट चंचल व्यक्तियों से जो कुछ जानकारी प्राप्त की, वही भारत के विशाल पुरातत्त्वीय लेख-प्रमाण का आधार है, और उसी को, भयंकर भूल के कारण, अति पवित्र और अन-उल्लंघनीय विश्वास किया जाने लगा है।

इस प्रकार, जब ये अधिकारी जौनपुर गए और इनको स्थानीय ऐरा-गैरा नत्थू खैरा द्वारा बताया गया कि अत्युच्च और ध्वस्त भवन अटला-देवी मस्जिद थी, तो इसी बात से ब्रिटिश अज्ञानियों की इस त्रयी ने लिख लिया कि यह भवन मूल-रूप में ही मस्जिद निर्मित हुआ था। यही बात उन भवनों के साथ भी है जो ताजमहल अथवा हुमायूँ का, या अकबर का, या शेरशाह का मक़बरा कहलाते हैं। जनरल कनिंघम के दिमाग़ में यह तथ्य बिल्कुल भी नहीं खटका कि वे सब भवन पूर्वकालिक हिन्दू राजमहल और मंदिर थे जिनको विदेशी आक्रामकों, अपहारकों—मुस्लिमों ने

मक़बरों और मस्जिदों के रूप में अपने उपयोग में ले लिया था। ब्रिटिश त्रयी ने, जब उसका सर्वेक्षण का कार्य पूरा हो गया था, तब ऐतिहासक स्मारकों की सूची की पुनरीक्षा एवं संशोधन करते समय, समरूप महलों और भवनों के अभाव में मस्जिदों और मक़बरों के अनानुपातिक आधिक्य से, कम-से-कम इसकी तो अनुभूति की होती। भारत पर चढ़ाई करनेवाले और अग्निकांडों, लूटने-खसोटने तथा नर-हत्याओं में रंगरेलियां मनाने वाले विदेशी मुस्लिम दरबारियों तथा शाही लोगों को मात्र मस्जिदें एवं मक़बरे बनवाने में ही रुचि क्यों हो? क्या उनको, या उनके बड़े-बड़े हरमों को, अथवा उनकी असंख्य सन्तानों को निवास के लिए कोई भवन आदि नहीं चाहिए थे?

चूंकि उसको सौंपे गये कार्य के इस अति महत्त्वपूर्ण पक्ष की ओर ध्यान देने में कनिंघम विफल रहा, इसलिए उसको नितान्त अदक्ष और असमर्थ पुरातत्त्वज्ञ की संज्ञा दी जानी चाहिए, जिसने मूलोद्गम में ही भारत में पुरातत्त्वीय विचारधारा की खिचड़ी बना दी और समस्त कार्य को पूरी तरह सदोष कर दिया।

जिस पद्धति से वह दिल्ली के लालकोट की खोज में लगा रहा, इसी से उसकी अयोग्यता का विशद दृष्टान्त स्पष्टत: दृष्टि-सम्मुख आ जाता है। वह जानता था कि लालकिला एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक और लोक-प्रिय स्मारक है, फिर भी इसको शाहजहां द्वारा सत्रहवीं शताब्दी में बनाए जाने-सम्बन्धी परम्परागत मुस्लिम कपट-वर्णनों से दिग्भ्रमित हो जाने के कारण कनिंघम हिन्दू लालकोट को कुतुबमीनार के आसपास ही खोजता रहा। उसका यह विश्वास किसी विशिष्ट तथ्य, तर्क पर आधारित नहीं था। वह विचित्र अनुमान लगाता हुआ एक तथाकथित अनंगताल के निकट ही, अपना काम करता रहा कि अनंगपाल का लालकोट उपनाम लाल-किला उसके आसपास ही कहीं होना चाहिए था। यही उसकी भयंकर भूल थी। किसी शासक का नाम उसके सम्पूर्ण राज्य में फैले हुए भू-चिह्नों तथा राजमार्गों, झीलों, स्तम्भों, राजमहलों, भवनों, मंदिरों से सम्बद्ध हो सकता है। किन्तु उसका अर्थ यह तो नहीं है कि वे सब एक निर्बाधित सातत्य में और सन्निधि, समीपता में ही फैले हुए होंगे।

१. इस प्रकार, यह जनरल कनिंघम ही वह व्यक्ति था जिसने लाल-कोट (लालकिले) को अन्यत्र खोजने की प्रारम्भिक भयंकर भूल की और फिर यह खेद व्यक्त किया कि वह कोट कहीं दिखाई नहीं पड़ता। तब भी वह लालकोट, सुदृढ़ और विशालाकार में, उसकी अपनी ही आँखों के सम्मुख, अपनी सतत नवीन, अरुण प्रस्तरों की चमक-दमक के साथ खड़ा था। उसे गढ़वाली और कुमाउँनी पाण्डुलिपि में वह प्रविष्टि भी उपलब्ध थी जिसमें स्पष्ट कहा गया था कि प्राचीन हिन्दू सम्राट् अनंगपाल ही था जिसने दिल्ली का लालकोट (लालकिला) बनवाया था। इससे और, हम जिन विवरणों का विश्लेषण पूर्व-पृष्ठों में कर चुके हैं उन अन्य साक्ष्यों से कनिंघम को ज्ञात हो जाना चाहिए था कि शाहजहाँ द्वारा पुरानी दिल्ली को स्थापित करने या इसके लालकिले और जामा-मस्जिद को बनवाने के दावे, जैसाकि सर एच० एम० इलियट ने कहा है, "निर्लज्ज और जान-बूझकर किये गये धोखे हैं।"

२. दूसरे अध्याय में हमने यह स्पष्ट कर दिया है कि किस प्रकार शाहजहाँ द्वारा लालकिला बनवाने का कल्पित श्रेय मात्र सुनी-सुनाई बातों पर आधारित है। कोई नमूने के रूपरेखांकन, कोई निर्माणादेश, कोई विपत्र और रसीद, तथा दैनंदिन व्यय-लेखा आदि कुछ भी तो उपलब्ध नहीं है।

३. तीसरे अध्याय में हम प्रदर्शित कर चुके हैं कि किस प्रकार शाह-जहाँ के बेटे और उत्तराधिकारी औरंगज़ेब को अकारण ही श्रेय दिया जाता है कि उसने दिल्ली व लाहौरी-दरवाज़े को ढकनेवाली बाहरी प्राचीरें और किले के भीतर तथाकथित मोती-मस्जिद का निर्माण कर-वाया था। ये दोनों ही मुस्लिमों द्वारा मनघड़न्त, असत्य बातें हैं। औरंगज़ेब के दरबारी प्रलेखों में अथवा इतिहासों में ऐसा कोई भी उल्लेख या दावा नहीं किया जाता है कि उसने बाहरी प्राचीरें अथवा तथाकथित मोती-मस्जिद का निर्माण करवाया था। तथ्यतः, चूंकि शाहजहाँ स्वयं एक अति मतान्ध और कट्टर मुस्लिम था, इसलिए उसके शासनकाल में किले के भीतर एक मस्जिद का अभाव इस बात का द्योतक है कि उसने एक हिन्दू किले पर अपना आधिपत्य किया था। यदि शाहजहाँ ने किला

बनाया होता, तो उसने उस किले के अन्दर न केवल स्वयं के लिए ही अपितु अपने असंख्य परिचरों तथा रक्षक सैनिकों के लिए भी एक मस्जिद का निर्माण तो अवश्य ही कियाहोता। औरंगजेब के शासन तक दिल्ली के लालकिले में किसी भी मस्जिद का न होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यह किला हिन्दू-मूलक था। स्वयं तथाकथित मोती-मस्जिद भी मोती-मन्दिर था जिसमें से औरंगजेब ने हिन्दू देव-मूर्ति को उखाड़ फेंका था। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि इस भवन में अन्दरूनी दीवारों पर हिन्दू सूर्य अंगीभूत लक्षण विद्यमान हैं.भीतर संगमरमरी मेहराबदार प्रवेश-भाग के दोनों ओर परम्परागत पंच-पुष्प अंकित हैं, तथा अन्दर बने हुए प्रांगण के मध्य में छोटा फ़व्वारा बना हुआ है।

४. 'किले का भ्रमण' शीर्षक अध्याय में हमने स्पष्ट इंगित किया है कि वर्तमान अपूर्ण भागों में बड़े-बड़े रिक्त स्थान शेष हैं। उन स्थानों में मोती, हीरा, सुनहरी मण्डप आदि अन्य हिन्दू राजवंशी भाग बने हुए थे। उनकी अनुपस्थिति स्वयं इस बात को सिद्ध करती है कि वे भवन मुस्लिम हमलों के समय नष्ट हो गए थे। यदि शाहजहाँ ने मध्य १७ वीं शताब्दी में लालकिला बनवाया होता तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि नदी की ओर वाले राजवंशी भवनों के मध्य बड़े-बड़े रिक्त स्थान होते। दिल्ली के लाल किले में, नदी तट की ओर, बिल्कुल वैसे ही भव्य बहुमंजिलें भवन हैं जैसे आगरे के किले में हैं। मुस्लिम अभिलेखों में कोई ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता कि शाहजहाँ द्वारा निर्मित किसी भी भाग को, सन् १८५८ ई० में अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह के पदच्युत होने तक शाहजहाँ के किसी भी परवर्ती मुग़ल ने गिरा दिया था। उत्तर से दक्षिण तक सभी भागों में प्रवहमान जल की व्यवस्था के लिए निरन्तर जल-प्रवाहिकाएं थीं। उन अनवरत जल-प्रवाहिकाओं की व्यवस्था में टूटी श्रृंखला लुप्त भागों में एक अन्य संकेतक है। किले की पिछली दीवार के साथ-साथ बने भागों में इन जल-प्रवाहिकाओं के अतिरिक्त विशद जल-कल-व्यवस्था भी जिनसे किले के सभी भागों में बने फ़व्वारों, तालाबों और जल-प्रपातों की जटिल-प्रणाली को भी सतत पानी मिलता रहता था। इनको किले के भीतर आज भी देखा जा सकता है। अतः, यह स्वतः स्पष्ट है कि किला बनाना तो दूर,

ने तो उसके अन्दर बने हुए अंगों और जल-कल-यन्त्रों का सत्यानाश, सर्व-नाश कर दिया। फ़व्वारों के ऊपर लगे, धातु के सभी अंशों को चुरा लिया गया था ताकि तलवारों, गोलों, बन्दूकों और तोपों जैसे शस्त्रास्त्रों के निर्माण में सहायता मिल सके।

५. किले में हिन्दू-वातावरण, लक्षण का वर्णन करते समय हम यह प्रदर्शित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत कर आए हैं कि किले से सम्बन्धित शब्दावली पूर्णतः हिन्दू है यथा रंगमहल, छोटा रंगमहल, हाथीपोल, नक्कारखाना, श्रावण और भाद्रपद महल, छत्र, गुलालबाड़ी और शीश-महल। किले के पीछेवाला नदी-क्षेत्र राजघाट कहलाता है, क्योंकि हिन्दू राजाओं की पीढ़ियाँ उस परकोट से यमुना नदी में स्नान के लिए उतरा करती थीं। किले में सभी हिन्दू-अंगीभूत विशेष लक्षण विद्यमान हैं यथा हिन्दू अश्वारोहियों सहित गजराज, प्रवेशद्वारों की मेहराबों पर बने सूर्यमुखी पुष्प-चिह्न, तथा सूर्य जिससे क्षत्रियवंशी लोग अपना आविर्भाव मानते हैं।

६. विदेशी तोड़-फोड़ वाले अध्याय में हम दिखा चुके हैं कि मूल हिन्दू लालकिले में बहुत अधिक ऐश्वर्यशाली राजवंशी भाग, जटिल जल-कल-व्यवस्था और बहुमूल्य साज-सामान, स्थावर-सम्पत्ति, हरे-भरे भाग तथा भव्य मन्दिर थे। वे सभी घोर उपेक्षा और निरंकुश तोड़-फोड़ के कारण अपवित्र किये गए, ध्वस्त किए गए, लुटे और विनष्ट हो गए।

७. शिलालेखों वाले अध्याय में हम देख ही चुके हैं कि किस प्रकार किले के भीतर लगे हुए इस्लामी शिलालेखों में से अधिकांश तो ऐसे प्रक्षिप्तांश एवं नगण्य लिखावटें हैं जो अन्य लोगों के भवनों पर केवल घुस-पैठियों द्वारा ही की जाती हैं। हम एक क़दम और आगे बढ़े हैं, तथा यह प्रदर्शित कर पाए हैं कि वह शिलालेख, जिसमें लालकिले के दीवाने-खास को पृथ्वी पर साक्षात् स्वर्ग घोषित किया गया है, केवल किसी विजेता तथा अपहारक द्वारा ही लिखा जा सकता था। कोई वास्तविक स्वामी-निर्माता अपने बनाए हुए भवन के बारे में कभी इतने आत्मश्लाघायुक्त दावे नहीं करता।

८. उन लोगों ने, जिन्होंने दावा किया है कि शाहजहाँ ने किले का

निर्माण सन् १६४८ ई० के आसपास पूरा किया था, यह भी उल्लेख किया है कि शाहजहाँ ने नदी-तट की ओरवाले, पिछले महत्त्वहीन द्वार से किले में प्रवेश किया था। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र है जो इस बात का द्योतक है कि शाहजहाँ किले का निर्माता न होकर मात्र विजेता और आधिपत्यकर्ता था। यदि शाहजहाँ ने वास्तव में किला बनवाया होता, तो उसे तो अपनी जनता के भाव-ह्विल अपार जन-समुद्र की भीड़ में से, पूरी राजकीय सज-धज के साथ, नगर की ओर बने हुए किसी द्वार से किले के भीतर प्रविष्ट होना चाहिए था। तब वह पिछले दरवाज़े में से, चुपके से अन्दर न आया होता। इस बात का द्योतक है कि जब शाहजहाँ ने पहली बार दिल्ली में रहने का निश्चय किया, तब उसे दिल्ली निवासियों द्वारा किसी संकट पैदा करने की अथवा किसी शक्तिशाली दरबारी षड्यन्त्र की आशंका अवश्य रही होगी।

९. इस बात के असंख्य सन्दर्भ विद्यमान हैं कि लालकिला उपनाम लालकोट शाहजहाँ से शताब्दियों-पूर्व बना था और विद्यमान था। सर्वप्रथम, ऐसी पाण्डुलिपि विद्यमान है जिसमें स्पष्ट रूप में उल्लेख है कि अनंगपाल ने सन् १०६० ई० में किला बनवावा था। फिर हमारे पास ऐसे सन्दर्भ प्राप्य हैं कि १३ वीं शताब्दी के मुस्लिम शासक कुतुबुद्दीन और अल्तमश किले में निवास करते थे। पुरानी दिल्ली की एक गली में रज़िया की क़ब्र भी इस तथ्य का प्रमाण है कि वह जब राजगद्दी पर बैठी, तब वह भी अपने पिता अल्तमश के ही समान हिन्दू लालकिले में रही थी। शाहजहाँ के दरबार का तिथिक्रमवृत्त 'बादशाहनामा' हमें स्वयं ही सूचित करता है कि स्नानागारवाला भाग अकबर के समय में हमाम (गुसलखाना) कहलाता था। किले का एक भाग शाहजहाँ के पिता सलीम के नाम से ही पुकारा जाता है। ये विवरण सिद्ध करते हैं कि यह किला शाहजहाँ के पिता और उसके भी पिता के समय में भी मौजूद था। अतः, यह धारणा कि शाहजहाँ ने किला बनवाया था, पूर्णतः असत्य, अस्वीकार्य है।

१०. किले में राजा के अपने निज़ी कक्ष में लम्बी पट्टिका, जिसमें हिन्दू तलवारों का एक जोड़ा, पवित्र कलश, कमल-कलिका, न्याय-तुला,

शंख, जाज्वल्यमान दिनमणि सूर्य—जिससे भारत का शासक-वंशी अपना प्रादुर्भाव मानते हैं, और परम पावन हिन्दू अक्षर ओ३म्-युक्त प्राचीन राजवंशी हिन्दू अधिकार चिह्न, राजचिह्न, उत्कीर्ण है, किले के हिन्दू-उद्गम और स्वामित्व का एक अतिविशद, सजीव, सशक्त लक्षण, प्रमाण है।

११. कुछ परवर्ती, उत्तरकालीन मुस्लिम तिथिवृत्तों में लिखे हुए संदिग्ध, अस्थिर, मिथ्या और अधूरे निर्माण-लेखे, जो कुछ पंक्तियों से अधिक में वर्णित नहीं हैं, तथा किला-निर्माण प्रारम्भ करने की तारीख, इसकी निर्माणावधि, इसकी लागत व रूपरेखांकन-जैसे महत्त्वपूर्ण विवरणों पर भी उनमें परस्पर विशाल मतभेद इस बात के द्योतक हैं कि शाहजहाँ द्वारा किला-निर्माण होनेवाला दावा कल्पित है।

१२. शाहजहाँ का शासनकाल शान्तिपूर्ण, स्वर्णयुग नहीं था जैसाकि सामान्यतः दावा किया जाता है कि वह ऐसा था। उसका लगभग ३०-वर्षीय शासन ४८ सैनिक लड़ाइयों और कई अकालों से ग्रस्त, अभिशप्त था। एक ओर असंगत रूप में यह कहा जाता है कि उसने आगरा में ही अपना जीवन व्यतीत करने की क़सम खाई थी क्योंकि वहाँ उसकी पत्नी मुमताज दफनाई गई और फिर दूसरी ओर उसी साँस में यह भी कह दिया जाता है कि शाहजहाँ ने दिल्ली का एक नगर स्थापित किया था और अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली स्थानान्तरित कर दी थी। इस संभ्रम को परास्त समाप्त करने के लिए हमारे पास ऐतिहासिक साक्ष्य विद्यमान है जो सिद्ध करता है कि अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों तक शाहजहाँ की राजधानी आगरा ही रही थी। यहीं तो वह बीमार पड़ा था। आगरा के किले में बीमारी की हालत में शैया पर पड़े-पड़े ही, अपने बड़े बेटे दारा की सहायता से, कुछ महीनों तक, वह राजकाज चलाता रहा था। और जब अन्त में औरंगज़ेब ने अपने सभी भाइयों की हत्या करके राजगद्दी को हड़प लिया, तब शाहजहाँ अपने बेटे की कैद में शेष जीवन के लिए असहाय बन्दी बन गया और उसने अपनी बाकी ज़िन्दगी आगरा के किले में ही शाही कैदी के रूप में गुज़ार दी। साथ ही, यह सुझाव देना, जैसाकि प्रायः सुझाया जाता है, एक बेतुकी बात है कि शाहजहाँ के पास इतना

अथाह खजाना था कि उसने अपनी पत्नी मुमताज की स्मृति में एक स्वप्निल मक़बरे के रूप में ताजमहल बनाने पर अरबों-खरबों रुपये खर्च किये, फिर उसने हीरे-जवाहरातों का एक अति जाज्वल्यमान मयूर-सिंहासन बनाने का आदेश दिया, फिर उसने दिल्ली में लालकिला बनवाया, फिर जामा-मस्जिद, फिर स्वयं पुरानी दिल्ली नामक नगर तथा अन्य झीलों, राज-महलों, ग्रीष्मकालीन निवासगृहों व अन्य भवनों को इतनी असंख्य मात्रा में बनवाया कि शाहजहाँ के शासनकाल पर डॉक्टरेट-उपाधि के लिए अपना शोध-प्रबंध 'लन्दन विश्वविद्यालय' के सम्मुख प्रस्तुत करते समय प्रोफेसर बी० पी० सक्सेना इतने हताश हो गए कि वे उन संरचनाओं की एक अति विशद सूची भी नहीं बना सके।

१३. हाथियों से सम्बन्धित अध्याय में हमने इस बात का सम्यक् विवेचन किया है कि हाथीपोल नाम से पुकारे जानेवाले दरवाज़े पर गज-प्रतिमाओं के उल्लेख ने ही किले के हिन्दू-मूल के प्रति इतिहासकारों को सजग, जागरूक कर देना चाहिए था। अभी तक, विवाहादि तथा अन्य हर्ष के अवसरों पर,हिन्दू-ग्रामीण लोग अपने घरों की दीवारोंपर राजवंशी साज-सामान से सुसज्जित हाथियों के रंग-बिरंगे चित्र बनाते हैं। यह तथ्य कि उन गज-प्रतिमाओं को बाद में नष्ट कर दिया गया था और उनमें से एक के टुकड़े लालकिले की चार-दीवारी के अन्दर ही मिल गये थे, इस बात का एक अन्य संकेतक था कि हिन्दू लालकिले को जीतने और उसपर अपना आधिपत्य कर लेने के बाद अन्यदेशीय मुस्लिम आधिपत्यकर्ताओं ने अपने असहनशील मूर्तिभंजक क्रोधोन्माद में उन मूर्तियों को भी नष्ट कर दिया था। किले में एक नौबतखाना भी है, और किले के निकट लाहौर-दरवाज़े के बाहर जितने भी देवालय हैं, वे सब-के-सब ग़ैर-मुस्लिम मंदिर हैं।

इस प्रकार, प्रत्येक सम्भव दृष्टि से यह सिद्ध करने के प्रचुर मात्रा में पर्याप्त साक्ष्य विद्यमान हैं कि दिल्ली का लालकिला हिन्दू सम्राट् अनंग-पाल द्वारा ११ वीं शताब्दी में बनाया गया था, न कि विदेशी मुस्लिम-शासक शाहजहाँ द्वारा ईसा की १७वीं शताब्दी में। अतः, यह आशा की जाती है कि सरकार का पर्यटन-विभाग, भारत का पुरातत्त्वीय सर्वेक्षण-

विभाग और इतिहास-पुस्तकें तथा भारतीय वास्तुकला के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकें उपयुक्त रूप में अपनी धारणाओं, मान्यताओं में अब से, संशोधन कर लेंगे तथा दिल्ली के लालकिले को एक ऐसे हिन्दू दुर्ग के रूप में देखेंगे और उसका अध्ययन करेंगे जिसको मुस्लिमों द्वारा मात्र ध्वस्त और क्षति-ग्रस्त ही किया गया था। सारांश में कहा जाय तो तथ्य यह है कि उनको हमारे सूत्र से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए कि अभी तक लाल किले में अथवा उससे सम्बन्धित जो भी कुछ शेष है, वह सब हिन्दू-कृति है—तथा जो भी कुछ लुप्त हो गया है, वह सब विदेशी मुस्लिमों के कारण है। कहने का तात्पर्य यह है कि दिल्ली के लालकिले का निर्माण सर्वप्रकार हिन्दू-निर्माण है, और इसका विनाश सर्वप्रकार मुस्लिमों द्वारा ही किया गया विनाश-कार्य है।

आधार-ग्रंथ-सूची

१. 'बादशाहनामा', लेखक—अब्दुल हमीद लाहोरी, वाल्यूम्स १ एंड २ पर्शियन टैक्स्ट।

२. 'ताजमहल इज ए हिन्दू पैलेस', ले० पी० एन० ओक, इण्डिया बुक हाउस, बम्बई, सैकंड एडीशन।

३. 'देहली—पास्ट एंड प्रेजेंट', ले० एच० सी० फंशा, लण्डन, जान मुरे, अल्बेमारले स्ट्रीट, १९०२।

४. 'देहली—इट्स स्टोरी एण्ड बिल्डिग्स', ले० एच० शार्प, हम्फ्रे मिल-फ़ोर्ड, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंडन, १९२१।

५. 'गाइड टु देहली', ले० मेहरा।

६. 'सैवन सिटीज़ ऑफ़ देहली', ले० गोर्डन हर्न, लण्डन, जून १९२८।

७. 'हर्षचरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन', (ए बुक इन हिन्दी), ले० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' पटना, १९५३।

८. आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इण्डिया, फ़ोर रिपोर्ट्स, मेड ड्यूरिंग दि इयर्स १८६२-६३, ६४-६५, द्वारा जनरल अलैक्जैंडर कनिंघम वाल्यूम प्रथम, शिमला, १८७१।

९. 'पिक्चरेस्क इण्डिया', ले० डब्ल्यू० सी० कैने, जार्ज राउटलेज एंड संस, लिमिटेड' लंडन, १८६० ।

१०. 'इण्डियन आर्किटेक्चर' (इस्लामिक पीरियड), थर्ड एडीशन, ले० परसी ब्राउन, तारापोरवालाज ट्रेजर हाउस ऑफ़ बुक्स, बम्बई ।

११. 'इंडियन आर्किटेक्चर', ले० ई० बी० हेवेल, जान मुरे, अल्बेमारले स्ट्रीट, लंडन, १९१३ ।

१२. 'हिस्ट्री आफ़ शाहजहाँ ऑफ़ दिल्ली', ले० बी० पी० सक्सेना, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १९५८ ।

१३. कीन्स हैंडबुक फ़ॉर देहली, आगरा आदि ।

१४. 'देहली फ़ोर्ट—ए गाइड टु दि बिल्डिंग्स एण्ड गार्डन्स...." गवर्नमैंट ऑफ़ इण्डिया, सैण्ट्रल पब्लिकेशन्स ब्रॉच, १९३२ ।

१५. 'दि आर्क्योलॉजी एंड मॉन्यूमेण्टल रिमेन्स ऑफ़ देहली', ले० कार स्टीफ़न, दि सिविल एण्ड मिलिट्री गजेट एण्ड स्टेशन प्रेस, शिमला द्वारा मुद्रित, दि रेवरेंड ई० एम० व्हेरी, सुपरिण्टैण्डेण्ट, मिशन प्रेस, लुधियाना में प्रकाशित, २२ सितम्बर १८७६ ।

१६. 'फतहपुर सीकरी इज ए हिन्दू सिटी', इंस्टीच्यूट फ़ॉर री-राइटिंग इण्डियन हिस्ट्री, एन-१२८, ग्रेटर कैलाश-I, नई देहली-४८ ।

१७. 'आगरा रेड-फ़ोर्ट इज ए हिन्दू बिल्डिंग', इंस्टीच्यूट फ़ार री-राइटिंग इण्डियन हिस्ट्री, एन-१२८, ग्रेटर कैलाश I, नई देहली-४८ ।

१८. 'हू सेज़ अकबर वाज़ ग्रेट ?', इंस्टीच्यूट फ़ॉर री-राइटिंग इंडियन हिस्ट्री, एन-१२८, ग्रेटर कैलाश I, नई देहली-४८ ।

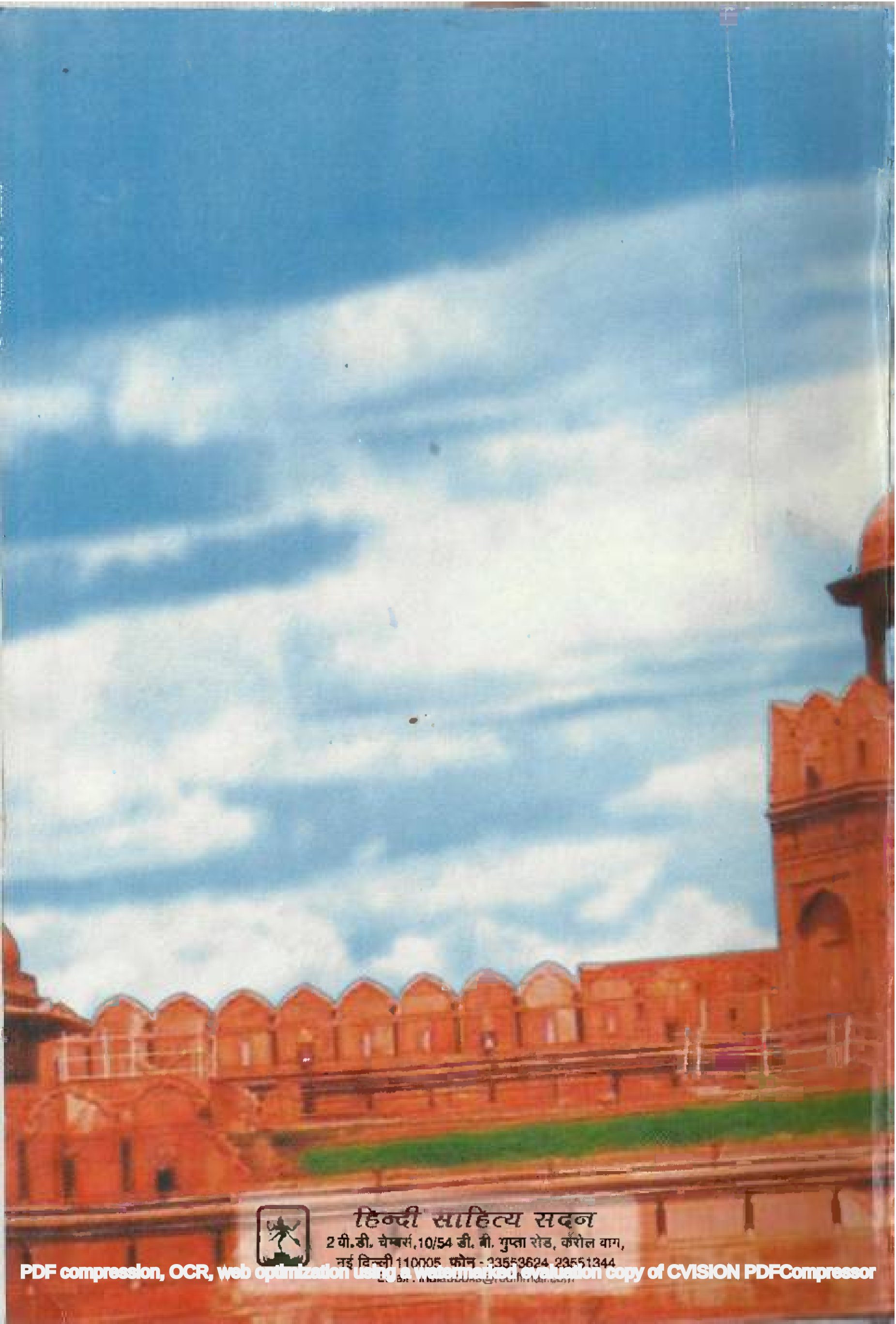
१९. 'संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी', ले० सर मोनियर-विलियम्स, १९६० ।

२०. 'भारतीय संस्कृति कोष', महादेव शास्त्री जोशी द्वारा संपादित, वाल्यूम I, दिसम्बर १९६२, ४१३ शनिवार पेठ, पूना २ ।

२१. 'मेमोअर्स ऑफ़ देहली एंड फैजाबाद', बीइंग ए ट्रांस्लेशन ऑफ़ दि तारीख़ फ़राहबक्श ऑफ़ मुहम्मद फ़ैजबक्श फ्रॉम दि ओरिजनल पर्शियन'', अनु० विलियम होइ, वाल्यूम I, मेमोअर्स ऑफ़ देहली, इलाहाबाद, १८८८।

२२. 'मीर-ते-अहमदी', ले० अली मुहम्मद खान, इंग्लिश में अनुवाद, द्वारा—एम० एफ० लोखण्डवाला, हैड ऑफ़ दि डिपार्टमेंट ऑफ़ पर्शियन, एम० एस० यूनिवर्सिटी, बडौदा, पब्लिश्ड बाइ दि ओरियण्टल इंस्टीच्यूट, बड़ौदा, १९६५।

० ० ०



हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चेम्बर्स,10/54 डी. बी. गुप्ता रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली 110005 फोन - 23553624, 23551344